11५७

पथ के दावेदार

अपूर्व और उसके मित्रों के बीच प्राय वादविवाद हुआ करता था। जब कभी मित्र इकट्ठे होते तो पहला प्रश्न होता, "बन्धु ! तुम्हारे भाई तो कुछ भी नहीं मानते पर तुम एक ही जो हर चीज को मानते हो ?"

अपूर्व उत्तर देता, "कतई नहीं। अब तुम इसी बात को लो, मैं तुम लोगों का परामर्श और अपने दादाओं (भाइयों) का उपदेश नहीं मानता।"

मित्र थोड़े उपहास को दोहराते हुए कहते, "जैसे तुमने एम० एस-सी० किया पर सिर पर चोटी ज्यों-की-त्यों है ! क्या इस चोटी से तुम्हारे मस्तिष्क में बिजली का संचार होता है ?"

वह मुस्कराकर कहता, "एम० एस-सी० की पाठ्य पुस्तकों में शिखा का कहीं विरोध है ? फिर मैं ऐसी धारणा क्यों बनाऊँ कि चोटी रखना पाप है। अब रही बिजली-संचार की बात, इसका पूर्ण रूप से आविष्कार नहीं हुआ है, यह सब गुरुजनों से पूछा जा सकता है।"

उसकी अकाट्य बात पर मित्र नाराज हो जाते और कहते, "तुम्हारे साथ विवाद करना व्यर्थ है।"

अपूर्व मुस्कराकर कहता, "यह तुम सही कहते हो, पर तुम्हारी आँख तो अब भी नहीं खुलती।"

असल में बात यह थी कि अपूर्व के पिता डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। उनके कथनानुसार और व्यवहार से अपूर्व के सारे भाई होटलों में जनेऊ तोड़कर होटलों में मांस-मछली खाने लगे थे और जनेऊ को भूल जाया करते थे, कभी-कभी उसे धोबी से धुलवाकर इस्त्री कराने के नफे-नुकसान पर हँसा करते थे, तब अपूर्व का यज्ञोपवीत नहीं हुआ था। अपूर्व सबसे छोटा था पर उसका माँ के प्रति गहरा लगाव था और वह माँ की मौन पीड़ा और अश्रु-पात को निरन्तर देखा करता था। उसे पता है कि उसकी माँ मौन रहना

जाकर कहता, "माँ, यह तुम्हारी बड़ी जबरदस्ती है, भइया सब चाहे जो करते हों, पर भाभियाँ तो कोई मुर्गी नहीं खाती और न होटलों में जाकर डिनर ही उड़ाती हैं—जीवन-भर क्या तुम अपने ही हाथ से बनाती-खाती रहोगी ?"

माँ कहतीं, "मुट्ठी-भर दाल-भात बनाने में मुझे कष्ट ही क्या होता है बेटा ! और जब निरुपाय हो जाऊँगी तब तेरी बहू आ जायेगी।"

अपूर्व कहता, "माँ, अभी ही उसे क्यों नहीं बुलवा लेती ? किसी ब्राह्मण पण्डित के घर से वैसे उसे खिलाने-पिलाने की शक्ति मुझमें नहीं है, पर तुम्हारा कष्ट भी नहीं देखा जाता। सोचता हूँ कि न होगा तो भाइयों के टुकड़ों पर ही पड़ा रहूँगा।"

माँ की आँखें गर्व से दीप्त हो उठीं। बोलीं, "ऐसी बात मुँह से भी न निकाल बेटा ! तेरी शक्ति एक नहीं, सबको खिलाने-पिलाने की है। तू चाहे तो सारे घर-भर को खिला सकता है।"

"तुम समझती हो तुम्हारे इस बेटे के बराबर दुनिया में और है ही नहीं।"—और वह अपने उमड़ते हुए आँसुओं को किसी प्रकार रोकता हुआ उठकर चल देता।

अपूर्व अपनी शक्ति और सामर्थ्य के विषय में स्वयं चाहे जो भी कहे पर कन्या के पिताओं का दल हाथ-पर-हाथ धरे नहीं बैठा था। उन लोगों ने आकर विनोद बाबू के मर्म-स्थानों पर ऐसा आक्रमण करना शुरू किया कि उनका जीवन कठिन हो गया।

विनोद आकर माँ से कहता, "माँ, यदि कहीं कोई जप-तप करने वाली लड़की हो तो ढूँढ़-ढाँढ़कर अपने लड़के का ब्याह कर-कराकर झंझट मिटा-इए, वर्ना मालूम होता है कि इन लोगों के मारे घर छोड़कर भाग जाना पड़ेगा। बाप का ज्येष्ठ पुत्र ठहरा, इसलिए बाहर वाले तो यही समझते हैं कि मैं ही घर का स्वामी हूँ।"

लड़के की कड़वी बातों से करुणामयी मन-ही-मन अत्यन्त क्षुब्ध होतीं, पर ऊपर से अपने को किसी प्रकार विचलित नहीं होने देतीं। मधुर किन्तु दृढ़ स्वर में कहतीं, "लोग कोई झूठा थोड़े ही समझते हैं, बेटा ! उनकी अनुपस्थिति में तुम तो हो ही घर के स्वामी। पर अपू के बारे में अभी तुम

हुई बात ही सही हो, यह कोई जरूरी नहीं।"

माँ ने लड़के की अन्तिम बात से दुःखित होकर कहा, "बेटा, तुम लोगों के होश सँभालने से लेकर आज तक यह एक ही बात सुनते-सुनते भी जब मुझे होश नहीं आया, तो अन्तिम दशा में अब यह शिक्षा मुझे मत दो। अपूर्व का मूल्य क्या है, यह जानने के लिए मैं तुम्हारे पास नहीं आई—मैं केवल यह जानने आई थी कि उसे इतनी दूर भेजना ठीक है या नहीं ?"

माँ के पाँव छूकर विनोद ने कहा, "माँ, तुम्हें कष्ट देने के लिए मैंने यह बात नहीं कही। बाबा के साथ हमारा मेल खाता था, यह ठीक है, रुपया दुनिया में मूल्यवान है, यह भी हमने उन्हीं से सीखा है। पर इस विषय में मैं तुम्हें कोई लालच नहीं दिखा रहा हूँ। तुम्हारे इस विनोद के हैट-कोट के भीतर का मन शायद आज भी इतना अधिक साहब नहीं बन गया है जो छोटे भाई को खिलाने-पिलाने के भय से उसे बिना विचारे ठौर-कुठौर भेजने को तैयार हो जाय। मगर फिर भी मैं कहता हूँ कि उसे जाने दो। देश में जैसी कुछ हवा बह रही है माँ, उसे देखते हुए यदि वह देश छोड़कर और कहीं जाकर कामधन्धे में लग सके तो उसका अपना भला तो है ही, साथ ही हम लोग भी शायद बच जायेंगे। तुम तो जानती हो माँ ! उस आन्दोलन के युग में, जबकि उसके मुँह से दूध की महक तक नहीं गई थी, उसके कारण बाबा की नौकरी छूटने की नौबत आ गई थी।"

करुणामयी ने शंका से कहा, "ना-ना, सो सब अब वह नहीं करता ! सात-आठ वर्ष पहले उसकी आयु ही क्या थी ! केवल उस दल में मिल जाने से जो कुछ ···।"

सिर हिलाकर जरा हँस के विनोद ने कहा, "हो सकता है कि तुम्हारी ही बात ठीक हो कि अब वह कुछ नहीं करता, पर, सभी देशों में ऐसे कुछ लोग हुआ करते हैं माँ, जिनकी जात ही कुछ और होती है। तुम्हारा छोटा बेटा उसी जात का है। देश की मिट्टी इसकी देह का मांस है, देश का पानी इसकी नसों का खून है।—सिर्फ देश की मिट्टी-पानी ही नहीं, देश के पहाड़-पर्वत, वन-जंगल, चन्द्र-सूर्य, नदी-नाले, छाया-प्रकाश जो भी कुछ है, सबको मानो अपने सब अंगों से ये लोग समा लेना चाहते हैं। शायद इन्हीं में से किसी ने सत्युग में पहले-पहल 'जननी जन्मभूमि' शब्द का आविष्कार किया

था। देश के मामलों में इनका विश्वास मत करना माँ, धोखा खाओगी। इनके जीवित रहने और प्राण देने में यह देखो, केवल इतना-सा अन्तर है।" —यह कहकर उसने अपनी तर्जनी के अग्रभाग को अँगूठे में चिह्नित करके दिखाया और फिर कहा, "बल्कि इस मामले में तुम अपने इस म्लेच्छाचारी विनुआ को उस चोटीधारी गीता पढ़ने वाले एम० एस-सी० पास अपूर्व-कुमार से कहीं अधिक अपना समझना।"

माँ ने लड़के की बात सुनकर उस पर पूर्ण विश्वास कर लिया हो, ऐसी बात नहीं, किसी समय उन्हें इन्हीं सब बातों से काफी परेशानी उठानी पड़ी थी, इसी से वे मन-ही-मन कुछ चिन्तित-सी हो गईं। देश की पश्चिम दिशा में मेघ के लक्षण दिखाई दे रहे हैं, इस बात को वे जानती थीं। उनके मन में यह बात तुरन्त ही दौड़ गई कि तब अपूर्व के पिता जीवित थे और अब वे स्वर्ग में हैं।

विनोद माँ के चेहरे से समझ गया, पर उसे बाहर जाने की जल्दी थी। बोला, "अच्छी बात है माँ, वह कोई कल ही तो नहीं जा रहा है। सब लोग साथ बैठकर जैसा होगा, तय कर लेंगे।"

फिर वह जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता हुआ बाहर चला गया।

२

कई दिन जहाज में अपूर्व ने चिउड़ा खाकर और 'सन्देश' खाकर और नारियल का पानी पीकर, पूर्ण ब्राह्मणत्व की रक्षा करते हुए बिताये और एकदम निर्बल होकर वह किसी प्रकार रंगून के घाट पर जा उतरा। नई स्थापित बोथा कम्पनी के दो दरवान और एक मद्रासी कर्मचारी जेटी पर उपस्थित थे। मैनेजर का उन लोगों ने स्वागत किया और उन्होंने इस के देने में भी विलम्ब नहीं किया कि तीस रुपये किराये पर ऑफिस [illegible] ले लिया गया है और उसे आवश्यक वस्तुओं से सजा [illegible]

फागुन महीना बीत रहा है। गरमी पड़ने लगी है। समुद्र-मार्ग की
न को ऊबाने वाली और कष्टप्रद परेशानी को उठाने के बाद अपूर्व को
कल्पना से काफी सन्तोष हुआ कि वह एकान्त घर में सुसज्जित शय्या
हाथ-पैर पसारकर जरा सो सकेगा। रसोइया ब्राह्मण साथ आया था।
दार-परिवार में बहुत दिन नौकरी करते रहने से उसका निर्दोष पवित्र
चरण करुणामयी के आगे प्रमाणित हो चुका है, इसी से घर में काफी
ुविधाएँ होने पर भी उसे साथ भेजकर करुणामयी को बहुत-कुछ शान्ति
ी थी, और केवल रसोइया ही नहीं, रसोइया के काम की और भी
त-सी चीजें—चावल, दाल, घी, तेल, पिसे हुए मसाले—आलू, परवल
—वे साथ में रखना नहीं भूली थीं। उसके मन में आशा बिजली की
ह चमक उठी कि गरमागरम दाल-भात-तरकारी से शीघ्र ही वह अपने
का जायका बदल सकेगा। किराये पर गाड़ी तय करके कर्मचारी अपने
चला गया और सामान आदि लेकर ऑफिस का दरबान उसके साथ
ा। लम्बी जलयात्रा से मुक्ति पाकर और जमीन पर गाड़ी में बैठ के
र्व को भी सुख का अनुभव हुआ।

चन्द मिनटों के बाद गाड़ी जब उसके मकान के सामने जाकर खड़ी हुई
र दरवान ने जोर से पुकार-पुकारकर कोई दर्जन-भर ब्रह्मदेशीय कुली
ा के सामान ऊपर पहुँचाने की तैयारी की, तब अपने लिए तीस रुपये
ये पर ठीक किये हुए उस मकान की सूरत-शकल देखकर अपूर्व
चक्का-सा हो गया। मकान में न कोई खूबसूरती, न छत, न दरवाजे, न
हर, न भीतर। आँगन के नाम केवल निकलने का मार्ग। एक लकड़ी की
री सीढ़ी सीधी मार्ग से लेकर तिमंजिले तक चली गई है—एकदम खड़ी
र अन्धकारमय। वह भी किसी की बपौती नहीं—कम-से-कम छह
रायेदारों के आने-जाने का सार्वजनिक मार्ग। इस चढ़ने-उतरने में यदि
ानक पैर फिसल जाय, तो पहले पत्थर की बनी पक्की सड़क, फिर
स्पताल और—फिर तीसरी दशा न विचारना ही अच्छा है। इस भया-
क सीढ़ी के साथ परिचित होने में कुछ लम्बा समय लगता है। अपूर्व नया
दमी ठहरा, इसी से वह अत्यन्त सावधानी के साथ पैर रखता हुआ दर-
न के ठीक पीछे-पीछे चढ़ने लगा। दरबान ने दूसरी मंजिल तक चढ़कर

सीढ़ी के पास एक दरवाजा खोलकर बतलाया, "साहब, यही आपका कमरा है।"

दरवाजे के बाईं ओर का बन्द दरवाजा दिखाते हुए अपूर्व ने पूछा, "इसमें कौन रहता है ?"

दरबान ने बताया, "सुना है, कोई चीनी साहब रहते हैं।"

अपूर्व ने पूछा, "ऊपर के कमरे में कौन रहता है ?"

दरबान ने बताया, "उसमें एक काले साहब को देखा है। मद्रास का रहने वाला लगता है।"

अपूर्व चुप रहा। कुछ पलों में अपने ऊपर और बगल के दो अति घनिष्ठ पड़ोसियों का परिचय पा करके उसके मुंह से केवल एक आह निकली। अपने घर में घुसकर उसका मन और भी खराब हो गया। लकड़ी की दीवार वाली छोटी-बड़ी तीन कोठरियां। एक में पानी का नल, नहाने की जगह, रसोईघर आदि की दयनीय व्यवस्था है, बीच में सीढ़ी के पास ही अंधेरी बैठक और सड़क की तरफ तीसरी कोठरी है, जिसे शयनकक्ष भी कहा जा सकता है—यह अपेक्षाकृत साफ-सुथरी और हवादार है। ऑफिस के खर्चे से इसी कमरे को खाट, टेबल और दो-चार कुर्सियों से सजा दिया गया है। सड़क की ओर छोटा-सा बरांडा है। समय बिताने के लिए वहां खड़े होकर राह चलतों को देखा जा सकता है। कमरों में हवा, प्रकाश नहीं। एक में से दूसरे में जाना पड़ता है—और सबके-सब लकड़ी के बने हुए हैं। दीवारें लकड़ी की, फर्श लकड़ी का, छत लकड़ी की और सीढ़ियां भी लकड़ी की। आग की बात याद आते ही सन्देह हुआ कि इतना बड़ा सर्वांग-सुन्दर लाक्षागृह शायद राजा दुर्योधन भी अपने पाण्डव भाइयों के लिए न बनवा सके होंगे! इसी के अन्दर—इस सुदूर देश में घर-द्वार, बन्धु-बान्धव और आत्मीय

ान के ऊपर एक-एक बड़ा पानी का हौज है ...
ता रहता है।

अपूर्व ने रसोइया से कहा, "महाराज, मैं न ...
है, तुम नहा-धोकर कुछ बनाने की तैयारी ...
ाथ सब सामान सवार लेता हूँ।"

रसोईघर में कोयले रखे थे पर चूल्हा पक्का ईंटों का बना था—पुराना
र साफ। उसमें कहीं-कहीं कालिख लगी हुई है। कौन जाने यहाँ कौन
होगा, क्या बनाता रहा होगा!—इस पिछली बात का ध्यान आते
उसे अत्यन्त घृणा मालूम हुई।

महाराज से बोला, "इस पर तो रसोई नहीं बनाई जा सकती तिवारी
और प्रबन्ध करें। कोई अँगीठी मिल जाती तो उसमें कम-से-कम आज
िए थोड़ा-सा दाल-चावल बाहर के कमरे में बना लेते।"

दरबान ने कहा कि यहाँ किसी चीज की कमी नहीं। दाम मिलते ही
दस मिनटों में ला सकता है। अतएव वह रुपया लेकर चल दिया।

इस बीच में तिवारी महाराज रसोई का सामान जुटाने लगे और
ं स्वयं ट्रंक, बॉक्स वगैरह खींच-खाँचकर घर में ठीक प्रकार से रखने
गया। लकड़ी की अलगनी पर कपड़े-लत्ते-सूट आदि लटका दिये
र खोलकर ठीक प्रकार से खाट पर बिछा दिये, ट्रंक में से एक नया
ल क्लॉथ निकालकर टेबल पर बिछा के उस पर किताबें और लिखने
सामान सजा दिया। उत्तर की खुली खिड़की के दोनों पल्ले अन्त तक
कर, उनमें दो कागज के टुकड़े ठूँसकर सोने के कमरे की ओर भी
सुन्दर मानकर उसने अपने पलंग पर चित पड़के एक दीर्घ निःश्वास
ा।

कुछ देर बाद दरबान ने जब लोहे की अँगीठी लाकर रखी तब उस पर
ही और जो कुछ तरकारी-अरकारी बन सके, जल्दी से बना डालने की
ाज को आज्ञा देकर, अपूर्व बिस्तर पर जाने को ही था कि इतने में
उसे याद आ गया कि माँ ने अपनी शपथ देकर कहा था कि जहाज से
ही वह फौरन तार देगा अतः वह जल्दी से कुर्ता पहनकर अपने
के एकमात्र कर्णधार दरबान को ...

चल दिया और उसी के कहे अनुसार तिवारी महाराज को [illegible]
कि लौटने में उसे एक घंटे से अधिक नहीं लगेगा। इस बीच में रसो
तैयार हो जाना चाहिए।

आज किसी ईसाई त्योहार की छुट्टी थी। अपूर्व सड़क के दो
किनारे देखता हुआ कुछ दूर आगे जाते ही समझ गया कि यह देशी अ
विदेशी साहब-मेमों का मुहल्ला है। हर मकान के खिड़कियों उत्सव के
चिह्न दिखाई दे रहे थे।

अपूर्व ने दरबान से पूछा, "क्यों भई, यहाँ बंगाली लोग भी तो र
रहते हैं। जानते हो उनका मोहल्ला कौन-सा है?"

उसने उत्तर में कहा, "यहाँ कोई विशेष मुहल्ला नहीं है, जो ज
चाहे, रह सकता है। और हाँ 'अफसर' लोग अधिकतर इसी गली में रह
पसन्द करते हैं।"

अपूर्व स्वयं भी एक 'अफसर' है क्योंकि वह भी एक बड़ी नौकरी
इस देश में आया है, और कट्टर हिन्दू होने पर भी किसी धर्म के वि
द्वेष नहीं रखता। फिर भी इस तरह ऊपर-नीचे, दाहिने-बायें, घर अ
बाहर, चारों ही ओर से अपने को ईसाइयों से घिरा देखकर उसे बहुत
विरक्ति मालूम हुई। उसने पूछा, "और क्या कहीं मकान नहीं मिल सक
दरबान?"

दरबान को इस विषय में काफी जानकारी न थी। उसने विचार
उत्तर दिया, "ढूंढ़ने पर मिल सकता है, पर इतने किराये पर ऐसा मक
मिलना कठिन है।"

अपूर्व ने फिर कोई बात नहीं की, दरबान के पीछे-पीछे कुछ
चलकर वह एक पोस्ट ऑफिस की शाखा में पहुँचा। उस समय मद्रासी
बाबू टिफिन के लिए गये थे। घंटे-भर बैठने के बाद जब उनके दर्शन
तब घड़ी की ओर देखकर उन्होंने फरमाया, "आज छुट्टी का दिन है, ऑफि
तो दो ही बजे बन्द हो चुका। अब तो दो बजकर पन्द्रह मिनट हो रहे हैं

अपूर्व ने अत्यन्त अप्रसन्नता के साथ कहा, "यह गलती आपकी है, मे
नहीं। मैं घण्टे-भर से प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

अपूर्व के चेहरे की ओर देखकर बिना किसी संकोच के उस आदमी

कहा, "नहीं, मैं केवल दस मिनट यहाँ नहीं था।"

अपूर्व ने उसके साथ काफी झगड़ा किया, झूठा कहके उसका अपमान किया। रिपोर्ट करने का भय दिखाया, मगर कुछ नहीं हुआ। वह निर्विकार मन से अपना रजिस्टर और कागजात ठीक करने लगा। उसने उत्तर तक देने की आवश्यकता नहीं समझी। अब समय नष्ट करना व्यर्थ समझकर अपूर्व भूख-प्यास और क्रोध से जलता-भुनता बड़े टेलीग्राम ऑफिस में पहुँचा। वह भीड़ में से किसी प्रकार भीतर घुसकर बहुत देर के बाद, अपने निर्विघ्न पहुँचने का समाचार माँ को भेज सका, तब दिन छुपने की तैयारी कर रहा था।

दरबान ने दुःख से अर्ज किया, "साहब, मुझे भी बहुत दूर जाना है।"

अपूर्व बहुत ही परेशान और अन्यमनस्क हो रहा था—छुट्टी देने में उसने कोई आपत्ति नहीं की। उसे भरोसा था कि नम्बर वाली सड़कें सीधी और समान होने से मकान ढूँढ़ लेने में कोई कठिनाई न होगी।

दरबान तो चला गया। वह पैदल चलता हुआ तथा अपनी सड़क को ढूँढ़ता हुआ अन्त में अपने मकान के सामने आ पहुँचा।

सीढ़ी पर कदम रखते ही उसने देखा कि दुमंजिले के अपने दरवाजे पर खड़े हुए तिवारी महाराज अपनी लाठी ठोक रहे हैं और बक रहे हैं; उधर तिमंजिले से दूसरे एक व्यक्ति पतलून पहने खुले बटन अपने कोठे की खिड़की के सामने खड़ा हुआ हिन्दी-अंग्रेजी में उसका उत्तर दे रहा है, और बीच-बीच में घोड़े के चाबुक से साँय-साँय आवाज कर रहा है।

तिवारी उसे नीचे बुला रहा है और वह तिवारी को ऊपर। यह वाद-विवाद जिस भाषा में चल रहा था, उसे न कहना ही अच्छा है।

अपूर्व पहली सीढ़ी पर कदम रखे उसी तरह खड़ा रहा। इतने थोड़े समय में क्या बात हो गई और किस तरह तिवारीजी ने इतनी जल्दी पड़ोसी साहब के साथ इतनी घनिष्ठता स्थापित कर ली, इसका वह कुछ अनुमान न लगा सका। लेकिन अचानक ही शायद दोनों की निगाह उस पर पड़ गई।

तिवारी ने अपने स्वामी को देखते ही और एक बार जोर से लाठी ठोककर न जाने क्या सम्भाषण किया और साहब ने उसका उत्तर देते हुए

बड़े जोर से चाबुक चलाया। लेकिन दुबारा युद्ध घोषित होने के पहले ही अपूर्व ने जल्दी से आकर तिवारी का लाठी-सहित हाथ थामकर कहा, "तुम्हारा क्या दिमाग खराब है?" और प्रतिवाद करने का अवसर दिये बिना ही वह उसे जबरदस्ती धकेलता हुआ भीतर ले गया। तिवारी को मारे क्रोध, दुःख और क्षोभ के रुलाई-सी आ गई, बोला, "वह देखिये, हरामजादे साहब की करतूत देखिए!"

वास्तव में उस करतूत को देखकर अपूर्व की थकावट और नींद, भूख और प्यास सब एक साथ गायब हो गई। गरम-गरम खिचड़ी अब तक बटलोई में से अपनी भाप और मसाले की सुगन्ध फैला रही थी। दूसरे कमरे में जाकर देखा, उसका तत्काल ही बिछाया हुआ दूध-सा सफेद बिछौना मैले काले पानी से तर हो रहा था। कुर्सी पर पानी, टेबल पर पानी, किताबों पर पानी, बॉक्स, ट्रंकों पर पानी—सभी तरफ पानी-ही-पानी पड़ा है—यहाँ तक कि कोने में पड़ी हुई कपड़ों की अलगनी भी नहीं बची। उसके कीमती नये सूट पर भी मैले पानी के दाग लग गए हैं।

अपूर्व ने अपनी साँस रोककर पूछा, "कैसे हुआ?"

तिवारी ने उँगली से ऊपर की छत दिखाते हुए कहा, "उसी साले साहब का काम है। वह देखिए⋯"

वास्तव में तख्तों की छत के छेदों द्वारा अब तक जगह-जगह मैला पानी टपक रहा था। तिवारी ने इस दुर्घटना का जो वर्णन किया, उसका संक्षिप्त रूप इस प्रकार है—

अपूर्व के बाहर जाने के कुछ ही क्षणों बाद साहब मकान में आया। आज ईसाइयों का त्यौहार का दिन है। और जहाँ तक सम्भव हो, उत्सव को घोर बनाने के उद्देश्य से वह 'घोर' होकर आया था। पहले गीत और फिर नृत्य शुरू हुआ और शीघ्र ही दोनों के संयोग से 'शास्त्रोक्त संगीत' ऐसा प्रचण्ड हो उठा कि तिवारी को आशंका होने लगी कि तख्तों की छत शायद साहब का इतना भारी उत्सव न सँभाल सकेगी और सबकी-सब उसके सर पर आ टूटेगी। यह तो उसने सह लिया; पर रसोई के पास ही जब ऊपर से पानी गिरने लगा तब सब चीज बिगड़ने के भय से तिवारी ने बाहर निकलकर इसका विरोध किया। मगर साहब, चाहे वह काला हो या गोरा,

देशी आदमी की इस अशिष्टता को सहन न कर सका। उत्तेजित हो उठा, और क्षण-भर में वह उत्तेजना ऐसे क्रोध में परिणत हो गई कि उसने अपने कमरे में जाकर बाल्टी भर-भर के पानी डोलना शुरू कर दिया। इसके बाद जो कुछ हुआ उसे कहने की आवश्यकता नहीं। और अपूर्व ने स्वयं भी उसे थोड़ा-बहुत अपनी आँखों से देख लिया है।

अपूर्व कुछ देर तक मौन खड़ा रहा और फिर बोला, "साहब के कमरे में क्या और कोई नहीं है ?"

"क्या मालूम, शायद कोई हो। कोई एक शराबी उस साले से हाथा-पाई करके लड़ रहा था।" कहकर तिवारी खिचड़ी की बटलोई की ओर करुण दृष्टि से देखने लगा।

अपूर्व इसका अर्थ समझ गया कि किसी ने उसे रोकने का प्रयत्न अवश्य किया था, पर वह हमारे दुर्भाग्य को जरा भी घटा नहीं सका।

अपूर्व चुपचाप बैठा रहा। जो होना था सो हो चुका था, और कोई नया उपद्रव अब न था। उत्सव के आनन्द में विह्वल साहब के नये ऊधम का कोई लक्षण दिखाई न दिया, शायद अब उसने जमीन पकड़ ली होगी। केवल नेटिव तिवारी अब तक उसको क्षमा नहीं कर सका था। उसी का अस्फुट उच्छ्वास बीच-बीच में सुनाई दे जाता था।

अपूर्व ने हँसने की कोशिश करते हुए कहा, "तिवारी, जब भगवान् विरुद्ध होते हैं तब इसी प्रकार मुँह का कौर छिन जाता है। आओ, हम लोग समझ लें कि आज भी जहाज पर ही हैं। चिउड़ा-मुड़की, सन्देश जो थोड़े-बहुत बचे हों रात किसी प्रकार कट ही जाएगी। क्यों ?"

समर्थनसूचक संकेत पर उस बटलोई की ओर फिर एक बार करुण दृष्टि से देखकर तिवारी चिउड़ा-मुड़की के लिए उठा। सौभाग्य इस बार यह था कि खाने-पीने का बॉक्स घर में घुसते ही रसोईघर के एक कोने में रख दिया गया था और वहाँ से हटाया नहीं गया था—ईसाई का पानी कम-से-कम उस चीज की जात न बिगाड़ सका था।

फलाहार का सामान जुटाते हुए तिवारी ने रसोईघर में से कहा, "बाबूजी, यहाँ रहना तो नहीं हो सकता।"

अपूर्व ने अनमने भाव से कहा, "कदाचित् नहीं।"

तिवारी ब्राह्मण-परिवार का पुराना रसोइया था, उसने अबतक जो [illegible] मुँह ढाँप-ढूँपकर जो बातें कह दी थीं, उन बातों की याद करके वह कह उठा, "नहीं बाबूजी, इस घर में अब एक दिन भी नहीं रहा जा सकता। क्रोध में आकर मैंने अच्छा काम नहीं किया, साहब से मैं व्यर्थ में गाली-गलौज कर बैठा।"

अपूर्व ने कहा, "हाँ, गाली-गलौज न करके उसे मारना चाहिए था।"

तिवारी में क्रोध के बदले सुबुद्धि का उदय हो रहा था। उसने विरोध करते हुए कहा, "नहीं बाबू, वे लोग कैसे भी हों, साहब ठहरे। हम लोग आखिर भारतीय हैं।"

अपूर्व चुप रहा।

तिवारी ने साहस पाकर पूछा, "ऑफिस के दरबान से कहकर कल सबेरे ही यहाँ से और कहीं नहीं जाया जा सकता? मेरी समझ में तो चला जाना ही अच्छा है।"

अपूर्व ने कहा, "अच्छी बात है, कह देखना।" पर उसने मन-ही-मन समझ लिया कि तिवारी के अन्दर साहब के प्रति देशी आदमी की होनहार बुद्धि इतने में ही जाग्रत् हो उठी है। दुर्जन के विरुद्ध अब उसे कोई शिकायत नहीं रही है, बल्कि चुपचाप चल देना ही उसने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया है। उसने कहा, "ऐसा ही होगा, तुम खाने का प्रबन्ध करो।"

"अभी करता हूँ, बाबू।" वह कुछ-कुछ निश्चिन्त होकर अपने काम पर लग गया। परन्तु उसी एक बात के सूत्र में उस ऊपर वाले फिरंगी के दुर्व्यवहार से अकस्मात् अपूर्व का सम्पूर्ण चित्त मारे क्रोध के जल उठा।

उसने सोचा, यह तो केवल मेरे और शराबी के बीच का ही प्रश्न नहीं है। सभी कोई हमेशा इस प्रकार लांछन सह लिया करते हैं, इसी से तो इनका साहस दिन-पर-दिन बढ़कर आज ऐसा भयंकर हो उठा है कि हमारे प्रति होने वाले अन्याय का धिक्कार। चुपचाप और बिना विचार सह लेने को ही हम लोग कर्तव्य समझ बैठे हैं। इसी से तो आज मेरा नौकर मुझे जल्दी से भागकर आत्म-रक्षा करने का उपदेश दे रहा है। अपमान का प्रश्न तक उसके मन में न उठा।

महाराज बेचारा रसोईघर में बैठा बड़े प्रयत्न से स्वामी के लिए

चिउड़ा-मुड़की का फलाहार बना रहा था। वह जान भी न पाया कि कब उसका मालिक लट्ठ उठाकर दबे पाँव सीढ़ी से ऊपर चढ़ गया।

दुमंजिले पर साहब का दरवाजा बन्द था। उस बन्द दरवाजे पर वह बार-बार धक्का देने लगा।

कुछ क्षण बाद एक भयभीत नारी-कण्ठ से अंग्रेजी में जवाब आया, "कौन?"

अपूर्व ने कहा, "मैं नीचे रहने वाला हूँ। उस गोरे को एक बार देखना चाहता हूँ।"

"क्यों?"

"उसे दिखाना चाहता हूँ, उसने मेरी कितनी हानि की है। उसका भाग्य अच्छा था, जो मैं उस समय था नहीं।"

"वे सो गये हैं।"

अपूर्व ने अत्यन्त कठोर स्वर से कहा, "उठा दीजिए। यह सोने का समय नहीं है। रात को सोवें। मैं तंग करने नहीं आऊँगा। लेकिन अभी उसके मुँह का उत्तर बिना सुने मैं यहाँ से एक कदम भी नहीं हिलूँगा।" इतना कहकर इच्छारहित पर वह अपने हाथ की लाठी को सीढ़ी पर मारकर आवाज कर बैठा।

पर न तो दरवाजा ही खुला और न कोई उत्तर ही आया। दो-एक मिनट और ठहरकर अपूर्व फिर चिल्लाया, "मैं रुकी नहीं जा सकता—उनसे बाहर आने के लिए कहिए।"

वह दरवाजे के बहुत ही पास आकर नम्र और अत्यन्त मृदु कण्ठ से बोली, "मैं उनकी लड़की हूँ। पिताजी की ओर से आपसे क्षमा माँगती हूँ। उन्होंने जो कुछ किया है, अपने होश-हवास में नहीं किया। पर आप विश्वास रखिये, आपकी जितनी हानि हुई है, कल हम लोग उसकी पूर्ति कर देंगे।"

लड़की के कोमल स्वर से अपूर्व नरम पड़ गया लेकिन उसका गुस्सा कम न हुआ। बोला, "उन्होंने जंगली के समान मेरा काफी नुकसान किया है। मैं परदेशी अवश्य हूँ, मगर आशा करता हूँ कि कल सवेरे वे स्वयं मुझसे मिलकर इसका फैसला करने की कोशिश करेंगे।"

लड़की ने कहा, "अच्छा," फिर कुछ देर चुप रहकर बोली, "आपकी तरह हम लोग भी यहाँ नये हैं। कल शाम को हम लोग मौलमीन से यहाँ आये हैं।"

अपूर्व आहिस्ता से नीचे उतर गया। नीचे आकर देखा—अब तक तिवारी भोजन के कार्य में ही लगा हुआ है। इतनी बात हो गई, उसे इसका कुछ पता नहीं चला।

थोड़ा-सा खाकर अपूर्व अपने सोने के कमरे में आकर सीधी तोशक और तकिया आदि को नीचे फेंककर रात-भर के लिए किसी प्रकार से बिस्तर करके पड़ा रहा।

जब से विदेशी धरती पर उसने पैर रखा है तब से उसकी हानि हैरानी और दिक्कत की सीमा नहीं। मालूम नहीं, इस यात्रा में उस पर कैसी बीतेगी! इस दुःख और चिन्ता के साथ-साथ एक बात और भी उसे याद आ रही थी, वह अपरिचित युवती कौन है? वह सामने नहीं आई—देखने में कैसी है, क्या आयु है, कैसे स्वभाव की है—कुछ भी अनुमान नहीं कर सका, सिर्फ इतना ही जान सका कि उसका अंग्रेजी उच्चारण अंग्रेजों जैसा नहीं है। या तो मद्रासी होगी, नहीं तो गोआनीज या और कोई। परन्तु चाहे जो हो, वह अपने को क्रिश्चियन-धर्मावलम्बी राजा की जाति समझने वाले अपने पिताओं के समान कठोर और अत्यन्त अभिमानी नहीं है। अपने पिता के अन्याय के लिए लज्जित है—उसके क्षीण, कोमल कण्ठ की क्षमा प्रार्थना अपूर्व के पुरुष अभिमान के साथ अब मानो गलत लगने लगी। स्वभावतः वह उस प्रकृति का नहीं है, किसी को भी कड़ी बात कहने में उसे संकोच होता है—खासकर तिवारी के वर्णन से सामञ्जस्य मिलाकर जब उसे मालूम हुआ कि शायद इस लड़की ने ही अपने शराबी और दुराचारी पिता को रोकने की [illegible] ज्ञान से कोशिश की होगी, तब उसे पश्चात्ताप के साथ ऐसा [illegible] के लिए चुप रह जाना ही अच्छा था। जो होना था सो [illegible] के आवेश में ऊपर जाकर ये बातें न कहता तो ठीक [illegible]

[illegible] की कर्कश भौंकने की आवाज सुनाई दे रही [illegible] दूसरे ही क्षण उसकी आवाज सुनाई दी—

"कौन ?"

अपूर्व चौंक पड़ा, पर उसे उत्तर सुनाई नहीं दिया। बल्कि उसके बदले तिवारी का कठोर स्वर ही उसके कान में पड़ा। वह अपनी भाषा में कह रहा था, "नहीं-नहीं, मेम साहब, ये सब तुम ले जाओ। बाबूजी का खाना-पीना हो चुका। यह सब हम लोग नहीं छूते।"

अपूर्व उठके बैठ गया और कान खड़े करके उसने उस ईसाई लड़की का स्वर पहचान लिया, पर बात नहीं समझ सका। लेकिन तिवारी ने उसे समझा दिया। उसने कहा, "किसने कहा कि हम लोगों का खाना नहीं हुआ ? हो चुका। यह सब तुम ले जाओ, बाबू सुनेंगे तो क्रोधित होंगे।"

अपूर्व उठके सामने आ खड़ा हुआ, बोला, "क्या हुआ तिवारी ?"

लड़की चौखट के पास खड़ी थी, उसी समय हट गई।

अभी तुरन्त शाम हुई थी, बत्ती नहीं जली थी, सीढ़ी की ओर से अन्धकार की एक छाया भीतर आ पड़ी थी, जिससे लड़की बिलकुल साफ न दीखने पर भी पहचान ली गई। उसका रंग अंग्रेजों के समान सफेद नहीं, पर थी खूब गोरी। उमर उन्नीस-बीस या और भी अधिक हो सकती है, और जरा लम्बी होने से ही शायद दुबली-सी दिखाई दी। ऊपर के होंठ के नीचे सामने के दाँत जरा ऊँचे न मालूम होते तो चेहरा शायद अच्छा ही लगता। पाँवों में स्लीपर थे और बदन पर बढ़िया मद्रासी साड़ी—शायद त्यौहार होने से—लेकिन ढंग कुछ बंगाली और पारसियों जैसा था। एक जापानी फलदानी में कुछ सेब-नाशपाती, दो बेदाने और अँगूरों का एक गुच्छा सामने जमीन पर रखा था।

अपूर्व ने कहा, "यह सब क्यों ?"

अंग्रेजी में धीरे से लड़की ने उत्तर दिया, "आज हम लोगों का त्यौहार है। माताजी ने भेजा है। फिर आज आप लोगों का खाना-पीना भी नहीं हुआ।"

अपूर्व ने कहा, "अपनी माँ को मेरी ओर से धन्यवाद दीजिए। हाँ, हम लोग खा-पी चुके हैं।"

लड़की चुप रही।

अपूर्व ने पूछा, "हम लोगों ने नहीं खाया है, यह बात उनसे किसने

नहीं ?"

लड़की ने लज्जित स्वर में कहा, "इन्हीं को लेकर पहले झगड़ा हुआ था। इसके अतिरिक्त मुझे मालूम है"""।"

अपूर्व ने सिर हिलाकर कहा, "उन्हें हजारों धन्यवाद, लेकिन सचमुच ही हम लोग सभी भूखे हैं।"

एक क्षण मौन रहकर लड़की बोली, 'यह ठीक है, पर अच्छी प्रकार नहीं हुआ, और ये तो बाजार के फल हैं—इनमें कोई दोष नहीं।"

अपूर्व समझ गया कि उसे शान्त करने के लिए यह सब कहा जा रहा है। थोड़ी देर पहले वह लाठी और गले की आवाज में अपने स्वभाव का जैसा परिचय दे आया है, उससे कल सवेरे क्या होगा, यह सोचकर ही उसे प्रसन्न करने के लिए भेंट लेकर उपस्थित हुई है। इसी से उसने कोमल स्वर में कहा, "नहीं, इनमें कोई दोष नहीं।" और तिवारी से बोला, "बाजार के फल हैं, इनके लेने से क्या दोष है महाराज ?"

तिवारी महाराज राजी न हुए। बोले, "बाजार के फल तो बाजार से ले आयेंगे। आज रात को हम लोगों को आवश्यकता भी नहीं और माँ ने मुझे इन बातों के लिए बार-बार मनाही कर दी है। मेम साहब, यह सब तुम ले जाओ—हमें आवश्यकता नहीं है।"

माँ ने मनाही की है, या कर सकती है—इसमें असम्भव कुछ नहीं। यही ठीक है कि वे अपने पुराने और विश्वस्त नौकर तिवारी महाराज को इन सब बातों में विदेश के लिए उसका अभिभावक नियुक्त कर सकती हैं; परन्तु उस दिन चलते समय वह माँ को जो वचन दे आया है उसका स्मरण करके उसने मन ही मन कहा—केवल माँ की आज्ञा तो नहीं है, मैं भी तो इस सत्य को पालने की प्रतिज्ञा कर आया हूँ। परन्तु, फिर भी इस संकुचित, लज्जित और अपरिचित तरुणी को, जो उसे प्रसन्न करने के लिए डरती उसके दरवाजे पर आई थी, भेंट की इन मामूली चीजों को छून की ि समझकर अपमानित कर वापस भेजना भी उसे 'सत्य' मालूम न बात वह मुंह खोलकर कह न सका, मौन ही रहा।

।८। ने कहा, "यह सब हम लोग नहीं छुएँगे, मेम साहब। आप ले यह स्थान धो डालूं।"

कुछ देर तक लड़की चुपचाप खड़ी रही। फिर हाथ बढ़ा के थाली उठायी और वह धीरे से चली गई।

अपूर्व ने दबे हुए रूखे स्वर में कहा, "भले आदमी, ले तो लेता, खाता चाहे नहीं। लेकर बाद में चुपके से फेंक भी सकता था!"

तिवारी ने आश्चर्यचकित होकर कहा, "लेकर फेंक देता? व्यर्थ ही बिगाड़ने में क्या लाभ था, बाबू?"

"क्या लाभ था बाबू! मूर्ख कहीं का!" यह कहकर अपूर्व सोने चला गया। बिस्तर पर पड़ते ही पहले तो तिवारी पर इतना क्रोध आया कि उसकी सारी देह जलने लगी; परन्तु जैसे-जैसे वह इसकी छानबीन करने लगा, वैसे-वैसे मालूम होने लगा कि ऐसा मैं नहीं कर सकता था। लेकिन शायद यह अच्छा ही हुआ कि उसने साफ कहके लौटा दिया। सहसा उसे अपने बड़े मामा की बात याद आ गई। उस सदाचारी-निष्ठावान ब्राह्मण पण्डित ने एक दिन उसके घर भोजन करना अस्वीकार कर दिया था। उनसे स्वीकार कराने की कोई युक्ति नहीं। करुणामयी इस बात को जानती थी, फिर भी उन्होंने एक युक्ति निकालनी चाही। परन्तु उस गरीब ब्राह्मण ने जरा मुस्कराकर कहा, "नहीं जीजी, यह नहीं हो सकता। हालदार साहब गुस्सैल आदमी हैं। इस अपमान को वे सह नहीं सकेंगे—हो सकता है कि तुम्हें भी कुछ झेलना पड़े। मेरे गुरुदेव तो यह कहा करते थे कि मुरारी, सत्य पालन करने में दुःख है। उसे कष्ट और आघातों में से तो किसी-न-किसी दिन पाया भी जा सकता है, पर प्रतारणा के मीठे मार्ग से वह कभी नहीं चलता-फिरता। इससे यही अच्छा है बहन कि मैं बिना खाए ही चला जाऊँ।" करुणामयी पर अनेक बार ऐसे-ऐसे बहुत-से दुःख पड़ चुके है, परन्तु कभी भी भद्रता को उन्होंने दोष नहीं दिया। उस बात को याद करके अपूर्व मन-ही-मन बार-बार कहने लगा—यह अच्छा ही हुआ—तिवारी ने ठीक ही किया।

३

अपूर्व ने सोचा कि सुबह-सुबह ही वह एक बार बाजार घूम आए। यहाँ के म्लेच्छाचार की बातें समुद्र पार करके माँ के कानों तक जा पहुँची है, इसलिए उसे अस्वीकार करने से काम नहीं चल सकता—मानना ही पड़ेगा। परन्तु हिन्दुत्व की ध्वजा बाँधे वही अकेला तो काला पानी पार होकर आया नहीं ! सच्चे हिन्दू और भी तो यहाँ रहते होंगे जो नौकरी की गरज और शास्त्र की आज्ञा, इन दोनों के मध्य-मार्ग उसके पहले ही बना करके धर्म-अर्थ के विरोध को मेटते हुए रह रहे है। उस सरल मार्ग की खोज के लिए उनसे परिचित होना अत्यावश्यक है, और विदेश में घनिष्ठता स्थापित करने के लिए बाजार के सिवा इतना बड़ा सुयोग और कहाँ मिल सकता है ? वास्तव में अपने कानों से सुनकर और आँखों से देखकर इस बात का निर्णय करना आवश्यक है कि माँ की आज्ञा के विरुद्ध आचरण न करते हुए भी इस देश में सचमुच रहा जा सकता है या नहीं। पर वह बाहर न निकल सका, क्योंकि ऊपर का साहब कब क्षमा माँगने आयेगा, इसका कोई ठीक नहीं। उसके आने में तो कोई सन्देह नहीं। एक तो, उपद्रव उसने होश-हवास में नहीं किया; और दूसरे, आज जब उसका नशा छूटेगा तो स्त्री और बेटी उसे किसी भी प्रकार छोड़ेंगी नहीं, ऐसा उनके मुँह का उसे इशारा कल ही मिल गया है।

लड़की को उसे सोने से उठने पर कई बार याद आई है। निद्रित अवस्था में भी उसकी भद्रता, उसकी सज्जनता, उसका विनम्र कण्ठ-स्वर मानो अपूर्व के कानों में एक अज्ञात स्वर की लहर पैदा करता रहा है। शराबी पिता के दुराचार से जैसे उस लड़की की शरम की कोई सीमा न रही थी; वैसे ही तिवारी की रूक्षता से अपूर्व स्वयं भी शर्मिंदा हुए बिना न रहा था। दूसरों के अपराध से अपराधी होकर इन दो अपरिचित मनों में शायद यही तरह की सम्वेदना का सूक्ष्म सूत्र था जिसे बिना कहे अस्वीकार करने का मन गवाही न देता था।

सिर के ऊपर के पड़ोसियों के जागने का शब्द नीचे आ पहुँचा

और प्रत्येक पदक्षेप में वह आशा करने लगा कि अब साहब उतरकर उसके दरवाज़े पर आ खड़ा होगा। क्षमा वह करेगा, यह तो तय है; परन्तु चिन्ता उसे इस बात की है कि कल का औचित्य क्या सहज और साधारण हो जायेगा और मन के दाग पोंछे जा सकेंगे? लेकिन क्षमा माँगने का समय निकला जाने लगा। ऊपर छोटे-छोटे कदमों की आहट के साथ साहब के जूतों का शब्द क्रमशः साफ सुनाई देने लगा। उससे उसके पैरों की आहट में शरीर के भार का तो अन्दाज लगा पर दीनता का कोई लक्षण नहीं प्रकट हुआ। इस तरह आशा और बेचैनी में प्रतीक्षा करते-करते घड़ी में जब नौ बज गये और नये ऑफिस के लिए जाने की तैयारी करने का समय जब निकट आया तब सुनाई दिया कि साहब नीचे उतर रहे हैं। उसके पीछे और भी दो जनों के पैरों की आवाज़ अपूर्व ने सुनी। साथ-ही-साथ उसके दरवाज़े का कुण्डा ज़ोर से झनझना उठा और रसोईघर से दौड़कर तिवारी ने सूचना दी, "बाबूजी, कल का साहब ससुरा आके कुण्डा खटखटा रहा है।" उसकी आवाज़ का क्रोध छिपा नहीं रहा।

अपूर्व ने कहा, "महाराज ! दरवाज़ा खोल दें। उन्हें भीतर आने को कह दें।"

तिवारी ने दरवाज़ा खोला। अपूर्व को अत्यन्त गम्भीर स्वर में सुनाई दिया, "एई, तुम्हारा साहब किधर है?"

तिवारी ने क्या जवाब दिया, ठीक से सुनाई नहीं दिया। जहाँ तक सम्भव है, सम्मान के साथ स्वागत किया होगा। मगर उत्तर में साहब की आवाज़ सीढ़ी के तख्तों की पीठ से टकराकर मानो हुँकार उठी, "बुलाओ !"

कमरे के भीतर अपूर्व चौंक पड़ा। बाप रे ! यह क्या पश्चात्ताप स्वर है?

एक बार उसने सोचा कि साहब ने सुबह उठते ही शराब पी है, इसलिए इस समय जाना चाहिए या नहीं, पर कुछ और सोचने के पहले ही फिर आज्ञा आयी, "जल्दी बुलाओ !"

धीरे-धीरे पास आकर अपूर्व खड़ा हो गया।

साहब ने क्षण-भर उस सर से पाँव तक एक नजर देखकर अंग्रेजी में पूछा, "अंग्रेजी जानते हो?"

"हाँ।"

"मेरे सो जाने के बाद कल तुम मेरे यहाँ ऊपर आये थे?"

"हाँ।"

साहब ने कहा, "ठीक है। लाठी ठोकी थी? अनधिकार प्रवेश कर के लिए दरवाजा तोड़ने का प्रयत्न किया था?"

अपूर्व मारे आश्चर्य के दंग रह गया।

साहब ने कहा, "दुर्भाग्यवश यदि दरवाजा खुला होता तो तुम मेरे घ में घुसकर मेरी स्त्री या लड़की पर आक्रमण करते? इसी से मेरे जाग समय तुम नहीं गये!"

अपूर्व ने धीरे से कहा, "तुम तो सो रहे थे, तुमने ये सब बात जा कैसे?"

साहब ने कहा, "लड़की ने मुझे सबकुछ बता दिया। उससे तुम गाली-गलौज की।"—इतना कहकर उसने पास खड़ी हुई लड़की की ओ इशारा किया। यह वही लड़की है जो कल रात को फल देने आई थी। प कल अपूर्व इसे अच्छी तरह देख नहीं सका था, और आज भी साहब क विशाल देह की ओट में उसे साड़ी के किनारे के सिवा और कुछ दिखाई दिया। उसने गर्दन हिलाकर समर्थन किया या नहीं, सो भी समझ में न आया, पर इतना साफ समझ में आ गया कि वे लोग भले आदमी नहीं हैं सभी घटना को जानबूझकर विकृत और उलटी बना देने का प्रयत्न कर र हैं। इसलिए, अत्यन्त सावधान होने की आवश्यकता है।

साहब ने कहा, "मैं जागता होता तो तुम्हें लात मारकर सड़क पर फें देता और मुँह में एक भी दाँत नहीं रहता! वह अवसर जब हाथ से निक गया, तो पुलिस के हाथ से जितना हो सके उसी से अब सन्तुष्ट होन पड़ेगा। हम लोग जा रहे हैं। तुम इसके लिए तैयार रहना।"

[illegible]र्व ने सिर हिलाकर कहा, पर उसका चेहरा बिल्कुल पीला प

[illegible] ने लड़की का हाथ पकड़कर कहा, "चलो।" और उतरते-उत [illegible], "कावर्ड! स्त्रियों पर हमला करने की कोशिश! मैं तुम्हें ऐ [illegible] कि जिन्दगी-भर न भूलोगे।"

तिवारी बगल में खड़ा हुआ सब सुन रहा था।

उन लोगों के चले जाते ही रोनी-सी सूरत बनाकर बोला, "अब क्या छोटे बाबू ?"

उसने सामने को तुच्छता देते हुए कहा, "होगा क्या ?"

मगर उसके चेहरे ने दूसरी ही बात कही, तिवारी उसे समझ गया। "मैंने तो तभी कहा था बाबू, जो होना था वह हो चुका, अब इन्हें की आवश्यकता नहीं। ये सब साहब-मेम ठहरे।"

अपूर्व ने कहा, "साहब-मेम हैं तो क्या हुआ ?"

तिवारी ने कहा, "थाने में गये हैं जो ?"

अपूर्व ने कहा, "गये है तो क्या ?"

दुखी होकर कहा तिवारी ने, "बड़े बाबू को एक तार कर दे छोटे न हो तो वे ही आ जायें।"

"तू पागल तो नहीं हो गया तिवारी ! रसोई में सब जलकर राख हो होगा। साढ़े दस बजे मुझे ऑफिस जाना होगा।"

वह अपने कमरे में और तिवारी रसोईघर मे चला गया। आज रसोई -परोसने से लेकर बाबू का ऑफिस जाना तक सबकुछ उसे बिल्कुल त्य लगने लगा। वह मन-ही-मन अपने को सब विपत्ति की जड़ समझ- धिक्कारने लगा। उसका चित्त इस देश की म्लेच्छता पर, ग्रह-नक्षत्रों री दृष्टि पर, पुरोहित के मुहूर्त सोधने पर और सबसे बढ़कर, करुणा- की अर्थ-लालसा पर दोष देकर किसी प्रकार जरा सांत्वना ढूँढने की श करने लगा।

उसे रसोई का काम समाप्त करना पड़ा।

करुणामयी के हाथ का बना हुआ आदमी ठहरा वह, अतएव मन ा चाहे कितना ही दुश्चिन्ताग्रस्त क्यों न हो, हाथ के काम में कहीं भी चूक नहीं हुई। अपूर्व ने भोजन पर बैठकर उसे साहस देने के अभिप्राय सोई की कुछ अधिक प्रशंसा की। एक बार अन्न-व्यंजन की सूरत-शक्ल पश गाया और दो-एक कौर मुँह में देकर कहा, "आज रसोई क्या बनी अमृत है, तिवारी ! कई दिन से खाया नहीं। समझा था कि सब जला- डालेगा। कितना डरपोक आदमी है तू—बड़े अच्छे आदमी को छोटकर

उनकी इच्छा ही नहीं हुई। छोटे बाबू का ऑफिस जाने का समय हुआ जा रहा है। वह नहीं जानता कि उनके चले जाने पर वह अकेला इस घर में कैसे समय काटेगा? साहब थाने में सूचना देने गया है, वहाँ से लौटकर शायद वह दरवाजा तोड़ डाले! यह भी सम्भव है कि वे साथ में पुलिस ले आयें और पुलिस उसे बाँधकर ले जावे! क्या होगा और क्या नहीं, सब अनिश्चित है। ऐसी दशा में, असली और नकली साहब में कितना भेद है। एक ही मेज पर दूसरा खाता है या नहीं, और न खाने से दूसरे पक्ष की लाछना और वेदना कितनी बढ़ती है—इन सब बातों में उसे जरा भी दिलचस्पी नहीं रही। भोजनादि करके अपूर्व कपड़े पहन रहा था तो तिवारी ने कमरे के परदे को जरा-सा हटाकर कहा, "जरा रुक जाते तो ठीक होता।"

"क्यों?"

"उनके लौट आने तक···!"

अपूर्व ने कहा, "ऐसा भी कहीं होता है! आज मेरी नौकरी का पहला दिन है—क्या सोचेंगे वे लोग, बता तो?"

तिवारी चुप रह गया।

अपूर्व ने कहा, "दरवाजा बन्द करके चुपचाप बैठा रह—मैं जितनी जल्दी हो सकेगा, आ जाऊँगा—दरवाजा तो तोड़ नहीं सकता—क्या करेगा वह हरामी?"

तिवारी ने कहा, "अच्छा।" पर उसने एक दीर्घ साँस को दबाने का प्रयत्न किया, इस बात को अपूर्व ताड़ गया।

अपूर्व के बाहर जाने के पहले तिवारी ने धीमे स्वर में कहा, "आज पैदल नहीं जाइएगा छोटे बाबू, रास्ते में एक गाड़ी कर लीजिएगा।"

"अच्छा, देखा जाएगा।" कहकर अपूर्व नये बूटों की मच-मच आवाज करता हुआ सीढ़ियों से नीचे उतर गया। उसके चलने का ढंग देखकर मालूम नहीं हुआ कि उसके मन में नई नौकरी का आनन्द जरा भी शेष रह गया है।

बोथा कम्पनी के साझीदार पूर्व प्रान्त के मैनेजर रोजेन साहब अभी बर्मा में ही थे। रंगून का ऑफिस उन्होंने स्थापित किया था। अपूर्व को उन्होंने सहृदयता के साथ अपनाया और उसकी सूरत-शक्ल, बातचीत और

कर लिया है। उस कागज को अपूर्व की टेबल पर रखकर बोले, "इनके बारे में आपकी राय जानना चाहता हूँ।"

फिर तलवरकर से बोले, "आपकी टेबल पर भी एक कापी भिजवा दी है।—नहीं-नहीं, अभी रहने दीजिए—आज मैनेजर के सम्मान में आफिस की दो बजे छुट्टी होगी। देखिए, मैं तो जल्दी चला जाऊँगा; फिर आप ही दोनों पर सब काम-काज का भार रहेगा। मैं इंग्लिशमैन नहीं हूँ—यद्यपि यह राज्य किसी दिन हम ही लोगों के हाथ में आने वाला था, तो भी अंग्रेजों के समान हम लोग इण्डियनों को छोटा नहीं समझते। अपने बराबर ही मानते हैं—केवल फर्म की ही नहीं, हम लोगों की अपनी प्रगति भी हमारे कर्त्तव्य-ज्ञान पर निर्भर है—अच्छा, गुड डे—ऑफिस दो बजे बन्द हो जाना चाहिए। ···" कहते हुए वे जैसी तेजी के साथ आए थे, वैसी ही तेजी से वापस चले गए और इसके कुछ क्षण बाद उनकी मोटर का शब्द बाहर दरवाजे के साथ सुनाई दिया।

दो बजे दोनों एक साथ ऑफिस से निकले।

तलवरकर शहर में नहीं रहते, करीब दस मील पश्चिम की ओर इन-सिन नामक स्थान में उनका घर है। घर में उनकी स्त्री और एक छोटी लड़की है। घर के साथ उनकी थोड़ी-सी जमीन है जिसमें साग-सब्जी आसानी से पैदा की जा सकती है। खूब खुली जमीन है, शहर का शोर नहीं —काफी ट्रेनें छूटती हैं, आने-जाने में कोई दिक्कत नहीं। बोले, "हालदार बाबू, ऑफिस के बाद मेरे यहाँ आपका चाय का निमन्त्रण रहा।"

अपूर्व ने कहा, "मैं चाय नहीं पीता!"

"नहीं पीते? मैं भी नहीं पीता था—अच्छा, फिर फल आदि शर्बत—हम लोग आप ही जैसे ब्राह्मण हैं—"

अपूर्व ने कहा, "ब्राह्मण तो हैं ही। लेकिन आप लोग यदि हमारे हाथ का खा सकें, तभी मैं आपकी स्त्री के हाथ का खा सकूँगा।"

रामदास ने कहा, "मैं तो खा सकता हूँ पर मेरी स्त्री की बात यह है कि—अच्छा, उनसे पूछकर बताऊँगा। हमारे यहाँ की औरतें बड़ी—अच्छा, आपका घर तो पास ही है, चलिए, आपको पहुँचा दूँ। मेरी गाड़ी तो वहाँ पाँच बजे आवेगी।"

विश्वविद्यालय की डिग्री आदि देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। बंगाली कर्म-चारियों को बुलाकर उन्होंने अपूर्व का परिचय करा दिया और उनसे जब से यहाँ आए हैं तब से अब तक का तीन-तीन महीने का व्यावहारिक रहस्य उसे बता देंगे, ऐसी आशा थी। बातचीत, परिचय और अन्य उत्साह में उसके भीतर की ग्लानि थोड़ी देर के लिए दूर हो गई। एक आदमी ने उसे विशेष रूप से आकृष्ट किया, वह था ऑफिस का एकाउन्टेन्ट। मराठी मालूम है, नाम है रामदास तलवलकर। उमर अन्दाजन उसके बराबर होगी, शायद कुछ अधिक भी हो सकती है। दीर्घ आकृति, बलिष्ठ गोरा बदन—सुन्दर कहने में आपत्ति न होगी। पहनावे में पाजामा था और लम्बा कोट, सिर पर पगड़ी, ललाट पर लाल चन्दन का टीका। अंग्रेजी बातचीत उनकी बहुत अच्छी और शुद्ध थी, मगर अपूर्व के साथ उसने आरम्भ से ही हिन्दी में बातचीत करना शुरू किया। अपूर्व हिन्दी अच्छी न जानता था, मगर जब देखा कि वह हिन्दी के सिवाय और किसी भी भाषा में उत्तर नहीं देता, तब उसने भी हिन्दी बोलना शुरू किया।

अपूर्व ने कहा, "मैं हिन्दी अच्छी नहीं जानता, बहुत गलतियाँ होंगी।"

रामदास ने कहा, "गलती मुझसे भी होती है, हममें से किसी की भी यह मातृभाषा नहीं है।"

अपूर्व ने कहा, "अगर औरों की भाषा में ही बोलना हो, तो अंग्रेजी ने क्या बिगाड़ा है?"

रामदास ने कहा, "अंग्रेजी मेरी और भी गलत होती है।" फिर जरा हँसकर कहा, "आप न हो तो अंग्रेजी में ही बोलिएगा, मैं हिन्दी में उत्तर दूँ तो मुझे क्षमा करना होगा।"

अपूर्व ने कहा, "मैं भी हिन्दी ही बोलने का प्रयत्न करूँगा, पर गलती होने पर मुझे भी क्षमा करना पड़ेगा।"

इस बीच रोजेन साहब स्वयं ही मैनेजर के कमरे में आ पहुँचे। उमर पचास के लगभग। हॉलैण्ड के रहने वाले। वेशभूषा में सादगी। चेहरे पर घनी दाढ़ी-मूँछें हैं। अंग्रेजी उच्चारण टूटा-फूटा-सा। पक्के व्यवसायी आदमी हैं। इन्हीं कुछ दिनों में उन्होंने बर्मा के नाना स्थानों में घूम-फिरकर, हर प्रकार के लोगों से तथ्य संग्रह करके काम-काज का एक कच्चा लेखा तैयार

कर लिया है। उस कागज को अपूर्व की टेबल पर रखकर बोले, "इसके बारे में आपकी राय जानना चाहता हूँ।"

फिर तलवरकर से बोले, "आपकी टेबल पर भी एक कापी भिजवा दी है।—नहीं-नहीं, अभी रहने दीजिए—आज मैनेजर के सम्मान में ऑफिस की दो बजे छुट्टी होगी। देखिए, मैं तो जल्दी चला जाऊँगा; फिर आप ही दोनों पर सब काम-काज का भार रहेगा। मैं इंग्लिशमैन नहीं हूँ—यद्यपि यह राज्य किसी दिन हम ही लोगों के हाथ में आने वाला था, तो भी अंग्रेजों के समान हम लोग इण्डियनों को छोटा नहीं समझते। अपने बराबर ही मानते हैं—केवल फर्म की ही नहीं, हम लोगों की अपनी प्रगति भी हमारे कर्तव्य-ज्ञान पर निर्भर है—अच्छा, गुड डे—ऑफिस दो बजे बन्द हो जाना चाहिए।..." कहते हुए वे जैसी तेजी के साथ आए थे, वैसी ही तेजी से वापस चले गए और इसके कुछ क्षण बाद उनकी मोटर का शब्द बाहर दरवाजे के पास सुनाई दिया।

दो बजे दोनों एक साथ ऑफिस से निकले।

तलवरकर शहर में नहीं रहते, करीब दस मील पश्चिम की ओर इन-मिन नामक स्थान में उनका घर है। घर में उनकी स्त्री और एक छोटी लड़की है। घर के साथ उनकी थोड़ी-सी जमीन है जिसमें साग-सब्जी आसानी से पैदा की जा सकती है। खूब खुली जमीन है, शहर का शोर नहीं—काफी ट्रेनें छूटती हैं, आने-जाने में कोई दिक्कत नहीं। बोले, "हालदार बाबू, ऑफिस के बाद मेरे यहाँ आपका चाय का निमन्त्रण रहा।"

अपूर्व ने कहा, "मैं चाय नहीं पीता!"

"नहीं पीते? मैं भी नहीं पीता था—अच्छा, फिर फल आदि शर्बत—हम लोग आप ही जैसे ब्राह्मण हैं—"

अपूर्व ने कहा, "ब्राह्मण तो हैं ही। लेकिन आप लोग यदि हमारे हाथ का खा सकें, तभी मैं आपकी स्त्री के हाथ का खा सकूँगा।"

रामदास ने कहा, "मैं तो खा सकता हूँ पर मेरी स्त्री की बात यह है कि—अच्छा, उनसे पूछकर बताऊँगा। हमारे यहाँ की औरतें बड़ी—अच्छा, आपका घर तो पास ही है, चलिए, आपको पहुँचा दूँ। मेरी गाड़ी तो वही पाँच बजे आवेगी।"

अपूर्व ने कुछ ध्यान नहीं दिया। अब तक वह सबकुछ भूला हुआ था, घर की बात चलते ही पल-भर में वहाँ के तमाम झगड़ों और सारी कटुता ने चिनगारी के समान चमककर उसके चेहरे की सरलता को पोंछकर मिटा दिया। यहाँ पांव रखते ही वह ऐसी लज्जाजनक दलदल में सन गया है- इस बात को जानने पर उसका सिर-सा कट गया। अब तक वहाँ क्या हुआ होगा, उसे कुछ भी नहीं मालूम। अकेले ही उसके बीच जाकर खड़ा होना होगा। परन्तु परिचय के इस प्रथम काल में ही उसका साथी सहसा क्या समझ बैठेगा, इस बात को सोचकर अपूर्व अत्यन्त संकुचित हो उठा। बोला, "देखिए, सबकुछ अभी अस्त-व्यस्त—" बात वह पूरी न कर सका। उसके सकोच और लज्जा को अनुभव करके रामदास हँसता हुआ बोला, "एक ही रात में सब सिलसिले की आशा तो मैं नहीं करता, साहब। मुझे भी एक दिन नया घर बसाना पड़ा था, मेरी तो स्त्री थी। चलिए, देखूँ मैं क्या कर सकता हूँ?—ऐसी अस्त-व्यस्तता में ही तो मित्र की आवश्यकता है।"

अपूर्व मौन रहा।

वह स्वभावतः मजाक पसन्द आदमी है और कोई समय होता तो वह हँसी में कह सकता था कि अपनी स्त्री के साथ मेरी जबरदस्त अनबन है! पर अभी हँसी-मजाक का समय नहीं था। इस बन्धुहीन देश में आज उसे मित्र की बहुत आवश्यकता है, लेकिन नव परिचित इस मराठी मित्र को उस आवश्यकता के लिए बुलाने या ले जाने में उसको सकोच होने लगा। रामदास की बात उसने ठीक स्वीकार कर ली हो सो बात नहीं; पर दोनों चलते-चलते जब मकान के सामने जा पहुँचे तब अपूर्व तलवरकर को अपने घर आमन्त्रित किए बिना न रह सका। ऊपर चढ़ते समय देखा कि वह ईसाई लड़की भी ठीक उसी समय सीढ़ी से उतर रही है। बाप उसके साथ नहीं है, वह अकेली है। दोनों एक किनारे हटकर खड़े हो गये।

लड़की ने किसी की ओर देखा नहीं, धीरे से उतरकर जब वह कुछ चली गई, तब रामदास ने पूछा, "ये लोग निमजिले पर रहते होंगे ?"

अपूर्व ने कहा, "नहीं, देशी क्रिस्तान हैं। सम्भव है, मद्रासी हो या गोआनीज या और कहीं के पर बंगाली नहीं हैं।"

रामदास ने कहा, "मगर यह तो कपड़े और ढंग देखकर ठीक आप ही लोगों जैसे मालूम हुए?"

अपूर्व ने कुछ आश्चर्यान्वित होकर प्रश्न किया, "यह हम लोगों का ढंग है, आपने कैसे जाना?"

रामदास ने कहा, "मैंने बम्बई में, पूना में, शिमला में बहुत-सी बंगाली महिलाओं को देखा है। ऐसा सुन्दर पहनावा भारत में और कहीं पर नहीं है।"

"हो सकता है'—कहकर अपूर्व अपने घर के बन्द दरवाजे पर पहुँचकर बार-बार मुक्का मारने लगा। कुछ देर बाद भीतर से सतर्क कण्ठ की आवाज आई, "कौन?"

"मैं हूँ मैं, दरवाजा खोल, भय की कोई बात नहीं"—कहकर अपूर्व हँस दिया।

इस बीच विशेष भयानक कोई बात नहीं हुई और तिवारी बेखटके ही घर में मौजूद है, यह जानकर उस पर जैसे बड़ा भारी बोझ-सा उतर गया।

रामदास भीतर पहुँचकर इधर-उधर कमरों में घूमकर प्रसन्न हुए। बोले, "मुझे जिस बात का भय था, सो बात नहीं है। आपका नौकर अच्छा है, सबकुछ ठीक प्रकार से जँचा दिया है। यह सामान मैंने ही पसन्द करके खरीदा था। आपको और भी क्या-क्या चीजें चाहिए, यह दीजिएगा, मैं खरीदकर भिजवा दूँगा—रोजेन साहब ने आज्ञा दे रखी है।"

तिवारी ने धीमे स्वर में कहा, "और सामान की आवश्यकता नहीं है बाबूजी, भले-भले यहाँ से निकल जाएँ, तो समझिए।"

उसकी बात पर रामदास ने ध्यान नहीं दिया; लेकिन बात अपूर्व के कानों ने सुन ली।

उसने अवसर पाते ही पूछा, "और कुछ हुआ था क्या?"

"ना।"

"तो फिर ऐसा क्यों कहा?"

तिवारी ने उत्तर दिया, "दोपहर-भर साहब ऐसी घुड़दौड़ मचाता रहा है कि यहाँ कोई टिक सकता है ?"

अपूर्व ने सोचा—बात शायद वास्तव में इतनी गम्भीर भी नहीं है, कम-से-कम, कुछ उपद्रव को बड़ा करके हर समय तिवारी के साथ मिलकर अशान्ति की जंजीर खींचे चलना भी अत्यन्त दुख की बात है—इसलिए उसने कुछ उपेक्षा के साथ कहा, "आखिर तू कहना क्या चाहता है—वह क्या चले-फिरे भी नहीं ? छत में आवाज तो अधिक होती ही है।"

तिवारी जरा अप्रसन्न होकर बोला, "एक ही स्थान पर खड़े होकर घोड़े के समान पैर पटकने को क्या चलना कहते हैं ?"

अपूर्व ने कहा, "तो शायद फिर शराब पी होगी—"

तिवारी ने उत्तर दिया, "यह हो सकता है। मुँह सूँघ के तो मैंने देखा नहीं।" इतना कहकर वह अप्रसन्न चेहरे से रसोईघर में चला गया और कहता गया, "चाहे जो भी हो, इस घर में रहना अब नहीं हो सकेगा।"

तिवारी की शिकायत अनुचित और अप्रत्याशित भी नहीं। दुर्जन का अत्याचार एक ही दिन में समाप्त हो जाएगा, इसका भी उसे भरोसा नहीं, फिर भी अनिश्चित भय से उसका मन अत्यन्त दुःखी हो उठा। पावस का प्रथम प्रभात कुहरे में आरम्भ हुआ था, बीच में केवल ऑफिस के मामले में जरा-सा प्रकाश का आभास दिखाई दिया था, परन्तु दिन के अन्त के निकट पहुँचने पर फिर उसे बादलों से घिरा आकाश ही दिखाई दिया।

रामदास गाड़ी का समय होते ही विदा होने लगा। मालूम नहीं, तिवारी की शिकायत और उसके मालिक के चेहरे से उन्होंने कुछ अनुमान किया था नहीं। चलते-चलते वह सहसा पूछ बैठे, "बाबू साहब ! इस मकान में आपको क्या कोई दिक्कत हो रही है ?"

अपूर्व ने जरा हँसकर कहा, "ना।" और जब देखा कि रामदास जिज्ञासु भाव से उसकी ओर देख रहे हैं, तब बोला, "ऊपर जो रहते हैं, वे हमारे साथ कुछ ठीक व्यवहार नहीं कर रहे हैं।"

रामदास ने विस्मय के साथ कहा, "वह महिला !"

"हाँ, उसका बाप भी।" यह कहते हुए उसने कल शाम की और आज सवेरे की घटना कह सुनाई।

रामदास कुछ देर चुप रहकर बोले, "मैं होता तो इसका इतिहास कुछ और ही होता। क्षमा माँगे बिना वह इस दरवाजे से एक कदम भी नीचे न उतर सकता था।"

अपूर्व ने कहा, "क्षमा नहीं माँगता तो आप क्या करते ?"

रामदास ने कहा—"कह न दिया—उतरने नहीं देता।"

अपूर्व ने उनकी बात पर विश्वास नहीं किया हो, ऐसी बात नहीं, फिर भी साहस की बात से उसकी जरा हिम्मत बँधी। हँसकर बोला, "मगर अभी तो वह लोग उतरें। चलिए, आपकी गाड़ी का समय हुआ जा रहा है।"

वह मित्र का हाथ पकड़कर सीढ़ी से नीचे उतरने लगा। आश्चर्य है कि जैसा चढ़ते समय हुआ था, उतरते समय भी ठीक वैसे ही सीढ़ी के सामने उस लड़की से भेंट हो गई। उसके हाथ में कागज में लिपटी कोई चीज थी, शायद कुछ खरीदकर वापस आ रही थी। उसे रास्ता छोड़ देने के लिए अपूर्व एक किनारे हटकर खड़ा हो गया, परन्तु सहसा दंग रहकर उसने देखा। रामदास रास्ता न छोड़कर उसे एकबारगी पूरी तरह से रोक खड़े हो गये और अंग्रेजी में बोले, "मुझे एक मिनट के लिए जरा क्षमा करना होगा; मैं इन बाबू साहब का मित्र हूँ। इनके साथ बिना कारण दुर्व्यवहार के लिए आप लोगों को पश्चात्ताप करना चाहिए।"

लड़की ने आँख उठाकर क्रुद्ध स्वर में कहा, "अच्छा होगा, आप यह सब मेरे पिता से कहिए।"

"आपके पिता घर पर हैं ?"

"ना।"

"तो इन्तजार करने का मेरे पास समय नहीं है। मेरी ओर से उनसे कह दीजियेगा कि उनके ऊधम-उपद्रव के मारे इनसे यहाँ रहा नहीं जा रहा है।"

लड़की ने तीखी आवाज में उत्तर दिया, "उनकी ओर से मैं ही उत्तर दे रही हूँ कि इच्छा हो तो ये यहाँ से चले जा सकते हैं।"

रामदास जरा हँसे, बोले, "हिन्दुस्तानी क्रिश्चियनों को मैं पहचानता हूँ। उनके मुँह से इससे बड़े उत्तर की मैं आशा भी नहीं करता। मगर इससे

उन्हें आराम न मिलेगा, बल्कि, उनकी जगह मैं आऊँगा। मेरा नाम रामदास तलवरकर है—दक्षिणी ब्राह्मण हूँ मैं। 'तलवार' शब्द के क्या अर्थ होते हैं, सो अपने पिता से जान लेने के लिए कह दीजियेगा। कुछ [illegible]।—अच्छा, बाबू साहब—" इतना कहकर वे अपूर्व का हाथ पकड़ के एकदम सड़क पर आ पहुँचे।

अपूर्व ने कनखियों से उस लड़की के मुँह की चेष्टा को देख लिया था। अन्त में वह कठोर हो गया था, इस बात का ध्यान करके कुछ देर तक उनसे कुछ कहा न गया।

उसके बाद धीरे से बोला, "यह क्या हुआ तलवरकर?"

तलवरकर ने उत्तर में कहा, "यही हुआ कि आपके चले जाने पर मुझे आना पड़ेगा। केवल सूचना मिल जानी चाहिए।"

अपूर्व ने कहा, "यानी, दोपहर को आपकी स्त्री यहाँ अकेली रहेगी?"

रामदास ने कहा, "ना, अकेली नहीं, मेरी दो साल की लड़की भी है।"

"यानी, आप हँस रहे हैं!"

"नहीं, मैं सच कह रहा हूँ। हँसी करना मैं जानता ही नहीं।"

अपूर्व ने अपने साथी के मुँह की ओर एक बार ध्यान से देखा, फिर धीरे से कहा, "तो यह मकान छोड़ा नहीं जा सकता?"—उसके मुँह की बात समाप्त होने से पहले ही रामदास ने अकस्मात् अपने बलिष्ठ हाथों से उसके दोनों हाथ पकड़कर बड़े जोर से झकझोरते हुए कहा, "यही तो मैं चाहता हूँ बाबूजी। अत्याचार के भय से हम लोग बहुत भागते-छिपते रहे हैं, मगर—बस।"

उन्होंने एक हाथ छोड़ दिया, लेकिन दूसरा हाथ वे अन्त तक पकड़े ही रहे। केवल ट्रेन छूटने पर उस हाथ को फिर से एक बार जोर से हिलाकर उन्होंने हाथों को एक साथ जोड़ के नमस्कार किया।

स्टेशन के इस ओर के प्लेटफार्म पर यात्रियों की अधिक भीड़ नहीं थी। यहीं अपूर्व टहलने लगा। सहसा उसे मालूम हुआ कल से आज तक—दम एक ही दिन के चक्र में उसका जीवन न जाने कहाँ से और कैसे एकबारगी क्यों लम्बा हो गया है। खेल-कूद और इसी प्रकार के तुच्छ कर्मों में मालूम नहीं कब थककर सो गया था, आज अकस्मात् जहाँ उसकी नींद

[illegible]टी, वहाँ सारी दुनिया का कर्म, स्रोत केवल काम-काज के वेग से ही [illegible]नो पागल हो उठा है, विश्राम नहीं, विपरीत आनन्द नहीं, अवसर नहीं -मनुष्यों के परस्पर संघर्ष का मध्याह्न-सूर्य जैसे दोनों हाथों से मुट्ठी भर-[illegible]रकर आग बरसाता जा रहा हो। यहाँ माँ नहीं, भामियाँ भी नहीं—प्रेम-[illegible]या, कहीं कुछ भी नहीं—कर्म-शाला के असंख्य चक्र दाहिने-बायें, सिर [illegible]र, पैरों तले, चारों ओर वेग से घूमते ही जा रहे हैं। जरा-सी असावधानी [illegible]ने का कहीं भी कोई मार्ग नहीं—सारी की सारी राहें एकदम निष्ठुर भाव [illegible] बन्द हैं।

उसकी आँखों के किनारे भीग गये—पास ही एक लकडी की बेंच थी, [illegible]स पर जाकर वह बैठ गया। बैठते ही आँखें पोंछ रहा था कि सहसा पीछे [illegible] जोर का धक्का खाकर एकबारगी औंधा जमीन पर गिर पड़ा। जल्दी से [illegible]सी प्रकार उठकर खड़ा हुआ तो देखता है . पाँच-छ फिरंगी छोकरे—[illegible]सी के मुँह में सिगरेट थी तो कोई कागज का चेहरा पहने हुए था—दाँत [illegible]कालकर हँस रहे हैं। शायद जिसने धक्का मारा था उसी ने बेंच पर लिखे [illegible]ए शब्दों की ओर इशारा करके कहा, "साला, ये साहब लोग के वास्ते [illegible]य, टुमारा वास्ता नहीं हाय !"

लज्जा, क्रोध और अपमान से अपूर्व की आँखें जल उठीं, होंठ काँपने [illegible]गे।

उसने उत्तर में क्या कहा, समझ में नहीं आया। उसकी दशा देखकर [illegible]फरंगी छोकरों ने खूब आनन्द लिये। एक ने कहा, "साला दूधवाला आँख [illegible]ल करता—फाटक में जाएगा ?" सब ठहाका मारकर हँस दिये—एक [illegible] उसके मुँह के सामने एक खास अश्लील इशारा करके सीटी बजाई।

हिताहित-ज्ञान अपूर्व का लगभग लुप्त होता जा रहा था। शायद क्षण-[illegible]र बाद वह इन पर झपटकर हमला कर बैठता, लेकिन कुछ हिन्दुस्तानी [illegible]लवे-कर्मचारी पास ही बैठे बत्तियाँ साफ कर रहे थे। उन लोगों ने बीच में [illegible]ड़कर अपूर्व को खींच-खाँचकर प्लेटफार्म के बाहर कर दिया। इतने में [illegible]क फिरंगी छोकरा दौड़ा आया और भीड़ में से पैर बढ़ाकर उसके सफेद [illegible]ुरते पर अपने बूट का पदचिह्न अंकित कर गया। इस हिन्दुस्तानी दल के [illegible]हाथ से छुटकारा पाने के लिए वह खींचातानी कर रहा था, इतने में उसे

धकेलकर मुंह से कराह करते हुए कहा, "अरे, बंगाली बाबू साहब लोगों का बदन छुएगा तो यहीं एक साल जेल में रहना पड़ेगा—भागो—भागो।"

दूसरे ने कहा, "अरे बाबू है—धक्का मत दो—" और तब, उसने लोहे के तार का दरवाजा बन्द कर दिया। बाहर उसे घेरकर भीड़ जमा होने लगी। जिन लोगों ने देखा नहीं था, वे कारण पूछने लगे। जिन्होंने देखा था, वे नाना प्रकार के विचार प्रकट करने लगे।

एक हिन्दीभाषी चना-मटर बेच रहा था। उसने कलकत्ता में रहकर थोड़ी-सी बंगला सीखी थी। उसने बंगला भाषा में समझा दिया कि यहीं घाटगाँव के बहुत-से आदमी दूध का रोजगार करते हैं जो इसी प्रकार का कुरता पहना करते हैं और जूते भी। अपूर्व आफिस की पोशाक बदलकर बंगालियों की पोशाक पहने स्टेशन आया था, नहीं पहचाना। उसका विवरण, साथ और सहानुभूति की बातों से बचकर अपूर्व स्टेशन में पता लगाता हुआ स्टेशन मास्टर के कमरे में पहुंचा। वे भी साहब थे—काम कर रहे थे। मुंह उठाकर देखने लगे।

अपूर्व ने पीठ पर जूते का दाग दिखाकर सारी घटना कह सुनाई। स्टेशन मास्टर ने विरक्ति और अवज्ञा के भाव से थोड़ा-सा सुनकर कहा, "यूरोपियनों की बेंच पर तुम बैठे क्यों?"

अपूर्व ने उत्तेजना के साथ कहा, "मैं जानता न था।"

"तुम्हें जानना चाहिए था।"

"मगर इससे क्या किसी भले मनुष्य पर हाथ उठाना चाहिए?"

साहब ने दरवाजे की तरफ हाथ उठाकर कहा, "गो—गो—गो—चपरासी, इसको बाहर निकाल दो—" कहकर वे अपने काम में लग गये।

अपूर्व घर लौट आया, उसे ठीक नहीं मालूम। दो घण्टे पहले रामदास के इसी रास्ते से स्टेशन जाते समय सबसे बड़ी दुश्चिन्ता जो उसके मन में ...ी, वह थी उनकी अकारण मध्यस्थता। इसीलिए कि पहले तो उसके ...ौर अशान्ति की मात्रा घटती नहीं, बल्कि बढ़ती ही; दूसरे, उस ... ने कितना ही अपराध क्यों न किया हो, फिर भी औरत ...लिए ... को अपने मुंह से ऐसी कठोर बात निकालना उचित और तब जबकि वह अकेली थी।

इससे अपूर्व का शिक्षित और भद्र अन्त:करण रामदास की बातों से दुःखी ही हुआ था—मगर अब लौटते समय उसका वह क्रोध न जाने कहाँ चला गया, कुछ पता नहीं। जब उसकी याद आई, तो स्त्री के रूप में उसका ध्यान ही नहीं आया—ध्यान आया : वह क्रिश्चियन औरत है, साहब की लड़की है—यही उन्हीं की बहन है जिन छोकरों ने अभी-अभी उसके अपमान की हद कर दी है—जिनकी कुशिक्षा, नीचता और बर्बरता का कोई ठिकाना नहीं, यह उन्हीं की बहन है—जिस साहब ने उसे अत्यन्त अन्याय के साथ कमरे में निकाल दिया था—मनुष्य का मामूली अधिकार भी उसने उसे नहीं दिया, यह उसी की कोई होगी।

तिवारी ने कहा, "छोटे बाबू, रसोई तैयार है।"

अपूर्व ने कहा, "आता हूँ।"

दस-पन्द्रह मिनट बाद उसने फिर आकर कहा, "रसोई ठण्डी हुई जा रही है बाबू !"

अपूर्व ने क्रोधित होकर कहा, "क्यों तग कर रहा है तिवारी, मैं नहीं खाऊँगा—मुझे भूख नहीं है।"

ज्यों-ज्यों रात होने लगी, त्यों-त्यों सारे बिछौने उसे कंटक-शय्या-से मालूम होने लगे। एक प्रकार की मर्मान्तिक वेदना उसके सारे अंगों में चुभने लगी और उसी में पड़े-पड़े बीच-बीच में उसे ध्यान आने लगा स्टेशन के उन हिन्दुस्तानी आदमियों का जिन लोगों ने दल-बल सहित मौजूद रहते हुए भी उसकी लाछना या अपमान में से कुछ भी हिस्सा नहीं बाँटा, बल्कि उसके अपमान की मात्रा बढ़ाने में ही सहायता की। देश के आदमी के विरुद्ध देशवासियों की इतनी बड़ी लज्जा की—इतनी बड़ी ग्लानि की बात संसार के और किस देश में होगी ? क्यों ऐसा हुआ ? कैसे यह सम्भव हुआ ?

४

दो-तीन दिन बीत गये।

किसी तरह का उपद्रव नहीं। ऊपरी मंजिल से साहब का अत्याचार

जब नये-नये रूपों में प्रकट नहीं हुआ, तब अपूर्व ने समझ लिया कि उस क्रिश्चियन लड़की ने उस दिन की बात अपने पिता से नहीं बतायी और उसकी उस दिन की फल-फलारी लेकर आने की घटना से इस बात को मिलाकर उसे यह 'न कहने' की बात सम्भव ही नहीं, बल्कि सच ही मालूम हुई। बहुत प्रकार के काले-सफेद साहबों का दल ऊपर जाने-आने लगा, लड़की के साथ भी सीढ़ी में चढ़ते-उतरते एक समय सामना हुआ और उसने मुंह फेर लिया, परन्तु उसके दुःशासन पिता से उसका एक दिन भी सामना नहीं हुआ। केवल उसके भारी बूटों के शब्द से यह मालूम होता रहा कि वह घर पर ही है। उस दिन तिवारी ने अपने छोटे बाबू से थाली परोसते हुए कहा, "लगता है, साहब ने नालिश-फरियाद कुछ की नहीं।"

अपूर्व ने कहा, "ना। जितना गरजता है, उतना बरसता नहीं।"

तिवारी ने कहा, "लेकिन हम लोगों को अधिक दिन इस मकान में नहीं रहना चाहिए। साला मतवाला होकर फिर किसी दिन फसाद कर बैठेगा।"

तिवारी ने कहा, "सो न सही, सिर पर म्लेच्छ क्रिस्तान रहेगा—जो-जो खाता है, उसकी याद आते ही—"

"तुम चुप रहो तिवारी।"—वह स्वयं उस समय खा रहा था, क्रिश्चियन के खाने-पीने की चीजों के इशारे से उसके रोएँ खड़े हो गये। बोला, "इस महीने के बाद उठना तो पड़ेगा ही—पर एक अच्छा-सा मकान भी देखना है—"

इन सब बातों की चर्चा इस समय न करनी चाहिए, इस बात का ध्यान आते ही तिवारी मन-ही-मन लज्जित होकर चुप हो गया।

उस दिन तीसरे पहर ऑफिस से लौटकर अपूर्व ने तिवारी की ओर देखा, तो दंग रह गया। वह एक ही पल में सूखकर आधा हो गया है। उसने पूछा, "क्या हुआ तिवारी ?"

उत्तर में उसने आस्तीन में टंके हुए कई छपे हुए पीले रंग के कागज के हाथ में दे दिये। फौजदारी अदालत के सम्मन थे, वादी थे जे० डी० और प्रतिवादी तीन नम्बर कमरे के रहने वाले अपूर्व और उसका ।यारा एक नहीं, चार-चार। दोपहर को कोर्ट का प्यादा सम्मन

...री कर गया है और कल सवेरे फिर एक जारी करने आयेगा। साथ ...ही साहब ससुरा था। हाजिर होने की तारीख पड़ी है परसों अपूर्व ...द्योपान्त पढ़कर सब कागज उसी के हाथ में लौटा दिये और कहा, "... ...या हुआ, कोर्ट में उपस्थित होना पड़ेगा।"

तिवारी ने रोनी-सी सूरत बनाकर कहा, "कभी तो कटघरे में ...ही हुए बाबू।"

अपूर्व ने झुंझलाकर कहा, "खड़ा हो जायेगा तो क्या? सभी बातों ...ने लगता है, तो परदेश में आया ही क्यों?"

"मैं तो कुछ जानता नहीं छोटे बाबू!"

"जानता नहीं तो लाठी लेकर निकल क्यों पड़ा था! घर में चुपच... ...ठे रहने से भी तो काम चल जाता।" इतना कहकर अपूर्व अपने कमरे ...कपड़े बदलने चला गया।

उसके दूसरे दिन तिवारी को साथ लेकर ठीक समय वह कचहरी ...हाजिर हुआ। नालिश-मुकदमे के बारे में उसे कोई भी अनुभव नहीं था, ...र यह परदेश ठहरा, किसी से जान-पहचान नहीं—किससे सहायता ली ...जाय, कैसे पैरवी की जाय, कुछ भी पता नहीं। फिर भी उसे किसी प्रकार ...का भय नहीं मालूम हुआ।

सहसा कैसे उसका मन इतना कड़ा हो गया, वह खुद न समझ सका। ...इस मामले में रामदास से कुछ कहने और किसी तरह की सहायता लेने में ...शर्म मालूम हुई। केवल जरूरी काम के बहाने साहब से वह एक दिन की ...छुट्टी ले आया था।

ठीक समय पर पुकार हुई। डिप्टी कमिश्नर ने अपनी ही फाइल में यह मुकदमा रख लिया था। वादी जोजफ साहब झूठ-सच जैसा मन में आया, इजहार दे गया, और प्रतिवादी की ओर से कोई वकील नहीं था। अपूर्व ने अपने उत्तर में न एक बात छिपाई और न एक भी शब्द बढ़ाकर कहा। ...वादी का गवाह उसी की लड़की थी। अदालत में उस लड़की का नाम और उसका विवरण सुनकर अपूर्व दंग रह गया। वह किसी एक स्वर्गीय राज-कुमार भट्टाचार्य की कन्या है। पहले बरीसाल रहती थी, अब बंगलो... रहती है। अब उसका नाम है मेरी भारती। पिता भट्टाचार्य महाशय अपने

इच्छा से 'अन्धकार' से 'प्रकाश' में आये थे। उनकी मृत्यु के बाद उनकी माँ विधवा [illegible] विलायती गुड़िया की दासी बनकर बंगलौर पहुँची और वहाँ [illegible] साहब के रूप पर मुग्ध होकर उसने उनसे ब्याह कर लिया। भारती ने 'तैमूर भट्टाचार्य' नाम को भद्दा समझकर छोड़ दिया है और अब अपने नाम के आगे वह जोसफ लगाती है—उसका पूरा नाम है 'मिस मेरी भारती जोसफ'। हाकिम के पूछने पर उसने कसम खाकर नीचे पहुँचने की बात अस्वीकार की, पर उसके कण्ठ-स्वर और चेहरे से झूठ बोलने की विडम्बना ऐसी स्पष्ट हो उठी कि केवल हाकिम ही नहीं, उसके प्यारों की आँख से भी वह उसे छिपा नहीं सकी। किसी भी ओर वकील नहीं था, लिहाजा जिरह के पेंच में पड़कर तुच्छ और मामूली बात बहुत बड़ी न हो सकी। न्याय एक ही दिन में हो गया। तिवारी छूट गया, पर अपूर्व पर बीस रुपये जुरमाना हो गया। जीवन के इस प्रभात-काल में राजद्वार में बिना अपराध के दण्डित होने से उसका चेहरा मुरझा गया। जुरमाने के रुपये गिनकर वह बाहर निकल ही रहा था कि देखा, दरवाजे के सामने रामदास खड़ा है।

अपूर्व के मुँह से सहसा ही निकल पड़ा, "बीस रुपये जुरमाना हुआ रामदास, क्या किया जाय? अपील?"

आवेग और उत्तेजना से उसकी आवाज का आखिरी हिस्सा काँप-सा उठा। रामदास ने उसका दाहिना हाथ अपने हाथ में लेकर खींचते हुए कहा, "यानी बीस रुपये के बदले आप दो हजार रुपये बिगाड़ना चाहते हो?"

"सो होने दो—मगर यह जो फाइन! सजा है! राजदण्ड है!"

रामदास ने कहा, "कैसी सजा? जिसने झूठा मामला चलाया, झूठी गवाही दिलवाई—और जिसने उन लोगों को प्रश्रय दिया, उन्हीं लोगों की दी हुई सजा तो? परन्तु इन सबके ऊपर भी एक और अदालत है जिसके न्यायाधीश गलती नहीं करते—वहाँ आप निर्दोष हैं—मैं कहे देता हूँ।"

अपूर्व ने कहा, "मगर आदमी तो नहीं समझेंगे रामदा। उनके आगे तो यह बदनामी हमेशा के लिए बनी रहेगी?"

रामदास ने स्नेह के साथ अपूर्व का हाथ मसलकर कहा, "चलिए, हम

लोग नदी किनारे घूम आवें।"

रामदास ने चलते-चलते कहा, "अपूर्व बाबू, मैं आफिस के काम में आपसे छोटा होने पर भी आयु में बड़ा हूँ। यदि दो-एक बात कह दूँ, तो बुरा न मानियेगा।"

अपूर्व चुप रहा।

रामदास कहने लगा—"इस मुकदमे की बात मैं पहले से ही जानता था और क्या फैसला होगा, उसमें भी मुझे सन्देह न था। और आदमियों की बात जो आप कह रहे हैं, सो जो आदमी है, वे ठीक समझ लेंगे कि हालदार के साथ जोजफ का मामला होने पर अंग्रेजी अदालत में उसका क्या फैसला होगा! रही बीस रुपये जुरमाने की बात—"

"मगर बिन अपराध के जो रामदास?"

रामदास ने कहा, "हाँ, हाँ, बिना अपराध के ही तो! ऐसे ही बिना कसूर मैं भी दो साल की सजा भुगत आया हूँ।"

"सजा भुगत आये हैं? दो साल की?"

"हाँ, दो साल की, और," इतना कहकर उसने फिर जरा हँसकर अपूर्व का हाथ अपनी पीठ पर रखकर कहा, "इस कोट को अगर खोल दूँ, तो देखोगे कि यहाँ बेंतों के निशानों के मारे तिल-भर भी स्थान नहीं बचा है।"

"बेंतों की मार खाई है रामदास?"

रामदास ने हँसते और गर्दन हिलाते हुए कहा, "हाँ, और ऐसे ही बिना अपराध। फिर भी इतना निर्लज्ज हूँ मैं कि लोगों के सामने मुँह दिखाता हूँ और आप बीस रुपये जुरमाने की चोट नहीं सह सकेंगे बाबू साहब?"

उसके चेहरे की ओर देखकर अपूर्व हैरान रह गया। इसी समय जिस लैम्पपोस्ट के नीचे वे दोनों खड़े थे, उसकी बत्ती जलाने वाला आ पहुँचा।

साँझ हो गई देखकर रामदास चौंककर बोला, "चलिए, आपको पहुँचाकर मैं भी घर जाऊँ।"

अपूर्व ने व्यग्रता के साथ कहा, "आप चले जायेंगे? मुझे बहुत-सी बातें जाननी थीं।"

रामदास ने हँसकर कहा, "क्या एक दिन में ही जान लोगे? ऐसा नहीं

होगा। शायद मुझे बहुत दिनों तक कहना पड़ेगा।" इस बहुत दिनों शब्द पर उसने इतना जोर दिया कि अपूर्व से उसके चेहरे की ओर देखे बिना रहा न गया। उस हास्य-प्रशान्त चेहरे पर कोई भी प्रकट रहस्य नहीं झलका।

बड़ी सड़क से ही अपूर्व से विदा लेकर रामदास स्टेशन की ओर चल दिया।

अपने कमरे के सामने जाकर अपूर्व ने बन्द दरवाजा खटखटाया। तिवारी ने जब मालिक की आवाज पहचान ली, तब कहीं दरवाजा खोला। वह पहले ही आकर घर के काम में जुट गया था। उसके चेहरे पर जैसी गम्भीरता थी वैसी ही उदासी। उसने कहा, "जाते समय जल्दी में आप दो नोट भूल गये थे?"

अपूर्व ने आश्चर्य के साथ पूछा, "कहाँ भूल गया था?"

"यहीं पर," और उसने पैर से दरवाजे की ओर इशारा किया। बोला, "आपके तकिये के नीचे रख दिये हैं। जेब से कहीं रास्ते में नहीं गिरे, यही काफी है।"

नोट कैसे गिर पड़े थे, यह सोचता हुआ अपूर्व अपने सोने के कमरे में चला गया।

५

रात को भोजनादि से निवृत्त होकर तिवारी ने हाथ जोड़कर और आँखों में आँसू भरकर कहा, "अब नहीं छोटे बाबू, इस बूढ़े की बात मान जाइए, कल सवेरे ही हम लोग कहीं चले चलेंगे।"

अपूर्व ने कहा, "कल सवेरे ही? पर कहाँ, सुनूँ भी? तुम क्या धर्मशाला में जाकर रहने को कहते हो?"

तिवारी ने कहा, "इससे तो वह भी अच्छा। मुकदमा जीत गया है, अब किसी दिन घर में घुस के हम लोगों को मार जायेगा।"

अपूर्व को अचम्भा लगा, गुस्सा होकर बोला, "तुमको क्या माँ ने इसलिए

ने साथ भेजा था कि कटे घाव पर नमक छिड़कते रहना ? तुम्हारी अब मुझे आवश्यकता नहीं—कल जहाज जाएगा, तुम घर चले जाओ—भाग्य में जो होगा वह मैं भुगतूंगा।"

तिवारी शांत रहा। वह सो गया।

तिवारी की बातों ने उसे बहुत अपमानित किया, इसी से उसने इतना कड़ा उत्तर दिया, परन्तु साथ ही वह मन-ही-मन इस बात को भी अस्वीकार न कर सका कि उसने ऐसी कोई असंगत बात नहीं कही थी।

दूसरे दिन सवेरे ही नये मकान की खोज होने लगी और सिर्फ एक तलवरकर के सिवा और सबसे उसने नये मकान की खोज के लिए अनुरोध कर दिया। उसके बाद तिवारी ने भी फिर कोई शिकायत पेश नहीं की, यद्यपि मालिक और नौकर दोनों के ही दिन भय से कटने लगे। ऑफिस से लौटते समय अपूर्व को नित्य ही भय बना रहता कि आज घर पहुँचने पर न जाने क्या सुनना पड़े। मगर किसी भी दिन कुछ सुनना नहीं पड़ा। मुकदमा विजयी जोजफ-परिवार की ओर से तरह-तरह के विचित्र उपद्रव नित्य नये-नये रूप में प्रकट होंगे, पर उपद्रव की बात तो दूर रही, कभी-कभी तो इस बात पर सन्देह होने लगा कि ऊपर कोई रहता भी है या नहीं। इस विषय में कोई भी किसी से कोई बात नहीं कहता। बिना अशान्ति के दिन कटने लगे।

लगभग एक हफ्ते बाद एक दिन ऑफिस से लौटते समय तिवारी ने प्रसन्नमुख से मन की प्रसन्नता को छिपाते हुए कहा, "कुछ सुना है छोटे बाबू ?"

अपूर्व ने कहा, "क्या ?"

"साहब की टाँग टूट गई। अस्पताल में पड़ा है। बचेगा कि नहीं, कुछ ठीक नहीं। आज छः दिन हो गये—ठीक उसके दूसरे ही दिन।"

अपूर्व ने आश्चर्यचकित होकर पूछा, "तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

तिवारी ने कहा, "मकान-मालिक का गुमाश्ता हमारे जिले का आदमी है न, उसके साथ आज जान-पहचान हो गई। किराया वसूल करने आया था। किराया यहाँ कौन देता ? साहब तो शराब पीकर मार-पीट करते-करते जेटी से नीचे गिरकर अस्पताल में पड़ा सड़ रहा है।"

"अच्छा !" कहकर अपूर्व कपड़े बदलने अपने कमरे में चला गया।

मकान छोड़ने के बात मात्र से बूढ़े तिवारी का मन मन्द प्रसन्नता से भर उठा था। उसकी बड़ी इच्छा थी कि इस बात को लेकर मालिक से आज वह जरा बातचीत करे, पर मालिक ने उसे जरा भी उत्साहित नहीं किया। पर उसने सुना दिया कि इस बात को वह पहले ही जानता था। एक-न-एक दिन ऐसा होना ही।

तिवारी ने संध्या-पूजा करना नहीं सीखा, पर गायत्री मंत्र कंठस्थ था। उस गायत्री मंत्र को उसने जुरमाना होने के दिन से रोज शाम-सवेरे एक सौ आठ के हिसाब से दो सौ सोलह बार जपा है। साहब की टाँग टूटने का असली कारण क्या था, सो मालिक की समझ में आया या नहीं, सन्देह है, पर उस मंत्र की असाधारण शक्ति पर तिवारी का विश्वास अटल हो गया। म्लेच्छ होकर ब्राह्मण के सिर पर जिसने घोड़े के समान पैर पटकाए हैं, उसके पैर टूटेंगे नहीं तो और क्या होगा?

दूसरे दिन अपने ऑफिस के अरदली से सूचना पाकर अपूर्व ने तिवारी को बुलाकर कहा, "एक मकान का पता लगा है, जाकर देख तो आओ कि ठीक रहेगा या नहीं ?"

तिवारी ने जरा हँसकर कहा, "अब शायद आवश्यकता न होगी बाबू, मैंने सब ठीक कर लिया है। अगली पहली तारीख को जिनको जाना है वे ही जाएँगे। मकान बदलने में तो काफी झंझट है छोटे बाबू !"

झंझट कम नहीं, यह बात अपूर्व स्वयं भी जानता था; परन्तु साहब की अनुपस्थिति में जो उपद्रव बन्द है, उसके आ जाने के बाद ही वह बन्द ही रहेगा, इस बात पर उसे विश्वास न हुआ। मकान बदलना ही होगा, मगर ऑफिस जाने के पहले तिवारी ने जब उससे छुट्टी माँगी कि आज दोपहर को वह बर्मी लोगों के 'फयार' मन्दिर में तमाशा देखने जायेगा, तो अपूर्व से बिना हँसे न रहा गया।

उसने कुतूहल के साथ पूछा, "अरे तिवारी, तुझे तमाशा देखने का शौक कैसे हो गया?"

तिवारी ने कहा, "परदेश में जो कुछ है, देख लेना अच्छा है छोटे बाबू।"

अपूर्व ने कहा, "सो ठीक है। लँगड़ा साहब अस्पताल में पड़ा है, अब रास्ते में भी भय नहीं। खैर, चले जाना, पर जल्दी लौट आना। कोई साथ जायेगा न?"

तिवारी ने देशवासी गुमाश्ते से तय किया था, जिससे कल जान-पहचान हुई थी। वही आज उसे तमाशा दिखा लाएगा। साहब की टाँग की खबर से तिवारी इतना प्रसन्न हुआ था कि उसके साथ तमाशा देखने की बात पर तुरन्त राजी हो गया।

तिवारी को बाहर जाने की आज्ञा देकर अपूर्व ठीक समय पर अपने ऑफिस के लिए रवाना हो गया। तिवारी के देश का आदमी आकर उसे अपने साथ बर्मियों का तमाशा दिखाने ले गया। ताले की एक चाबी अपूर्व के पास रहती थी, इसीलिए तिवारी ने सोचा कि लौटने में देर भी हो गई तो छोटे बाबू को कोई दिक्कत न होगी। वह निडर होकर बाहर गया। आज उसकी खुशी का ठिकाना न रहा।

अपूर्व तीसरे पहर घर लौटा तो देखा कि ताला बन्द है और तिवारी अभी तक लौटा नहीं। जेब में से ताली निकालकर जो उसने ताले में लगाई तो वह लगी नहीं, उसमें कोई दूसरा ही ताला लगा हुआ था। अपूर्व उनसे परिचित नहीं, यह उसका ताला ही नहीं। तिवारी को यह मिल कहाँ से गया और लगाया भी तो चाबी कहाँ रख गया, कैसे वह घर में घुसे—उसकी कुछ समझ में न आया। कोई दो-तीन मिनट वह इसी प्रकार खड़ा रहा होगा कि इतने में तिमंजिले की उस क्रिश्चियन लड़की ने जीने से झाँककर कहा, "ठहरिये, मैं खोले देती हूँ।"

जब वह नीचे उतर आई और बिना किसी संकोच के साथ आकर खड़ी हो गई, तो अपूर्व मारे आश्चर्य और लज्जा के हतबुद्धि-सा हो गया। तिवारी नहीं है, उसका क्या हुआ, और किसलिए किस प्रकार उसके घर की चाबी साहब की लड़की के हाथ पड़ी—उसकी कुछ समझ में ही न आया। कम प्रकाश की सकरी सीढ़ी पर दोनों के खड़े होने के योग्य काफी जगह नहीं थी, इसलिए अपूर्व एक सीढ़ी नीचे उतरकर दूसरी ओर देखने लगा।

अनात्मीय युवती रमणी के साथ एकान्त में पास-पास खड़े होकर

बातचीत करने का वह आदी न था, इसी से लड़की ने जब उससे कहा कि 'माँ कह रही थी कि ताला लगाकर मैंने अच्छा नहीं किया, इसमें संकट भी आ सकता है,' तब अपूर्व के मुँह से सहसा कोई उत्तर ही नहीं निकला।

भारती ने किवाड़ खोलकर कहा, "मेरी माँ बड़ी डरपोक हैं। वे तभी से मुझ पर अप्रसन्न हो रही हैं कि यदि आपने विश्वास नहीं किया तो मुझे जेल जाना पड़ेगा। मगर मुझे इसका जरा भी भय नहीं।"

अपूर्व कुछ समझ न सका, पूछा, "क्या हुआ?"

भारती ने कहा, "भीतर जाकर देखिए न, क्या हुआ है!" और वह मार्ग छोड़कर एक ओर खड़ी हो गई। अपूर्व ने भीतर जाकर जो कुछ देखा उससे उसकी आँखें कपार पर चढ़ गई। दोनों ट्रंकों के ढक्कन टूटे पड़े हैं। किताबें, कागज, बिछौने, तकिये, कपड़े-लत्ते सब जमीन पर बिखरे पड़े हुए हैं। उसके मुँह से केवल इतना ही निकला, "यह कैसे हुआ? किसने किया?"

भारती ने जरा मुस्कराकर कहा, "और चाहे जिसने भी किया हो, मैंने नहीं किया—यह बात शत्रु होने पर भी आपको विश्वास करनी पड़ेगी।" उसने दुर्घटना का जो वर्णन सुनाया, उसका सार यह है—

दोपहर को तिवारी जब अपने परिचित मित्र के साथ तमाशा देखने चला गया, तब भारती की माँ ने उन्हें बरामदे से देखा था। थोड़ी देर बाद ही नीचे के घर में एक प्रकार की संदेहजनक आवाज सुनकर उन्होंने भारती को नीचे देखने के लिए भेजा। भारती के घर के फर्श में एक प्रकार का छेद है, उसमें से अपूर्व के घर का सबकुछ दिखाई देता है। उस छेद में से भारती ने जो नीचे का दृश्य देखा, तो वह चिल्लाने लगी। जो लोग बॉक्स तोड़ रहे थे, जल्दी से भाग खड़े हुए तो फिर नीचे उतरकर उसने दरवाजे में अपना ताला लगा दिया और स्वयं पहरा देने लगी कि कहीं वे फिर दुबारा न आ जाएँ।

अब अपूर्व को देखकर वह घर खोलने के लिए आई है।

अपूर्व विवर्ण, उदास चेहरे से अपनी खाट पर बैठकर भौंचक्का-सा देखता रह गया।

भारती ने दरवाजे से मुँह निकालकर कहा, "इस कमरे में आपकी

कोई खाने को चीज है? जरा देख सकती हूँ?"

गर्दन हिलाकर अपूर्व ने सिर्फ इतना ही कहा, "आइए।"

उसके भीतर आ जाने पर अपूर्व ने उससे पूछा, "अब क्या किया जाय?"

भारती ने कहा, "किया तो बहुत कुछ जा सकता है, पर सबसे पहले यह देखना चाहिए कि क्या-क्या चोरी गया है?"

अपूर्व ने कहा, "अच्छी बात है, देखिए, क्या-क्या चोरी गया है?"

भारती हँसकर बोली, "घर से चलते समय न तो मैंने आपका ट्रंक ही सँभाला था और न मैंने चोरी ही की है—अतः उसमें क्या था, क्या नहीं, यह मैं कैसे बता सकूँगी।"

अपूर्व लज्जित हो गया, बोला, "यह तो ठीक बात है। तो फिर तेवारी को आने दीजिए, शायद उसे सब मालूम होगा।" इतना कहकर इधर-उधर बिखरी पड़ी चीजों की ओर करुण दृष्टि से देखने लगा।

भारती को उसका निरुपाय-सा चेहरा बड़ा अच्छा लगा। मुस्कराकर बोली, "वह जान सकता है, और आप नहीं जान सकते? अच्छा, कैसे जाना जाता है, मैं आपको सिखाये देती हूँ।" यह कहकर वह झट से फर्श पर बैठ गई और सामने के टूटे ट्रंक को अपनी ओर खींचकर बोली, "अच्छा, पहले सब कपड़े-लत्ते सँभालकर रख दूँ। इन सबको ले जाने के लिए शायद उन्हें अवकाश नहीं था।" वह फैले हुए कपड़ों की तह करके रखने लगी। उसके अभ्यस्त हाथों की निपुणता कुछ ही क्षणों में अपूर्व की दृष्टि में आ गई।

"यह क्या? मुर्शिदाबादी सिल्क का सूट है शायद? ऐसे सूट कितने थे, बताइये तो?"

अपूर्व ने कहा, "दो।"

"ठीक है, वह रहा एक।" कहते हुए उसने दोनों सूट उठाकर बॉक्स में रख दिये।

"ढकाई धोती—एक, दो, तीन, चादर—एक, दो, तीन—शायद तीन-तीन ही होंगी, ठीक है न?"

अपूर्व ने कहा, "हाँ, शायद तीन ही होंगे।"

"यह क्या है, आपके का कोट? कहाँ इसके साथ का और वेस्ट कोट-पैंट तो नहीं दिखाई देता? अच्छा—नहीं, बन्द गले का है। इसका सूट

नहीं था न ?"

अपूर्व ने कहा, "ना, केवल कोट ही था।"

भारती ने उन सबको रखकर और एक कपड़ा हाथ में उठाकर कहा, "यह तो फलालैन का सूट मालूम होता है—आप वहाँ टेनिस खेला करते थे शायद ? तो एक, दो, तीन और उस अलगनी पर एक, एक आप पहने हुए हैं—तो सूट कुल पाँच थे न ?"

अपूर्व प्रसन्न होकर बोला, "पाँच ही थे।"

कपड़े में से कोई चमकीली चीज निकालकर वह बोली, "यह तो सोने की चेन है। घड़ी कहाँ गई इसकी ?"

अपूर्व प्रसन्न होकर बोला, "गनीमत समझो। चेन पर उसकी दृष्टि नहीं पड़ी। यह मेरे पिता की दी हुई है—उनका स्मृति-चिह्न।"

"पर घड़ी ?"

"यह रही।" कहकर अपूर्व ने अपने कोट की जेब में से घड़ी निकालकर दिखाई।

भारती ने कहा, "चेन और घड़ी मिल गई। अब बताइए कि आपके पास अँगूठी कितनी थीं ? हाथ में तो एक भी नहीं दीख रही है।"

अपूर्व ने कहा, "हाथ मे भी नहीं, बॉक्स में भी नहीं थी। अँगूठी मेरे पास है ही नहीं।"

"ठीक है। सोने के बटन ? शायद आपकी कमीज में लगे होंगे।"

अपूर्व ने घबराहट के साथ कहा, "नहीं तो। एक गरद के कुरते में लगे हुए थे, ऊपर ही रक्खा था वह कुरता।"

भारती ने अलगनी की ओर देखा—जो कपड़े अब तक उठाकर नहीं रक्खे गये थे, उनमें ढूँढ़ा। उसके बाद जरा मुस्कराकर कहा, "कुरता समेत बटन गये मालूम होते हैं। और बटन तो नहीं थे ?"

अपूर्व ने सिर हिलाकर कहा, "ना।"

भारती ने पूछा, "ट्रंक में रुपये-पैसे थे ?" अपूर्व ने 'थे' कहकर समर्थन किया।

भारती ने उद्विग्न चेहरे से कहा, "तो वे भी गये ! कितने थे, मालूम न ? सो मैं पहले ही से जानती थी। आपके पास मनीबैग है, मुझे
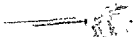
मालूम है, जरा निकालकर दीजिए तो मुझे।"

अपूर्व ने जेब में से अपना छोटा-सा चमड़े का बैग निकाल[illegible] के हाथ में दे दिया। उसने उसे उँडेलकर, गिनकर देखा तो [illegible] रुपये और आठ आने थे।

"घर से कितने रुपये लेकर चले थे?"

अपूर्व ने कहा, "छ सौ रुपये।"

भारती टेबल पर से कागज का टुकड़ा और पेंसिल उठाकर लिखने लगी—"जहाज का टिकट, घोड़ा-गाड़ी का किराया, कुली-खर्च—घर पर पहुँचकर तार तो किया ही होगा?—अच्छा, उसका भी एक रुपया, उसके बाद इधर दस दिनों का घर-खर्च?"

बीच में ही अपूर्व बोल उठा, "यह तो तिवारी से बिना पूछे नहीं मालूम हो सकता।"

भारती ने सिर हिलाकर कहा, "यह हो सकता है, एक-दो रुपये का अन्तर पड़ेगा, अधिक नहीं।"

जिस छेद से आज उसने चोरी होती देखी थी, उसी छेद से वह इस घर की सब बातें देखा करती थी। तिवारी के साथ लाने से, खाने-पीने की तैयारी तक कुछ भी उससे छिपा न था। पर यह बात उसने बताई नहीं और अपने मन से खाने-पीने का हिसाब जोड़कर सहसा मुँह उठाकर पूछा, "इसके सिवा और तो कोई फालतू खर्च नहीं हुआ?"

"ना।"

भारती ने कागज पर हिसाब लगा लेने के बाद कहा, "तो दो सौ अस्सी रुपये चोरी गये है।"

अपूर्व ने कहा, "ना, दो सौ आठ रुपये।"

भारती ने कहा, "ना-ना, दो सौ अस्सी।"

अपूर्व ने फिर कोई विवाद नहीं किया।

इस लड़की की तीव्र बुद्धि और सब तरफ अद्भुत तीक्ष्ण दृष्टि रखने की शक्ति देखकर अपूर्व आश्चर्यचकित हो गया था; निर्णय में न्याय-अन्याय जो भी हुआ हो, रुपये खर्च हो जाने पर वे हाथ में नहीं रहते, इस सीधी-सी बात को जो नहीं समझना चाहती, उससे वह क्या कहे।

भारती ने बाकी कपड़े सम्हालकर रख दिये और खड़ी हो गई।

अपूर्व ने पूछा, "थाने में रिपोर्ट करना क्या आप ठीक समझती हैं?"

भारती ने सिर हिलाकर कहा, "क्यों नहीं ! ठीक इस प्रकार से सकता है कि मेरी खींचातानी का अन्त न रहेगा। और नहीं तो पुलिस आकर आपके रुपयों का किनारा कर जायेगी, इतनी आशा तो आप भी करते होंगे ?"

अपूर्व चुप रहा।

भारती ने कहा, "हानि तो जो कुछ होनी थी, सो हो चुकी। इसके फिर यदि पुलिस आई, तो अपमान शुरू होगा।"

"मगर, कानून तो है—"

अपूर्व की बात समाप्त न हो पाई कि भारती असहिष्णु हो उठी बोली, "कानून है, उसे रहने दीजिए। यह काम मैं आपको कदापि न करने दूँगी। कानून तो उस दिन भी था जब आप जुरमाना दे आये थे। इतने ही भूल गये क्या ?"

अपूर्व ने कहा, "यदि लोग झूठे बयान दें, झूठा मामला बनावें, तो वह कानून का दोष है ?"

भारती की भाव-भंगिमा से ऐसा नहीं लगा कि वह जरा भी लज्जित हुई हो। उसने कहा, "लोग झूठ न बोलें, लोग झूठे मामले न बनावें, तो कानून निर्दोष हो जाएगा—आपकी यही राय है क्या ? ऐसा होता तो अच्छा ही था, मगर दुनिया में ऐसा होना नहीं, और होने में शायद समय भी लगेगा।"

वह जरा हँसी, पर अपूर्व चुप रहा। उसने बहस में भाग नहीं लिया।

उस दिन पहले-पहल इस लड़की के कण्ठ-स्वर से, उसके मीठे व्यवहार से, खासकर उसकी सकरुण सहानुभूति से अपूर्व के मन में जो थोड़ा सा मोह-सा उत्पन्न हुआ था, वह उसके बाद के आचरण से लगभग दूर हो गया था। भारती का यह छिपाने का आग्रह सहसा उसे बुरा मालूम हुआ।

इन सब आकस्मिक सहायताओं को मानो वह प्रसन्न मन से ग्रहण न कर सका, और न जाने कैसी एक अज्ञात दुर्घटना की आशंका से उसका सारा मन्न... देखते-देखते काला हो गया। उस दिन का झगड़ा अब कै

कीच के साथ गुप्त रूप से फल देने आना, और दूसरे ही क्षण अपने घर आकर सम्पूर्ण घटना को गिड़ाकर झूठा कहना, उसके बाद अदालत में झूठी वाही देना—पल-भर में सारा इतिहास बिजली की तरह उसके मन में क लकीर-सी खींच गया जिससे उसका चेहरा गम्भीर और कण्ठ क्षण-भर भारी हो उठा। यह सब अभिनय है, छल-कपट है। उसके चेहरे के इस हसा परिवर्तन को भारती ताड़ गई पर कारण न समझ सकी। बोली, मेरी बात का आपने उत्तर नहीं दिया।"

अपूर्व ने कहा, "इसका उत्तर क्या दूँ? चोर को बढ़ावा नही दिया जा कता—थाने में सूचना तो देनी पडेगी।"

भारती ने भयभीत होकर कहा, "यह कैसी बात करते हैं! चोर भी पकडा जायेगा और रुपये भी नही मिल सकते—बीच में मुझे घिसटना डेगा। मैंने देखा है, ताला बन्द किया है, सबकुछ उठा के रक्खा है—मैं तो विपत्ति में पड़ जाऊँगी।"

अपूर्व ने कहा, "जैसा हुआ है वैसा ही कहिएगा।"

भारती ने व्याकुल होकर कहा, "कहने से क्या होगा? उस दिन आपसे जबरदस्त मामला हो गया, एक-दूसरे का मुँह तक नही देखते थे। बोलचाल बन्द—सहसा आपके लिए मेरी इतनी सहानुभूति!—पुलिस इस पर विश्वास कैसे करेगी?"

अपूर्व का मन सन्देह से और भी अधिक कठोर हो गया। वह बोला, "आपकी शुरू से अन्त तक सरासर सब झूठी बात पर वह विश्वास कर सकी और इस सच्ची बात पर विश्वास नही करेगी? रुपये तो थोड़े ही गये हैं, पर चोर को सजा दिलाये बिना छोड़ूँगा नही।"

भारती उसके चेहरे की ओर हत्-बुद्धि की भाँति देखती रही। बोली, "आप क्या कह रहे हैं? अपूर्व बाबू, मेरे बाबूजी अच्छे आदमी नही, उन्होंने व्यर्थ आप पर बहुत ही जबरदस्त अन्याय किया है, और मैंने भी उन्हें जो सहायता की है। पर इसका मतलब यह है कि मैं ताला और बॉक्स तोड़कर रुपये चुराऊँगी? आप इस बात को सोच सके, पर मैं नही सोच सकती। इस अपयश के बाद कैसे जीऊँगी?" उसके होंठ फूलकर काँप उठे और दाँतों से जबरदस्ती होठों को दबाती हुई वह आँधी के समान कमरे से निकल गई।

६

दूसरे दिन सुबह !

अपूर्व ने क्या सोचकर थाने की ओर कदम बढ़ा दिए, यह [illegible] कठिन है। यह उसे मालूम था कि चोरी के मामले में [illegible] से कुछ फल नहीं होता। रुपये नहीं मिल सकते और सम्भवतः चोर भी [illegible] पकड़ा जायगा, पर उस निश्चियन म्लेच्छ लड़की पर उसके क्रोध और [illegible] की सीमा न रही थी।

भारती ने स्वयं चोरी की है या चोरी करने में सहायता दी है, [illegible] विषय में तिवारी की तरह निःसंशय वह अभी तक नहीं हो पाया था। [illegible] की नटता और छलना ने उसे एकबारगी पागल बना दिया था। [illegible] साहब को और चाहे जो दोष दिया जाय, पर उसने अपने को स्पष्ट करने [illegible] विषय में शुरू से अब तक कोई बात उठा नहीं रक्खी।

थे, और इसी नाते अपूर्व आदि इनको चाचा कहा करते हैं। स्वदेश आन्दोलन के समय अपूर्व ने गिरफ्तार होकर सजा नहीं पाई, यह इन्हीं की कृपा है। रास्ते में ही अपूर्व ने उन्हें प्रणाम करके अपनी नौकरी का समाचार सुनाते हुए पूछा, "मगर आप इस दूर देश में कैसे ?"

निमाई बाबू ने आशीर्वाद देकर कहा, "बेटा ! तुम अभी बच्चे हो, तुम जैसे को जब इतनी दूर घर-द्वार, माँ-बहन सब छोड़कर आना पड़ा, तब मुझे नहीं आना पड़ेगा ?" फिर जेब में से घड़ी निकालकर देखते हुए कहा, "अब समय नहीं रहा, पर तुम्हें तो ऑफिस जाने में अभी बहुत देर है। साथ-साथ चलो न बेटा, रास्ते में चलते-चलते कुछ बातें तो मालूम कर लूँ। न मालूम कितने दिनों से तुम लोगों का समाचार नहीं मिला। माँ अच्छी तरह हैं ? बंधु-बांधव ?

"सब अच्छे हैं।" कहकर अपूर्व ने फिर पूछा, "आप अभी कहाँ जा रहे हैं ?"

"जहाज घाट पर। चलो न मेरे साथ।"

"चलिए। आपको क्या और भी कहीं जाना है ?"

निमाई बाबू ने हँसकर कहा, "हाँ, जाना भी पड़ सकता है। जिस महापुरुष को स्वागत के साथ यहाँ से ले जाने के लिए देश छोड़कर इतनी दूर आना पड़ा है, उसी की इच्छा पर मेरा आना-जाना निर्भर है। उसका फोटो भी है, हुलिया भी दी हुई है, पर यहाँ की पुलिस के बाप की शक्ति नहीं कि उसकी देह पर हाथ लगा सके। मैं भी लगा सकूँगा कि नहीं, सोच रहा हूँ।"

अपूर्व उस महापुरुष का इशारा समझ गया। कुतूहल से उसने पूछा, "वह महापुरुष कौन हैं चाचाजी ? जब आप आए हैं तो वह बंगाली तो जरूर ही होगा, खूनी मुलज़िम है न !"

निमाई बाबू ने कहा, "यह नहीं बता सकता। वे श्रीमान् कौन हैं और कौन नहीं, यह कोई भी नहीं जानता। उनके विरुद्ध मुख्य रूप से कोई चार्ज भी नहीं है। फिर भी उन्हें आँखों-ही-आँखों में रखने के लिए इतनी बड़ी सरकार को इतनी व्याकुलता है कि कुछ पूछो नहीं।"

अपूर्व ने पूछा, "कोई राजनैतिक अपराधी है ?"

निमाई बाबू ने सिर हिलाते हुए कहा, "अरे बेटा! राजनैतिक अपराधी तो तुम लोग भी किसी समय कहते थे। मगर 'पॉलिटिकल' कहने से उसका ज्ञान ही नहीं हो सकता। वह है राजद्रोही। हाँ, 'शत्रु' कहलाने योग्य आदमी जरूर है। बलिहारी है उसकी प्रतिभा की, जिसने उसका नाम रखा था सव्यसाची। महाभारत के मतानुसार तो उनके दोनों ही हाथ समान रूप से चलते थे, मगर प्रबल प्रतापशाली सरकार बहादुर के गुप्त इतिहास के अनुसार है कि इस आदमी की दसों इन्द्रियाँ समान वेग से चलती हैं। बन्दूक-पिस्तौल का उसका अचूक निशाना है, पद्मा नदी तैरकर वह पार कर जाता है। इस समय अनुमान है कि चटगाँव के रास्ते पहाड़ लाँघकर श्रीमान् बर्मा में पधार रहे हैं, या रेल से आ रहे हैं।—कोई ठीक समाचार नहीं। पर आप रवाना हो चुके हैं, यह बात पक्की है। उनके उद्देश्य के बारे में कोई सन्देह या विवाद नहीं है—शत्रु-मित्र सभी के मन में उनके विषय में स्थिर सिद्धान्त बना हुआ है, और इस बात को भी सब जानते हैं कि उनकी नश्वर देह जब तक पंचभूतों के जिम्मे नहीं सौंपी जाती, तब तक इस जन्म में उनमें कोई परिवर्तन भी नहीं हो सकता। देखना बेटा, ये सब बातें कहीं प्रकट नहीं कर बैठना! इस बुढ़ापे में सत्ताईस साल की पेंशन तो मारी ही जायेगी, साथ ही ऊपर से तगड़ा पुरस्कार भी।"

अपूर्व ने उत्साह और उत्तेजना से व्यग्र होकर कहा, "इतने दिनों से यहाँ क्या कर रहे थे ये? 'सव्यसाची' नाम तो कभी सुनने में आया नहीं?"

निमाई बाबू ने हँसते हुए कहा, "बेटा! इन सब बड़े मनुष्यों का एक ही नाम से काम थोड़े ही होता है! अर्जुन के समान इनके देश-विदेश में न जाने कितने नाम होंगे। शायद सुना भी हो, पर अब तुम्हें स्मरण नहीं रहा। यह सच है कि पूना में एक बार तीन महीने की और सिंगापुर में एक बार तीन साल की सजा भुगत आए हैं, इतना जानता हूँ। दस-बारह भाषाएँ ऐसे बोल सकते हैं कि किसी विदेशी आदमी के लिए पहचानना मुश्किल है कि वहीं के रहने वाले हैं। जर्मनी में डॉक्टरी पास की है, फ्रांस में इंजीनियरी पास, अमेरिका में क्या किया है, मालूम नहीं—पर वहाँ जब रहे हैं तो जरूर कुछ-न-कुछ पास किया ही होगा।—ये सब तो शायद इनके लिए खेल हैं—रिक्रिएशन के बराबर हैं, लेकिन कोई भी डिग्री किसी काम नहीं

आई बेटा ! उनकी नस-नस मे भगवान् ने ऐसी आग जला दी है कि उन्हें चाहे जेल में ठूंस दो, चाहे सूली पर चढा दो—कि पंचभूतो को सौंपने के अतिरिक्त और कोई सजा ही लागू नही होती। न तो इनमे दया-माया है, न धर्म-कर्म ही मानते हैं, न घर-द्वार है—बाप रे बाप ! हम लोग भी इस देश मे पनपे हैं, पर ये कहाँ से आकर बगाल मे पैदा हुए, कुछ समझ मे नही आता।"

सहसा अपूर्व बोल न सका—उसकी नसो मे से भी जैसे आग-सी निकलने लगी। कुछ देर चुपचाप चलने के बाद धीरे से बोला, "इनको क्या आज आप अरेस्ट करेंगे ?"

निमाई बाबू ने कहा, "पहले मिलें भी तो !"

अपूर्व ने कहा, "मान लीजिए, मिल ही गए ?"

"ना बेटा, इतना सरल नही उनका मिलना। मेरा तो पक्का विश्वास है कि वे अब तक अवश्य किसी और मार्ग से कही दूसरी जगह पहुँच गये होंगे।"

"और यदि वे आ ही गये तो ?"

निमाई बाबू ने जरा सोचकर कहा, "आशा तो उनको आंखो ही आंखो में रखने की है। देखूं दो दिन।"

उनकी बात पर अपूर्व पूरा विश्वास न कर सका, फिर भी उसके मुंह से एक सान्त्वना की सांस निकल गई। बोला, "आयु क्या होगी ?"

निमाई बाबू ने कहा, "अधिक नही, शायद तीस-बत्तीस के भीतर।"

"देखने मे कैसे हैं ?"

"यही तो आश्चर्य है बेटा ! इतने खतरनाक प्राणी में कोई विशेषता नही, बिल्कुल ही सामान्य व्यक्ति है। इसलिए पहचानना भी कठिन है, पकड़ना भी मुश्किल है। हमारी रिपोर्ट मे यही बात खास तौर से लिखी हुई है।"

अपूर्व ने कहा, "मगर पकड़े जाने के डर से ही तो वे पैदल रास्ते से पहाड़ लांघकर आते हैं ?"

निमाई बाबू ने कहा, "शायद। हो सकता है कि और कोई विचार हो, हो सकता है कि केवल रास्ता देखने का ही उद्देश्य हो—कुछ कहा नही जा

लगने का प्रयत्न कर रहा था। पाँच-सात पुलिस कर्मचारी पहले ही से सादी पोशाक में खड़े थे।

निमाई बाबू के प्रति उनकी आँखों का इशारा देखकर अपूर्व ने उन्हें पहचान लिया। ये सभी भारतवासी हैं—भारत के कल्याण के लिए सदर बर्मा में विद्रोह का शिकार करने आये हैं। वह शिकार लगभग उनकी मुट्ठी में आ रहा है। सफलता के आनन्द और उत्तेजना की चमक उनके चेहरे और आँखों में झलक रही थी, जिसे अपूर्व ने साफ देख लिया। लज्जा और दुःख से मुँह फेरकर खड़े होते ही अकस्मात् क्षणमात्र में ही उसका सम्पूर्ण चित्त दुःखी हो गया मानो किसी एक अदृष्टपूर्व अपरिचित अभागे के पैरों-तले औंधा होकर जा पड़ा और उसने उसका रास्ता रोक लिया। जहाज के खलासी जहाज के रस्से जेटी पर फेंक रहे थे। कितने ही आदमी आकुलता से देख रहे थे।

डेक पर व्यग्रता, शोर-गुल और दौड़-धूप की सीमा न थी।

इन्हीं लोगों के बीच में खड़ा हुआ एक आदमी उत्सुक दृष्टि से किनारे की प्रतीक्षा कर रहा होगा। पर, अपूर्व की आँखों के आगे सारा-का-सारा दृश्य ही आँसुओं से एकबारगी धुँधला होकर एकाकार हो गया। ऊपर, नीचे, जल में, थल में इतने स्त्री-पुरुष खड़े हैं, किसी पर भी कोई शंका, कोई अपराध नहीं; केवल है तो उसी आदमी पर जिसने अपने तरुण हृदय के सारे सुख को, सम्पूर्ण स्वार्थ को, सारी आशाओं को अपनी इच्छा से तिलांजलि दे दी है। कारागार और मृत्यु का मार्ग क्या केवल उसी के लिए बाँहें पसारे खड़ा है?

जहाज जेटी में आकर लगा। लकड़ी की सीढ़ी नीचे उतार दी गई। निमाई बाबू अपने दल-बल के साथ रास्ते के दोनों ओर पंक्ति बने खड़े हो गये। अपूर्व नहीं हिला। वह जहाँ था, वहीं निश्चल पत्थर की मूर्ति के समान खड़ा-खड़ा एकाग्र-चित्त से मन-ही-मन कहने लगा—"एक ही क्षण बाद तुम्हारे हाथ में हथकड़ियाँ पड़ जाएँगी—कौतुकप्रिय नर-नारी तुम्हारी लांछना और अपमान अपनी आँखों से देखेंगे। वे जान भी न पायेंगे कि उन्हीं के लिए तुमने सर्वस्व-त्याग किया है, इसलिए उनके मध्य तुम्हारा रहना नहीं हो सकता।"

उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे। जिसे उसने कभी नहीं देखा

था, उसको सम्बोधन करके वह मन-ही-मन में कहने लगा—"तुम तो हम लोगों के समान सीधे आदमी नहीं हो—तुमने देश के लिए अपना सबकुछ दिया है, इसी से तो देश की सेवा-नाव तुम्हें पार नहीं कर सकती—पद्मा नदी तुम्हें तैरकर पार करनी पड़ती है। देश के राज-मार्ग तुम्हारे लिए बन्द हैं—भयंकर पहाड़-पर्वत तुम्हें पार करने पड़ते हैं। मालूम नहीं किस सुदूर अतीत में तुम्हारे लिए पहले-पहल हथकड़ी और बेड़ी बनी थी। कारागार भी तो पहले-पहल तुम्हारी ही याद करके बना था—वही तो तुम्हारा गौरव है! तुम्हारी लापरवाही कर सके, इतनी शक्ति है किसमें? यह जो अगणित पहरेदार और विपुल सेना का भार है सो सब तुम्हारे ही लिए तो है! दुख का कठिन भार ढो सकते हो, इसीलिए तो भगवान् ने इतना भारी बोझ तुम्हारे ही कन्धे पर लादा है। मुक्ति मार्ग के अग्रदूत! पराधीन देश के हे राजद्रोही! तुम्हें कोटि-कोटि नमस्कार है।"

भीड़ है, इतने आदमियों का आना-जाना है, इतने आदमियों की दृष्टि मुझ पर पड़ती होगी, इन सब बातों का उसे जरा भी ध्यान न था। अपनी आँखों से निकलती हुई अविरल अश्रुधारा से उसके गाल, ठोड़ी, कण्ठ सब भीगने लगे।

समय कितना बीत गया, इसका भी उसे कुछ होश न रहा।

सहसा निमाई बाबू की आवाज से चौंककर चटपट उसने आँसू पोंछकर हँसने का प्रयत्न किया। उसके विह्वल भाव को देखकर निमाई बाबू आश्चर्यचकित हो गये, परन्तु वे चुप रहे। फिर कहा, "जिस बात का डर था, वही हुआ।"

"कैसे?"

निमाई बाबू ने कहा, "यदि यही मालूम हो जाता, तो फिर भागता कैसे? लगभग तीन सौ यात्री थे जिनमें बीस-पच्चीस फिरंगी साहब होंगे, उड़िया, मद्रासी, पंजाबी होंगे डेढ़ सौ, बाकी के सब बर्मी हैं—वह किसी पोशाक में कौन-सी भाषा बोलता हुआ निकल गया, यह देवता तक नहीं जानते, समझे बेटे—फिर हम तो पुलिस के हैं! पहचान नहीं सकते कि बंगाली है या विलायती है! केवल जगदीश बाबू सन्देह करके पाँच-छह बंगालियों को थाने में घसीट ले गये हैं, एक आदमी का चेहरा कुछ मिलता-

जुलता-सा भी मालूम होता है, पर मालूम होने तक ही है—असल में वह नहीं है। चलोगे क्या? वहाँ भी आँखों से एक बार उसे देख लो लो!"

अपूर्व का हृदय भीतर धक से रह गया। बोला, "उन्हें मारेंगे-पीटेंगे इसलिए मैं वहाँ नहीं जाना चाहता।"

निमाई बाबू ने हँसकर कहा, "इतने आदमियों को यूँ ही छोड़ दिया। इन बेचारों पर क्या केवल बंगाली होने के कारण ही मैं बंगाली होकर अत्याचार करूँगा? नहीं बेटा, बाहर से तुम लोग पुलिस वालों को जितना बुरा समझते हो, उतने बुरे वे सब नहीं होते। भले-बुरे सब जगह होते हैं, लेकिन मुँह बन्द करके जितने कष्ट हमें सहने पड़ते हैं, उन्हें यदि तुम जानते होते तो अपने इस दरोगा चाचा से इतनी घृणा नहीं करते।"

अपूर्व लज्जित होकर बोला, "चाचाजी! आप अपना कर्तव्य करते हैं, इसके लिए मैं आपसे घृणा क्यों करने लगा!" इतना कहकर वह झुका और पाँव छूकर उसने अपना हाथ माथे से लगाया।

निमाई बाबू ने खुश होकर आशीर्वाद दिया, बोले, "बस-बस, हो गया। चलो, जरा जल्दी से चलें चलें, लोग बेचारे भूख-प्यास से तंग आ गये होंगे, जरा देख-भालकर छोड़ दिया जाए।"

वे अपूर्व का हाथ पकड़कर जल्दी बाहर ले आये।

पुलिस स्टेशन में जाकर देखा कि सामने के हॉल में छह बंगाली अपना बोरिया-बसना लिए बैठे हैं।

जगदीश बाबू ने उनके टीन के बॉक्स और पोटलियों की तलाशी लेनी शुरू कर दी है। केवल एक आदमी, जिस पर उनका बहुत अधिक सन्देह है, एक दूसरे कमरे में रोक रखा है। ये सभी उत्तर बर्मा की बर्मा ऑयल कम्पनी में मिस्त्री का काम करते थे, वहाँ की जलवायु अनुकूल न होने से नौकरी की तलाश में रंगून चले आये हैं। उनका नाम-धाम और विवरण लिख लिया गया और चीज-वस्तु की परीक्षा करके उन्हें छोड़ दिया गया।

इसके बाद राजनीतिक सन्दिग्ध सव्यसाची मल्लिक को निमाई बाबू के सामने उपस्थित किया गया। वह खाँसते-खाँसते सामने आया। उम्र तीस-बत्तीस से अधिक न होगी, दुबला-पतला निर्बल आदमी था। जरा-सी खाँसी के परिश्रम से ही वह हाँफने लगा। देखने से यह नहीं लगता था कि

उसकी संसार की मियाद ज्यादा बाकी है। किसी एक कठिन रोग से उसे उसका सारा शरीर तेजी से क्षय की तरफ जा रहा है। आश्चर्य केवल इतना है कि उसकी आँखों की दृष्टि अद्भुत है। उसकी आँखें छोटी हैं या बड़ी, खिंची हुई हैं या गोल, दीप्ति-प्रभाहीन हैं या तेज—इन सब बातों का वर्णन करना व्यर्थ है। अत्यन्त गहरे पानी की तरह न जाने उसके भीतर क्या है!—डर लगता है—वहाँ खिलवाड़ नहीं चल सकता। सावधानी के साथ दूर खड़ा रहना ठीक है। न जाने किस अतल तल में उसकी क्षीण प्राण-शक्ति छिपी हुई है, मृत्यु भी जहाँ प्रवेश करने का साहस नहीं करती!—शायद इसीलिए वह अब तक जीवित है।

अपूर्व मुग्ध होकर उसकी तरफ देख रहा था कि सहसा निमाई बाबू ने उसकी वेश-भूषा और बनाव-ठनाव पर अपूर्व की दृष्टि आकर्षित करके हँसते हुए कहा, "बाबू साहब का स्वास्थ्य तो हमेशा के लिए कूच कर गया, पर यह बात माननी पड़ेगी कि शौक सोलह आने मौजूद है।"

सहसा अपूर्व ने उसकी पोशाक की ओर ध्यान किया और मुँह फेरकर बड़ी मुश्किल से हँसी दबाई। उसके माथे पर सामने की ओर बड़े-बड़े बाल थे, पर गर्दन के ऊपर और कनपटियों पर नहीं के बराबर समझिए—बहुत ही बारीक छटे हुए। बीच में माँग है जो छिपी हुई है। और खूब तेल से तर, कड़े-कड़े बाल हैं और उनमें से संतरे के तेल की जोर की बू निकल रही है। बदन पर जापानी पँचरंगी सिल्क का चूड़ीदार कुरता है, जिसकी ऊपर की जेब में से पेरिस की तस्वीर वाले रूमाल का कुछ हिस्सा बाहर निकला हुआ है। चद्दर-अद्दर की कोई बला नहीं। विलायती मिल की धानी मखमली किनारी की जनानी धोती, पैरों में घुटनों के ऊपर तक चढ़े और लाल फीते से बँधे हरे रंग के फूल मोजे, वार्निशदार पम्प शू, जिनके नीचे मजबूती के लिए लोहे के नाल लगे हुए हैं, और हाथ में हरिण के सींग की मूठ वाली बेंत की छड़ी। कई दिन के जहाज की यात्रा से सबकुछ मैला हो गया है।

उसको आपादमस्तक गौर से देखकर अपूर्व ने कहा, "बाबाजी, इस आदमी को आप बिना पूछे-ताछे छोड़ दीजिए। जिसे आप ढूँढ़ रहे हैं, वह आदमी नहीं है। इसका मैं जामिन हो सकता हूँ।"

निमाई बाबू चुप रहे।

अपूर्व ने कहा, "और बातों को भले ही जाने दीजिए, पर जिसे आप खोज रहे हैं उसके कल्चर का तो जरा ध्यान कीजिए।"

सिर हिलाकर निमाई बाबू ने हँसते हुए कहा, "तुम्हारा नाम क्या है जी?"

"जी, गिरीश महापात्र।"

"एकदम महापात्र! तुम क्या तेल की खान में काम करते थे? अब रंगून में ही रहोगे? तुम्हारा बॉक्स, बिस्तर आदि तो देख लिया गया, अब देखूँ जरा अण्टी में क्या है?"

अण्टी में एक रुपया और छः आने पैसे। जेब से एक लोहे का कम्पास, आपने की चौड़ की एक फुट रूल, कई बीडियाँ, एक दियासलाई और एक गाँजे की चिलम।

निमाई बाबू ने कहा, "तुम गाँजा पीते हो?"

उसने बिना संकोच से उत्तर दिया, "ना।"

"तो यह चिलम जेब में कैसे?"

"रास्ते में मिल गई थी। किसी के काम आ जाएगी, ऐसा सोच के उठाकर रख ली है।"

तभी जगदीश बाबू भीतर आ पहुँचे।

निमाई बाबू ने उनसे हँसते हुए कहा, "देखो जगदीश, कैसे परोपकारी आदमी हैं आप! किसी के काम आ जाए, इसलिए आपने गाँजे की चिलम उठाकर जेब में रख ली है। देखूँ, जरा अपना हाथ तो दिखाओ।"

उस चतुर पुलिस कर्मचारी ने महापात्र के दाहिने हाथ के अँगूठे की बहुत देर तक परीक्षा करके हँसते हुए कहा, "युगों से गाँजा तैयार करने की निशानी यहाँ मौजूद है श्रीमान्! कह ही देते कि पीता हूँ! पर अब कितने दिन जीओगे, तुम्हारे शरीर की तो यह दशा है—बुजुर्ग का कहना मानो—अब मत पीना।"

महापात्र ने सिर हिलाकर अस्वीकार करते हुए कहा, "ना हजूर, शपथ से मैं नहीं पीता। कोई मित्र कहता है तो बना देता हूँ—बस। ना, मैं नहीं छूता।"

जगदीश बाबू अप्रसन्न होकर बोले, "दया के सागर हैं आप! दूसरों को बनाकर पिलाते हैं, आप नहीं पीते! झूठे!"

अपूर्व ने कहा, "देर हो गई, अब मैं चलूँ चाचाजी!"

निमाई बाबू उठके खड़े हो गए बोले, "लेकिन निश्चय से कुछ कहा नहीं जा सकता दादा! मेरी समझ से इस शहर में और भी कुछ दिन निगाह रखने की जरूरत है। रात को मेल ट्रेन पर नजर रखना। यह सच है कि वह वर्मा में आ गया है।"

जगदीश ने कहा, "सम्भव है, पर इस जानवर पर 'वाच' (निगरानी) रखने की आवश्यकता नहीं बड़े बाबू! सन्तरे के तेल की बदबू से नालायक ने थाने-भर के सिर में दर्द पैदा कर दिया।"

बड़े बाबू हँसने लगे।

अपूर्व पुलिस स्टेशन के बाहर निकल आया और लगभग उसके साथ ही साथ महापात्र भी अपने टीन के टूटे बॉक्स और चटाई में लिपटे गन्दे बिछौने का बण्डल बगल में दबाए धीर मन्थर गति से उत्तर ओर सड़क से सीधा चलता बना।

७

सव्यसाची पकड़ा नहीं गया और कोई दुर्घटना भी नहीं हुई। फिर भी इतने बड़े सौभाग्य की अपूर्व के मन ने मानो चिन्ता ही नहीं की।

घर आकर, हजामत बनाने से लेकर सन्ध्या-आह्निक, स्नानाहार, पोशाक पहन कर ऑफिस जाना आदि दैनिक काम उसने खूब किए, पर बराबर ठीक क्या सोचने लगा, यह उसे स्वयं भी मालूम नहीं; और मजा यह कि आँख, कान और बुद्धि उसकी सांसारिक सभी बातों से बिलकुल विच्छिन्न सी होकर किसी एक अदृश्य राजद्रोही की चिन्ता में मग्न हो रहीं। अनमने चेहरे तथा आवाज को लक्ष्य करके तलवलकर ने विस्मित चेहरे से पूछा, "आज घर से कोई चिट्ठी आई क्या?

"घर का समाचार तो सब कुशल है ?"

अपूर्व ने कुछ आश्चर्य से कहा, "जहाँ तक मालूम है, सब कुशल ही है।"

रामदास ने और कोई प्रश्न नहीं किया।

लंच के समय दोनों एक साथ बैठकर जलपान करते थे।

रामदास की स्त्री ने अपूर्व से एक दिन अनुरोध किया था कि जब तक उनकी माँ या घर की कोई आत्मीय यहाँ आकर उसकी ठीक-ठीक व्यवस्था न करे, तब तक इस छोटी बहन के हाथ की बनी थोड़ी-सी मिठाई नित्य उसे स्वीकार करनी ही पड़ेगी।

अपूर्व राजी हो गया था। ऑफिस का एक ब्राह्मण पियादा यह सब लाता था। आज भी जब वह बगल वाले निराले कमरे में खाने की चीजें परोस गया, तब खाते समय अपूर्व ने स्वयं ही बात छेड़ी—"कल मेरे घर में चोरी हो गई, सबकुछ चला जाता। केवल ऊपर की क्रिश्चियन लड़की की कृपा से रुपये-पैसे के सिवा और सब चीजें बच गई। उसने चोर को भगाकर मेरे दरवाजे पर अपना ताला लगा दिया था। मेरे पहुँचने पर घर का ताला खोलकर बगैर बुलाये ही कमरे में आकर उसने सारी चीज-वस्त सब सँभालकर रख दी, सबकी लिस्ट बना दी कि क्या चोरी हुई और क्या नहीं। सबका ऐसा सही हिसाब लगा दिया कि उसको देख शायद तुम जैसे पासशुदा एकाउन्टेण्ट को भी आश्चर्य हो। वास्तव में, ऐसी कार्य-कुशल लड़की और है कि नहीं, सन्देह है। इसके सिवा अपनी हितचिन्तक मित्र !"

रामदास ने कहा, "यह कैसे हुआ ?"

अपूर्व ने कहा, "तिवारी घर पर न था। बर्मियों का नाच देखने फायर चला गया था। इस बीच यह घटना हो गई। उसका तो कहना है कि यह काम उन्हीं लोगों का है। मेरा भी अनुमान कुछ-कुछ ऐसा ही है। चोरी न की हो—सहायता पहुँचाई हो।"

"फिर ?"

"फिर सुबह-सुबह थाने रिपोर्ट करने पहुँचा। वहाँ पुलिस ने ऐसा केउड किया—ऐसा तमाशा दिखाया कि उस बात को फिर याद ही नहीं रही। अब सोचता हूँ कि जो गया सो जाने दो, उन लोगों को चोर पकड़ने

की अब आवश्यकता नहीं। इस प्रकार विदाई पाकर फिरे।" आज कहकर गिरीश महापात्र और उसकी पोशाक की याद करके मारे हँसी के उसका दम घुटने लगा। हँसी रुकने पर उसने विस्मय और [illegible] में असाधारण पारदर्शी, विलायत के डॉक्टर उपाधिधारी, राजशत्रु नं- गार के स्वास्थ्य, उसकी शिक्षा और रुचि, उसके कपड़े-लत्ते, उसके [illegible] जूते, हरे मोजे और मोजे के [illegible], [illegible] के तेल की बू और सबसे बढ़कर परोपकारवाले चाचे की विनय जताने के इतिहास को विस्तार में कह डाला, और अपनी हँसी को किसी तरह रोककर अन्त में कहा, "तलवलकर! महापातक पुलिस को आज ऐसा मूर्ख बनते शायद कभी किसी ने न देखा होगा और मजा यह है कि गवर्नमेण्ट के न जाने कितने रुपये ये लोग इन जंगली बतखों के पीछे दौड़-धूप करके नष्ट करते होंगे।"

रामदास ने हँसकर कहा, "मगर जंगली बतखों को पकड़ना ही तो इन लोगों का काम है, आपके चोर पकड़ने के लिए ये नहीं हैं। अच्छा, यह क्या आपके बंगाल की पुलिस थी?"

अपूर्व ने कहा, "हाँ। मेरे लिए बड़े लज्जा की बात यह है कि इनके जो बड़े अफसर हैं, वे मेरे अपने ही आदमी हैं—बाबा ने ही इनको नौकरी दिलाई थी।"

"तो शायद आपको ही किसी दिन इसका प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।" पर बात कह डालने के बाद रामदास जरा कुछ सहम-सा गया और चुप हो गया। उसके निजी आदमी के बारे में ऐसा मत प्रकट करना शायद उचित हुआ। अपूर्व उसके चेहरे की ओर देखकर इसका अर्थ समझ गया। धारणा सच नहीं, यही जोर के साथ व्यक्त करने के लिए बोला, "मैं उन्हें चाचा कहता हूँ, मेरे वे आत्मीय हैं, शुभाकांक्षी हैं, मगर इसके मानी यह नहीं कि वे मेरे देश से भी बढ़कर अपने हैं। बल्कि, देश के लोगों का शिकार की तरह पीछा कर रहे हैं। वे कहीं अधिक मेरे अपने हैं।"

रामदास ने मुसकराते हुए कहा, "बाबू साहब! इन सब बातों के कहने से विपदा पड़ती है।"

अपूर्व ने कहा, "भले ही पड़े, स्वीकार है। तलवलकर, केवल हमारे देश में नहीं, किसी भी युग में जिस किसी ने अपनी जन्मभूमि को स्वाधीन करने

की कोशिश की है, उसे अपना नहीं कहने की सामर्थ्य और चाहे जिसमें हो, मुझमें तो नहीं है।"

उसका स्वर तीव्र और आँखों की दृष्टि तेज हो उठी। मन-ही-मन वह समझ गया कि मैं कहाँ से कहाँ पहुँच गया हूँ, पर अपने को वह सम्हाल नहीं सका। बोला, "तुम सरीखा साहस मुझमें नहीं है। मैं डरपोक हूँ। इसका मतलब यह नहीं रामदास कि किसी का अन्यायकृत दण्ड भोगना मुझे खटकता न हो। निरपराध फिरंगी छोकरे ने मुझे जब लात मारकर प्लेट-फार्म से ढकेलकर निकाल दिया और उस अन्याय का प्रतिवाद करने जब मैं स्टेशन मास्टर के पास पहुँचा, तब उसने मुझे केवल देशी आदमी होने के कारण ही कुत्ते की तरह स्टेशन से निकाल दिया। उस अपमान की बात इस काले चमड़े के नीचे कुछ कम नहीं जल रही है तलवरकर! ऐसा तो रोज-मर्रा हुआ ही करता है—मेरी माँ को—मेरे भाई-बहनों को जो लोग हजारों अत्याचारों से बचाना चाहते है, उन्हें 'अपना' कहने में चाहे जैसा दुःख हो, मैं अब से उसे सिर-आँखों पर स्वीकार करूँगा।"

क्षण-भर के लिए रामदास का सुन्दर गोरा चेहरा लाल हो उठा, बोला "यह घटना तो तुमने मुझे बताई नहीं?"

अपूर्व ने कहा, "रामदास, बताना क्या सरल है? भारत के आदमी वहाँ क्या कम थे? मगर, मेरा अपमान किसी को मालूम ही नहीं हुआ। ऐसा ही उनका स्वभाव पड़ गया है। इसी को गनीमत समझकर वे खुश हो गये कि लातों की चोट से मेरी हड्डी-पसली नहीं टूटी। तुमसे कहता क्या, याद आते ही मारे दुःख, लज्जा और घृणा से मेरी तो ऐसी तबीयत हो जाती है कि धरती में समा जाऊँ।"

रामदास चुप रहा। उसकी आँखें डबडबा आईं। सामने की घड़ी में तीन बज जाने से वह उठ खड़ा हुआ। शायद कुछ कहना चाहता था, पर बिना कुछ कहे सहसा हाथ बढ़ाकर अपूर्व का दाहिना हाथ अपनी तरफ खींचकर और उसे दबाकर, मौन हो अपने कमरे में चला गया।

बड़ा साहब उस दिन शाम को ऑफिस की छुट्टी के कुछ पहले एक लम्बा टेलीग्राम हाथ में लिए अपूर्व के कमरे में आया और बोला, "हमारे अन्य ऑफिस में कोई ठीक हिसाब ही नहीं बैठता। माण्डले, शोएबो,

मिक्चला और इधर प्रोम, इन सभी ऑफिसों में गड़बड़ी हो रही है। मेरी इच्छा है कि तुम एक बार सबका निरीक्षण कर आओ। मेरी अनुपस्थिति में तो सबका भार तुम्हीं पर रहेगा—सबसे परिचय होना आवश्यक है—इसलिए अधिक देर न करके कल-परसों तक…"

अपूर्व तुरन्त सहमत होकर बोला, "मैं कल ही जा सकता हूं।"

वास्तव में, कितने ही कारणों से रंगून में उसका एक क्षण के लिए भी मन नहीं लग रहा था। इसी बहाने यह देश भी वह एक बार देख आयेगा इसलिए उसने जाना निश्चय कर लिया। दूसरे ही दिन तीसरे पहर भामो शहर के लिए वह रेल में सवार हो गया। साथ में गया एक अरदली और एक भारतीय ब्राह्मण पियादा।

तिवारी चौकसी के लिए घर पर ही रहा। लंगड़ा साहब अस्पताल में पड़ा था, सो उतना भय भी नहीं था; और खास तौर से इस म्लेच्छ देश का रंगून शहर तो उसे कुछ सुहा भी गया था और किसी अनजान जगह में कदम बढ़ाने के लिए उसकी प्रवृत्ति नहीं हुई।

फिर तलवरकर ने तिवारी की पीठ ठोककर साहस देते हुए कह दिया, "तुम कुछ चिन्ता मत करो महाराज, कोई बात हो तो ऑफिस में आकर मुझे सूचना दे देना।"

गाड़ी छूटने में तब शायद पाँच एक मिनट बाकी थे, अपूर्व सहसा चौंककर बोल उठा, "अरे! वह रहा।"

तलवरकर देखते ही समझ गया कि यही है वह गिरीश महापात्र, वही बहारदार कुरता, वही हरे रंग की जुराब, वही पम्प शू और छड़ी। अन्तर केवल इतना था कि वह शेर छाप का रूमाल जेब से निकलकर गले में लिपटा था।

महापात्र उन्हीं की ओर आ रहा था। सामने आते ही अपूर्व ने उसे बुलाकर कहा, "क्यों जी गिरीश, मुझे पहचाना? कहाँ जा रहे हो?"

झुककर एक लम्बा नमस्कार किया गिरीश ने, फिर कहा, "जी पहचानूँगा क्यों नहीं बाबूजी साहब। कहाँ को रवाना हो रहे हैं?"

अपूर्व ने हँसते हुए कहा, "इस समय तो भामो जा रहा हूँ। तुम कहाँ चले?"

गिरीश ने कहा, "जी, एनाजाग से दो मित्र, आदमियों के आने की बात थी, लेकिन बाबूजी, यह झूठ-मूठ को मुझे तंग करना है—हाँ, कोई-कोई अफीम, भाँग वगैरह छिपाकर जरूर लाते हैं लेकिन मैं बाबूजी, बहुत धर्म से चलता हूँ। आखिर जरूरत क्या है जाल, धोखा, चोरी करने की—कहा भी है न कि भाग्य का लिखा कोई मेट थोड़े ही सकता है?"

अपूर्व ने हँसकर कहा, "मेरी भी यही धारणा है। तलवरकर, तुम्हारे भाई, गलती हुई, मैं पुलिस का आदमी नहीं हूँ। अफीम-भाँग का भी मुझसे कुछ सरोकार नहीं—उस दिन तो केवल तमाशा देखने पहुँच गया था।"

तलवरकर तीक्ष्ण दृष्टि से उसे देख रहा था। वह बोला, "मैंने तुमको कहीं न कहीं अवश्य देखा है।"

गिरीश ने कहा, "कोई आश्चर्य नहीं सा'ब, नौकरी के लिए कहाँ-कहाँ घूमना पड़ा है, कोई ठीक थोड़े है!"

अपूर्व से बोला, "लेकिन मुझ गरीब पर झूठा शक न कीजिएगा बाबू सा'ब। आप लोगों की दृष्टि पड़ने से नौकरी भी नहीं मिलती। ब्राह्मण का लड़का हूँ, और थोड़ा-बहुत पढ़ा भी है, शास्तर-पास्तर सबकुछ सीखा था, लेकिन ऐसा भाग्य कि—बाबू सा'ब, आप लोग···"

अपूर्व ने कहा, "मैं ब्राह्मण हूँ।"

"फिर नमस्कार। अब आज्ञा मिले—बाबू सा'ब, राम-राम!"—कहता हुआ गिरीश महापात्र जोर की एक खाँसी को किसी प्रकार सम्हालता हुआ जल्दी-जल्दी आगे की ओर चला गया।

अपूर्व ने कहा, "इसी सव्यसाची के पीछे मेरे चाचा साहब मय दल-बल के देश-परदेश दौड़-धूप कर रहे हैं तलवरकर।" और वह हँसने लगा।

इस हँसी में तलवरकर ने साथ नहीं दिया। दूसरे ही क्षण सीटी बज जाने से गाड़ी छूटने लगी, तो उसने हाथ बढ़ाकर मित्र से हाथ मिलाया, मगर तब भी मुँह से उसके बात नहीं निकली। नाना कारणों से अपूर्व इस तरफ ध्यान न दे सका, अगर देता तो देखता कि इस एक ही क्षण के भीतर रामदास के प्रशस्त उज्ज्वल ललाट पर जैसे किसी अदृश्य मेघ की छाया आ पड़ी है, मानो सुदूर लोक में उसका सम्पूर्ण हृदय नितान्त चला गया है।

प्रथम श्रेणी का यात्री था अपूर्व। उसके कमरे में और कोई यात्री न था।

शाम होने पर उसने कुर्ते के भीतर से जनेऊ निकालकर जितना बने ही सन्ध्या समाप्त की और जो खाने की चीजें शास्त्रानुसार किसी के छूने से भ्रष्ट नहीं होती, उन्हें एक पीतल के कटोरदान से निकालकर वह खाने लगा। पानी और पान ब्राह्मण अरदली पहले से ही रख गया था, और बिस्तर भी बिछा गया था। खा-पीकर वह मुँह-हाथ धोकर स्वच्छ-चित्त से बिस्तर पर लेट गया। उसे विश्वास था कि सवेरे तक उसकी नींद में कोई विघ्न न आयेगा, पर यह उसका कितना बड़ा भ्रम था। एक ही स्टेशन के आगे ही मालूम हो गया। उस रात को तीन बार उसकी नींद छुड़ाकर पुलिस के आदमी उसका नाम-धाम और ठिकाना लिख ले गये।

एक बार उसने तंग आकर विरोध किया तो बर्मा के सब-इन्सपेक्टर साहब ने तेज होकर उत्तर दिया, "तुम तो यूरोपियन नहीं हो!"

अपूर्व ने कहा, "ना। मगर मैं हूँ फर्स्ट क्लास पैसेंजर—रात को तुम मुझे सोने में नहीं जगा सकते।"

उसने हँसकर कहा, "वह कानून रेलवे कर्मचारियों के लिए है—मैं पुलिस का आदमी हूँ, चाहूँ तो तुम्हें खींचकर नीचे उतार सकता हूँ।"

इसके बाद अपूर्व ने कोई उत्तर नहीं दिया। रात के अन्तिम तीन-चार घण्टे उसके बिना किसी उपद्रव के कट गये।

सुबह जब नींद खुली तो पिछली रात की ग्लानि की बात उसको याद नहीं रही। एक बड़े पहाड़ के बीच से गाड़ी मन्थर गति से जा रही थी। सम्भवतः यह चढ़ाई का रास्ता है। खिड़की से बाहर मुँह निकालकर जो देखा, तो अकस्मात् मारे आश्चर्य के वह दंग हो गया। पल-भर में वह समझ गया, पृथ्वी पर इतनी बड़ी सुन्दरता उसने पहले कभी देखी ही नहीं। पर्वतमाला अर्द्धचन्द्राकार होकर मानो पीछे और सामने का रास्ता रोके खड़ी है। उसके ऊपर सर्वत्र व्याप्त घना जंगल है और आसमान को छूने वाले वृक्षों की पंक्ति उसके पैरों को घेरे खड़ी है। शायद अभी-अभी सूर्योदय हुआ है—बाईं ओर की चोटी को पार कर रथ आकाश पर सोना-सा पोत दिया है, जो उसके आने का संवाद चारों ओर दे रहा है। नाले में शिखर से निकली जलधारा बह रही है, वन की छाया के नीचे उसका शान्त प्रवाह अश्रुरेखा के समान सकरुण हो उठा है।

अपूर्व मोहित हो गया। कैसा आश्चर्यजनक सुन्दर देश है ! यहाँ जो लोग युग-युगान्तर से रहते आ रहे हैं उनके सौभाग्य की क्या कोई सीमा है ! चूँकि सीमा न होने से केवल एक आनन्द का आभास-मात्र पाकर मानव-हृदय पूर्ण तृप्ति नहीं मान सकता, इसीलिए वह इसको मूर्ति देकर और रूप देकर मन-ही-मन हजारों प्रकार के रस और रंग से पल्लवित करके कोस-पर-कोस पार करने लगा। इस प्रकार उसका भावुक चित्त जब भीतर-बाहर से प्रसन्न हो रहा था, तब वह सहसा मानो एक कठोर धक्के से चौंक पड़ा। देखा कि उसकी कल्पना के रथ-चक्र को मेदिनी ग्रस कर रही है। उसे राम-दास तलवरकर की बातें याद आ गई। यहाँ आने के बाद से वह ब्रह्मदेश की अनेक गुप्त और सुनी हुई कहानियाँ संग्रह कर रहा था और इसी प्रसंग में वह एक दिन कह रहा था, "बाबूजी, सिर्फ शोभा-सौन्दर्य ही नहीं, प्रकृति माता की दी हुई इतनी बड़ी सम्पदा भी बहुत कम देशों में है। इसके जंगल और वनों की कोई सीमा नहीं—जमीन के अन्दर यहाँ समाप्त न होने वाले तेल के स्रोत हैं, यहाँ की महामूल्य रत्नों की खानों का अभी मूल्य नहीं आँका गया; और वह जो आकाशचुम्बी महापर्वतों की पंक्ति है, संसार में उसकी तुलना कहाँ है ? यह अधिक दिन की बात नहीं, समाचार पाते ही एक दिन अंग्रेज वणिकों की लुब्ध दृष्टि इस पर ऐसी पड़ी कि जहाँ-की-तहाँ अटकी रह गई। उसका अनिवार्य परिणाम अत्यन्त संक्षिप्त और सीधा है। झगड़ा खड़ा हुआ, युद्ध-जहाज आये, बन्दूकें-तोपें आईं, सेना आई, लड़ाई हुई, युद्ध में हारकर कमजोर राजा निर्वासित हुए और उनकी रानियों के बदन के गहने बेचकर लड़ाई का खर्च पूरा किया गया। उसके बाद, देश और देशवासियों के हित के लिए, मानवता के उद्धार के लिए, सभ्यता और न्याय-धर्म की प्रतिष्ठा के लिए अंग्रेज राजशक्ति विजित देश का शासन-भार ग्रहण करके मन-वचन-कार्य से उसका भला करने लगी।" इसी से तो आज यहाँ सतर्कता की सीमा नहीं, इसी से तो विजित देश का पुलिस-कर्मचारी अपने ही जैसे एक दूसरे पराधीन देश के असहाय व्यक्ति की बार-बार नींद छुड़ाकर निःसंकोच भाव से कह सका कि तुम तो साहब नहीं हो, जो तुम्हारा अपमान करने में कोई खटका हो !

अपूर्व मन-ही-मन कहने लगा—ठीक है। इससे अधिक मुझसे वह

और कह ही क्या सकता है ? और इससे अधिक मैं उससे आशा ही क्या कर सकता था ?

प्रातः सूर्य की सुनहरी आभा अरण्य-शिखर पर फैली हुई अब तक ज्यों की त्यों बनी हुई थी, पर उसकी आँखों को वह अत्यन्त मलीन और कांति-हीन मालूम होने लगी। पर्वतमाला उसके निकट साधारण और वृक्ष-समूह की जिस राशि को देखकर वह एक क्षण पहले आश्चर्यचकित हो गया था, वही उसकी दृष्टि में अब अत्यन्त साधारण और विशेषताशून्य मालूम होने लगी। अपनी नदी-मातृक शस्य-श्यामल जन्मभूमि की याद करके उसकी आँखों में आँसू भर आये। उसका प्रवास-पीड़ित मन छाती के भीतर मानो चीत्कार करके बार-बार कहने लगा, ओ अभागे देश के शक्तिहीन प्राणियो! इस जन्मभूमि पर तुम लोगों का दावा किस बात का है ? जिसका भार, जिसका गौरव तुम लोग सँभाल नहीं सकते, उस पर तुम्हारा यह लोभ किसलिए ? स्वाधीनता का जन्मगत अधिकार है केवल मनुष्यत्व को, केवल मनुष्य को नहीं, इस बात को कौन स्वीकार करेगा ? भगवान् भी तो इसे छीन नहीं सकते हैं। तुम लोग अपने इन क्षुद्र और तुच्छ हाथ-पैरों को ही तो मनुष्य समझे हुए बैठे हो ? भूल है भूल; इससे बढ़कर आत्मघाती भूल और कोई हो ही नहीं सकती।—इसी तरह न मालूम क्या-क्या वह अपने ही आपको कहता रहा और कितना समय बीत गया, कुछ पता नहीं। अचानक गाड़ी की गति घट जाने से उसे चेत हुआ। शीघ्रता से आँखें पोंछकर उसने बाहर की ओर जो देखा।

गाड़ी स्टेशन में प्रवेश कर रही है।

८

अपूर्व की श्रद्धा शैशव ही से लड़कियों के प्रति न थी; बल्कि एक प्रकार की घृणा-सी थी। भाभियाँ उससे हँसी करतीं तो वह अप्रसन्न हो जाता और घनिष्टता जोड़ने आतीं तो हट जाता।

माँ के सिवा और किसी की भी सेवा या लाड़-प्यार उसे अच्छा ही नहीं लगता था। यदि किसी लड़की को कॉलेज में एग्ज़ामिनेशन पास करते सुनता तो उसे खुशी नहीं होती, और अब कभी समाचार-पत्रों में यह पढ़ लेता कि विलायत में लोग कमर बाँधकर स्त्रियों के राजनीतिक अधिकार के लिए लड़ रहे हैं तो उसका सारा बदन जलने लगता। मगर एक बात थी, उसका हृदय स्वभाव से ही कोमल और भला था। वह नर-नारी के इस भेदभाव को छोड़कर प्राणी-मात्र को अत्यन्त प्रेम की दृष्टि से देखता और किसी को भी किसी कारण कष्ट या व्यथा पहुँचाने में उसे दुःख होता। इस दुर्बलता ने ही भारती को अपराधिनी जानते हुए भी अन्त तक कोई दण्ड नहीं देने दी, और यह बात उससे छिपी नहीं रही।

पुरुष के यौवन मन के नीचे और भी अनेक प्रकार की दुर्बलताएँ छिपी-छिपी रहा करती हैं, इस बात का पता उसे आज तक नहीं था। इस क्रिश्चियन लड़की को कठोर दण्ड देना उसके लिए बिलकुल असम्भव है, यह भले ही सत्य न हो, परन्तु उसी प्रकार यह भी सत्य नहीं कि नारी के प्रति उसकी सचमुच की विमुखता उसके मन को भारती से अनायास ही हमेशा दूर हटाकर रख सकेगी। फिर भी अब उस निष्ठुर झूठी रमणी के प्रति उसके विराग और द्वेष की सीमा नहीं है, यह बात अन्तर्यामी देख रहे थे।

उसे भामो आये पन्द्रह दिन हो गये। वहाँ का काम एक प्रकार से पूरा हो चुका। कल-परसों तक मिक्थिला रवाना होने की बात है। आज शाम के बाद ऑफिस से लौटकर वह अपने कमरे के बरामदे में बैठा मन-ही-मन एक कठिन समस्या के समाधान में लगा था। नारी की स्वाधीनता के बारे में उसके मन ने कभी साक्षी नहीं दी। उसकी रुचि और जन्मगत संस्कार हर समय उसके कान में कहते रहे हैं कि इसमें मंगल नहीं, यह अच्छा नहीं, पर साथ ही, शास्त्रीय अनुशासनों में इनके प्रति बहुत कुविचार किया गया है, इस सत्य को भी उसका न्यायवान मन किसी प्रकार अस्वीकार नहीं कर पाता है। इसमें वह दुःख तो पाता पर मार्ग नहीं पाता।

अकस्मात् आज उसकी यह दुविधा एक बार फिर कैसे दूर हो गई।

वह जिस दुमंजिले के कमरे में ठहरा हुआ था उसके ठीक नीचे एक

ब्रह्मदेशीय परिवार रहता है। सवेरे ऑफिस जाने के पहले उस परिवार में एक बड़ी अनोखी घटना हो गयी। उस बर्मा की चार लड़कियाँ हैं, जो सब-की-सब विवाहिता हैं। आज कोई उत्सव का दिन था इसलिए उनके चारों दामाद उपस्थित थे।

भोजन के समय सम्मान और आतिथ्य के विषय में पहले लड़कियों में और उनके कुछ देर बाद दामादों में लाठी चल गई, खून-खच्चर तक हो गया।

अपूर्व ने पूछताछ करने पर जो कुछ सुना उससे वह दंग रह गया। सुना कि दामादों में से एक मद्रासी चूलिया मुसलमान है, एक चटगाँव का पोर्तुगीज है, एक ऐंग्लो-इंडियन साहब है और सबसे छोटे दामाद साहब चीन देश के हैं जो कई पीढ़ियों से इसी शहर में रहते और चमड़े का व्यवसाय करते हैं। इस तरह संसार-भर की जातियों का ससुर होने का गौरव अन्यत्र दुर्लभ होने पर भी यहाँ अत्यन्त सुलभ है। मजा यह कि प्रत्येक सम्बन्ध के बारे में पिता बेचारे ने डरते-डरते प्रतिवाद किया था, पर लड़कियों की जिद ने उस पर कान तक नहीं दिया। एक-एक लड़की घर लौटती आई—और उनके साथ में आते गये ये विचित्र दामाद। उनकी भाषा, भाव, धर्म, स्वभाव, शिक्षा, संस्कार सब अलग-अलग—किसी के साथ किसी का मेल नहीं। भारत के 'हिन्दू-मुसलमान' प्रश्न की तरह ब्रह्मदेश में धीरे-धीरे यह कठिन समस्या खड़ी होती जा रही है, इसका समाधान आखिर कैसे हो?

वह मन ही मन क्षोभ, दुःख, क्रोध और विरक्ति से उबलने लगा और लड़कियों की सामाजिक स्वाधीनता को सौ-सौ बार बुरा कहने लगा। ऐसा हो नहीं सकता; ऐसा कभी नहीं होना चाहिए। बर्मा नष्ट हो रहा है, योरोप रसातल को जा रहा है और यदि यह उधार ली हुई सभ्यता हमारे देश में चल पड़ी तो हम भी बिलकुल नष्ट हो जायेंगे—मर जायेंगे। हमारे समाज को जिन्होंने बनाया था, वे नारी को पहचानते थे, इसी से वे इतनी सावधानी के साथ विधि-निषेध बना गये हैं। ये कठोर भले ही हों, पर कल्याणकारी हैं। इस बुरे समय में अगर हम इन्हें बिना किसी संशय के ... से थामे न रह सकें, तो हमारी ... निश्चित है, हमें कोई नहीं

बचा सकता। इसी तरह की कितनी ही बातें वह एकान्त अँधेरे में बैठा हुआ अपने मन ही मन कहता चला गया। मगर हाय, यह सीधी-सी बात उसके मुँह में एक बार भी उदित न हुई कि जिस मुक्तिमन्त्र को उसने इस जीवन का एकमात्र व्रत समझा है और जिसे वह मन-वचन-कार्य से ग्रहण करना चाहता है, उसी की ही दूसरी मूर्ति को दोनों हाथों से ढकेलकर मुक्ति के सत्य देवता को ही अपमान के साथ दूर किये दे रहा है। मुक्ति क्या इतनी छोटी वस्तु है? उसे क्या तुम आराम से नहाने का हौज समझ बैठे हो? ना, वह समुद्र है। उसमें भय तो है ही—भयंकर लहरें तो उसमें होंगी ही और मगरमच्छ आदि भी होंगे, नावें वहीं डूबती हैं—फिर भी वहीं जगत् के प्राणी हैं—उसी में है सम्पूर्ण शक्ति, समस्त सम्पदा और सम्पूर्ण सार्थकता। तालाब के भरोसे केवल प्राण धारण किया जा सकता है—जीवित नहीं रहा जा सकता।

"बाबूजी, आपका भोजन तैयार है।"

अपूर्व ने चौंककर कहा, "रामशरण, एक बती ले आ। कल सवेरे की गाड़ी से ही हम लोग मिकथिला चलेंगे। मैनेजर को सूचना भेज दे।"

अर्दली ने कहा, "लेकिन आपने तो परसों जाने को कहा था।"

"ना, परसों नहीं, कल ही—एक बती ले आ।" अपूर्व ने इस बात को यहीं समाप्त कर दिया—उसका मन लड़कियों की स्वाधीनता की यह नई दिशा देखकर उद्भ्रान्त हो उठा था; इसकी एक दिशा और भी है, जिसका रंग और प्रकाश सारे आकाश को प्रकाशित कर सकता है, उसकी वह कल्पना भी न कर सका।

वह दूसरे दिन ठीक समय पर मिकथिला के लिए रवाना हो गया। वहाँ भी उसका मन न लगा। वह देशी और विलायती पल्टन की छावनी है—मजे का खासा शहर है। नये आदमी के लिए देखने लायक वहाँ काफी चीजें हैं, पर उसे कुछ भी अच्छा न लगा। उसका मन बार-बार रंगून के लिए छटपटाने लगा।

माँ का एक पत्र भामो में उसे रिडायरेक्ट किया हुआ मिल गया था। रामदास ने भी दो चिट्ठियाँ दी थीं। रामदास ने लिखा था कि उसके वापस आने तक घर बदलने की कोई आवश्यकता नहीं और खुद जाकर

देखभाल आया है, तिवारी अच्छी प्रकार शान्ति से रह रहा है, पर इधर दस-बारह दिन से कोई खबर नहीं मिली कि वह कैसे है, उसकी अच्छी तरह और 'शान्ति' मौजूद है या नहीं। सम्भवतः सब ठीक ही होगा, फिर भी सहसा एक दिन भामो की तरह ही सामान बँधवाया और स्टेशन के लिए गाड़ी बुलाने की आज्ञा दे दी।

यहाँ याद रखने लायक कोई विशेष घटना नहीं हुई—थोड़े-बहुत कामधंधे में विशेषता कुछ नहीं थी; परन्तु मिकथिला छोड़ने के समय पन्द्रह मिनट पहले स्टेशन पर आकर एक ऐसी बात हो गई, जो बिल्कुल साधारण होने पर भी भविष्य में बहुत दिनों उसे याद रखनी पड़ी। एक शराबी बंगाली को रेल के आदमियों ने गाड़ी से उतार दिया है। मैला-कुचैला फटा हुआ हैट और कोट-पतलून। साथ में सिर्फ एक टूटा हुआ बेहाले का बॉक्स है। न तो बिस्तर है, और न कुछ और सामान। टिकट के दामों से उसने शराब पी ली है, और यही उसकी गलती है। बंगाली है, पुलिस पकड़े लिये जा रही थी—अपूर्व ने उसका किराया चुका दिया, और भी पाँच रुपये उसके हाथ में देकर वह जल्दी से चला जाना चाहता था, पर अचानक उस शराबी ने हाथ जोड़कर कहा, "महाशय, मेरा यह बेहाला आप लेते जाइए। इसे बेचकर अपने रुपये काटकर शेष मूल्य मुझे वापस कर दीजिएगा।" उसके कण्ठ में बहक थी, फिर भी वह साफ-साफ समझ में आता था कि वह होश में बात कर रहा है।

अपूर्व ने कहा, "कहाँ वापस करूँगा?"

उसने कहा, "आप अपना पता लिख दीजिए, मैं आपको चिट्ठी लिखकर मँगवा लूँगा।"

बढ़कर उसने फिर एक बार नमस्कार किया और वह बेहाले का बोझ बगल में दबाकर चल दिया।

अपूर्व ने उसका चेहरा इस बार ध्यान से देखा। आयु अधिक नहीं है; पर ठीक से बताना कठिन है। कदाचित् तरह-तरह के नशों ने दस साल का व्यवधान मिटा दिया है। चेहरा गोरा है, पर धूप से जलकर तांबे-सा हो गया है। सिर के रूखे लम्बे बाल ललाट तक लटक रहे हैं, आंखों की दृष्टि बहती हुई-सी, नाक तलवार की तरह खड़ी और नुकीली, शरीर छरछरा, हाथ की उंगलियां लम्बी और पतली-पतली— सारे शरीर पर मानो भूख और अत्याचार के चिह्न बने हैं।

उसके चले जाने पर अपूर्व को एक तरह का दुःख-सा होने लगा। उसे अधिक रुपये देना व्यर्थ है—यहां तक कि अन्याय भी, यह बात वह समझ गया था; पर और कोई उपकार करना यदि सम्भव होता! मगर इस विषय में चिन्ता करने को अधिक समय कहां! उसे टिकट खरीदकर गाड़ी के लिए तैयार होना पड़ा।

जब वह दूसरे दिन रंगून पहुंचा, तब दिन के करीब बारह बजे थे। जैसी कड़ी धूप थी, वैसी ही भयानक गरमी। उस पर विपत्ति यह कि जल्दी और असावधानी से उसके खाने-पीने का कटोरदान मुसलमान कुली ने छू दिया था। नहाना नहीं, खाना नहीं—मारे भूख-प्यास और थकावट के उसका शरीर निष्प्राण-सा होने लगा। किसी तरह घर जाकर नहा-धोकर सो रहता तो जान बचती। घोड़ा-गाड़ी लाने और उस पर सामान लादकर घर पहुंचाने में दसेक मिनट और लग गये। ऊपर की ओर देखा तो उसके क्रोध की सीमा न रही। तिवारी को कोई चिंता ही नहीं, सड़क की ओर से किवाड़ तक नहीं खोले हैं, गाड़ी की आवाज सुनकर एक बार उतरकर आया भी नहीं। तेजी से ऊपर जाकर दरवाजे पर जोर का धक्का मारकर पुकारने लगा, "तिवारी, ओ तिवारी!"

थोड़ी देर बाद धीरे से, अत्यन्त सावधानी के साथ किसी ने किवाड़ खोल दिये।

आगबबूला हुआ अपूर्व घर में पैर रखना ही चाहता था कि मारे आश्चर्य के वह जड़ और हतबुद्धि हो गया। सामने भारती खड़ी थी। उस

की यह कैसी मूर्ति है! पाँव में जूते नहीं, एक काले रंग की साड़ी पहने हुए, बाल सूखे-रूखे, बिखरे हुए और चेहरे पर शान्त गम्भीर मुख की छाया, जैसे कोई बहुत दूर का यात्री धूप में जलकर, पानी में भीगा, भूखा और अनिद्रा में रात-दिन चलता ही चला आ रहा हो और जो किसी भी क्षण रास्ते में पड़कर मर सकता हो!

उस पर कोई कहीं क्रोध हो सकता है, अपूर्व इस बात की कल्पना ही नहीं कर सका।

भारती ने मस्तक नवाकर धीरे से कहा, "आप आ गये—अब तिवारी बच जायगा!"

अपूर्व की मारे भय के आवाज बैठ गयी। बोला, "क्या हुआ है उसे?"

भारती ने मृदु कण्ठ से कहा, "इधर बहुतों को चेचक हो रही है, उस को भी हुई है। मगर आप अभी इतने थके होने के बाद इस कमरे में नहीं घुस सकते। ऊपर के कमरे में चलिए। वहाँ नहा-धोकर जरा आराम करके नीचे आइएगा। इस समय वह सो रहा है, जगने पर मैं आपको सूचित करूँगी।"

अपूर्व ने आश्चर्य के साथ कहा, "ऊपर के कमरे में?"

भारती ने कहा, "हाँ, ऊपर का कमरा अभी मेरे ही पास है, पर मैं खाली कर चुकी हूँ। बिल्कुल साफ-सुथरा पड़ा है, नल में पानी है, और कोई है नहीं, आपको कष्ट न होगा, चलिए। लेकिन आपके साथ के आदमी कहाँ हैं? सामान ऊपर के कमरे में ही ले जावें।"

"उन्हें तो मैंने स्टेशन से ही छोड़ दिया है। वे सभी तो मेरे ही समान थके हुए थे।"

भारती ने कहा, "ठीक है, पर इस समय क्या कुली मिल जाएँगे? अच्छा देखूँ।"

"आपको देखने की आवश्यकता नहीं, मैं जाता हूँ। दो-चार चीजें हैं, मैं स्वयं ही ले आता हूँ।" वह सोच ही रहा था कि गाड़ीवान ने ऊपर को मुँह करके भाड़ा माँगा।

भारती ने उसे इशारे से ऊपर बुलाकर कहा, "अभी तो आदमी मिलते नहीं, तुम यदि जरा कष्ट करके सब सामान ऊपर पहुँचा दो, तो तुम्हें पैसे दे

दिए जाएँगे।"

उसकी मीठी जुबान से खुश होकर गाड़ीवान सामान ऊपर पहुँचा गया।

भारती ने सड़क की ओर कमरे में अपने हाथ से अच्छी प्रकार बिस्तर बिछा दिए। बोली, "अब आप नहा आइए।"

अपूर्व ने हठ नहीं किया। कुछ देर बाद जब वह नहा-धोकर आया तो भारती ने जरा हँसकर कहा, "आप अपना यह गिलास उठा लीजिए, खिड़की के ऊपर कागज में वह चीनी रखी है, लेकर मेरे साथ नल के पास चलिए। कैसे शर्बत बनाया जाता है, मैं सिखा दूँ।"

अधिक कहने की आवश्यकता नहीं थी, प्यास के मारे उसका गला सूखा जा रहा था। वह इशारे के अनुसार शर्बत बनाकर पी गया और बोला, "जरा नीबू का रस रहता तो अच्छा रहता।"

भारती ने कहा, "आपको अभी मुझे और कष्ट देना है।" और यह कहकर वह उसके मुँह की ओर देखने लगी।

अपूर्व को चोरी के दिन की उसकी बातचीत और काम-काज के ढंग की याद आ गई जिससे उसकी भी बातें मानो कुछ स्वाभाविक-सी हो गईं। उसने पूछा, "कैसा कष्ट?"

भारती ने कहा, "आपका तार पाकर सामने के मकान के उड़िया लड़के से आपकी सिगड़ी मँजवा-धुलवाकर तैयार रखवा दी है। चावल है, दाल है, आलू, परवल, घी, नमक तेल सब उपस्थित है—पीतल की बटलोई लाये देती हूँ, आप जरा उसे पानी से धोकर चूल्हे पर चढ़ा दीजिए।"

वह अपूर्व के मुँह की ओर देखकर उसके मन के भाव का अनुमान लगाकर बोली, "सच कहती हूँ, कोई कठिन काम नहीं है। मैं सब बताती जाऊँगी, आप केवल चढ़ाइएगा और उतार लीजिएगा। आज-भर के लिए इतना कष्ट कीजिएगा, कल से दूसरा प्रबन्ध हो जाएगा।"

अपूर्व को उसके स्वर की तीव्र व्याकुलता ने एक धक्का-सा मारा। उसने कुछ देर मौन रहकर पूछा, "लेकिन आपके खाने का प्रबन्ध कैसे होता है? आप घर कब जाती हैं?"

भारती ने कहा, "पर नहीं भी गई तो क्या, हम लोगों को खाने की क्या चिन्ता !"—इतना कहकर उसने बात उड़ा दी और सामान लेने जल्दी से नीचे उतर गई।

अपूर्व कुछ देर बाद जब रसोई बनाने बैठा, तो वह चौखट के बाहर खड़ी होकर बोली, "यहाँ खड़े होने में कोई दोष नहीं, इतना तो जानते हैं न ?"

अपूर्व ने कहा, "जानता हूँ, क्योंकि यदि कोई होता तो आप खड़ी नहीं होती।"

जीवन में वह आज पहले-पहल रसोई करने बैठा है। उसके अनभ्यस्त हाथों की हजारों त्रुटियों से बीच-बीच में भारती का धीरज छूटने लगा, और अन्त में जब उसने बनी हुई दाल उड़ेलते हुए कटोरे के बाहर बिखेर दी, तब तो उससे सहा नहीं गया। वह क्रोध में आकर सहसा कह बैठी, "अच्छा, आप जैसे निकम्मे आदमियों को क्या भगवान् ने हम लोगों को परेशान करने के लिए ही बनाया है ! अब खाएँगे किस चीज से, बताइए तो !"

अपूर्व स्वयं ही लज्जित हो रहा था, बोला, "दाल बटलोई के इधर से न गिरकर उधर से गिर जाएगी, यह मैं कैसे जान सकता हूँ, बताइए ? अच्छा, ऊपर-ऊपर से थोड़ी-सी उठा लूँ तो ?"

भारती हँसकर बोली, "अवश्य। नहीं तो आपका आचार-[illegible] कैसे पलेगा। चलिए, उठिए, पानी से इसे धो-धोकर साफ कर डालिए। आलू-परवल तेल-पानी में उबाल लीजिए। पिसा हुआ मसाला शी[illegible] रखा है, नमक पड़ेगा। भात का माड़ तो भात ही में है, खाने में बुरा लगेगा। आह ! खड़े-खड़े आपकी रसोई देखने की अपेक्षा तो नरक भु[illegible] अच्छा।"

एक-डेढ़ घण्टे बाद अपूर्व खा-पी चुका। उसने कृतज्ञता के आवेग दबाते हुए शान्त-मृदु स्वर से कहा, "आपको क्या कहूँ, समझ में नहीं आ[illegible] और, अब आप घर जाइए, अब तो मैं भी देखभाल कर सकता हूँ।"

भारती चुप रही।

अपूर्व स्वयं भी मौन रहकर कहने लगा, "पर बात क्या है, आप खुलासा करके बताइए। इधर और भी लोगों को चेचक हो रही है, ति[illegible]

को भी हुई है—यहाँ तक तो ठीक है। मगर इस मकान से आप लोगों का चला जाना और फिर बन्धुहीन देश में और उससे भी बढ़कर इस बन्धुहीन नगरी में आपका अकेले ही यहाँ प्राण देने रह जाना, यह तो समझ में नहीं आता। जोजफ साहब ने क्या कुछ आपत्ति नहीं की?"

भारती ने कहा, "वे जीवित नहीं है, अस्पताल में ही मर गए।"

"मर गए?" अपूर्व बहुत देर तक मौन होकर बैठा रहा। फिर बोला, "आपके काले कपड़े देखकर मुझे तभी ही किसी भयकर दुर्घटना का अनुमान कर लेना चाहिए था।"

भारती ने कहा, "उससे भी बड़ी एक और दुर्घटना हो गई। अचानक माँ भी चल बसी।"

"माँ भी मर गई?" अपूर्व मौन-सुन्न हो गया। अपनी माँ की याद करके उसकी छाती के भीतर न जाने कैसा होने लगा। ऐसा उसने पहले कभी अनुभव नहीं किया।

भारती स्वयं भी खिड़की के बाहर की ओर दो-तीन मिनट तक चुपचाप देखती रही और अपने आँसू रोके रही। मुँह फेरकर जो उसने अपूर्व की ओर देखा तो लगा कि अपूर्व आँखों में आँसू भरे उसकी तरफ अपलक देख रहा है। तब उसे फिर खिड़की के बाहर की तरफ दृष्टि करके चुपचाप बैठा रहना पड़ा। किसी के भी सामने आँसू बहाते उसे शर्म आती थी। अपने को शान्त कर लेने में भी उसे देर न लगी। दो-तीन मिनट बाद उसने धीरे से कहा, "तिवारी बहुत अच्छा आदमी है। मेरी माँ बहुत दिनों से बीमार पड़ी थी। किसी भी समय उसके प्राण निकल सकते है, यह बात हम सबको मालूम थी। उस समय तिवारी ने हम लोगों की बहुत सहायता की। मेरे यहाँ से जाते समय वह रोने लगा था, पर इतना किराया मैं कहाँ से देती?"

अपूर्व चुपचाप सुनने लगा।

भारती सहसा कह उठी, "आपका चोर पकड़ा गया है—रुपये, बटन थाने में जमा हैं—आपको मालूम है?"

"ना।"

"हाँ, हाँ, वह पकड़ा गया है। तिवारी को जो तमाशा दिखाने ले गया

था, उसी के आदमी थे सब। और भी कई जगह चोरी की थी—अन्त में बँटवारा होते-होते आपस में लड़ाई हो गई और एक ने सब भण्डाफोड़ कर दिया। किसी चेट्टी की दुकान पर सबकुछ जमा था, पुलिस सब उठा लाई है। मैं भी एक साक्षी हूँ—पुलिस मेरे यहाँ शिनाख्त के लिए पहुँची थी—यही खबर तो देने आई थी यहाँ, पर देखा तो तिवारी का यह हाल है। कब मुकदमे की तारीख पड़ी है, मालूम नहीं, पर सब वापस मिल जाएगा, ऐसा सुना है।"

ये अन्तिम शब्द न कहती तो अच्छा था। कारण, मारे शर्म के अपूर्व का चेहरा ही सिर्फ सुर्ख नहीं हुआ, बल्कि इस मामले में अपने उन मौन पर स्पष्ट इशारों की याद करके भी उसके रोएँ खड़े हो गए जो उसने चोरी होने के दिन किये थे। परन्तु भारती ने उस तरफ ध्यान नहीं दिया था। कहने लगी, "भीतर से दरवाजा बन्द था। बहुत पुकारने पर भी किसी ने उत्तर नहीं दिया। ऊपर के कमरे की चाबी मेरे पास थी। खोलकर मैं भीतर गई। ऊपर फर्श में एक जगह एक छेद है," उसे जो हँसी-सी आ गई, उसे छिपाते हुए उसने कहा, "उसमें से आपके घर का सब दिखाई देता है। देखा, खिड़कियाँ भी बन्द। अँधेरे में कोई आदमी ऊपर से नीचे तक कुछ ओढ़े पड़ा है। तिवारी-सा ही मालूम हुआ। उस छेद में से चिल्लाकर सौ-सौ बार पुकारा तब कहीं बीस एक मिनट बाद तिवारी ने घुटनों के बल चलकर बड़ी कठिनाई से द्वार खोला। उसका मुँह देखकर फिर कुछ पूछने को रहा नहीं। तीन-चार दिन पहले सामने के मकान से नीचे की कोठरियों में रहने वाले तेलुगु कुलियों को इसी चेचक के कारण पुलिस अस्पताल ले गई थी—उनका रोना-बिलखना तिवारी ने अपनी आँखों से देखा था—भीतर पहुँचते ही वह मेरे पैरों पड़कर फूट-फूटकर रोने लगा और कहने लगा, 'माँजी, मुझको प्लेग-अस्पताल में मत भिजवाइएगा, नहीं तो बचूँगा नहीं।' बात बिलकुल झूठ नहीं थी क्योंकि वहाँ से लौटते तो किसी को देखा नहीं। इसी भय से वह किवाड़, खिड़की-दड़की सब बन्द किए चुपचाप पड़ा था, कहीं मुहल्ले में किसी को मालूम पड़ जाए तो उसका बचना कठिन हो जाए।"

अपूर्व स्वप्न-मुग्ध की तरह उसकी ओर देख रहा था। बोला, "और

से आप रात-दिन यहाँ अकेली पड़ी हुई हैं ! मुझे खबर ही कर दी
? मेरे ऑफिस के तलवरकर बाबू को तो आप जानती हैं, उन्हें ही कह
।"

भारती ने कहा, "किसके हाथ कहलाती ? सोचती थी कि शायद वे
खबर लेने आवेंगे, मगर नहीं आये। वे कैसे जानते कि ऐसी विपत्ति
? इसके सिवा चारों ओर खबर फैल जाने का भी डर था।"

"यह तो ठीक है," अपूर्व एक गहरी साँस लेकर सन्न होकर बैठा रहा।
देर बाद बोला, "आपका अपना मुँह कैसा हो गया है, देखा है ?"

भारती जरा हँसी, बोली, "अर्थात् इससे पहले बहुत अच्छा था ?"

अपूर्व को सहसा इसका कुछ उत्तर नहीं सूझा, परन्तु उसकी दोनों
की मुग्ध दृष्टि ने श्रद्धा और कृतज्ञता के गंगा-जल से मानो उस
ी के सर्वांग की सम्पूर्ण ग्लानि, सम्पूर्ण क्लान्ति धोकर साफ कर दी
। बहुत देर बाद बोला, "आदमी जो नहीं कर सकता, वह आपने
, अब आपको छुट्टी है। तिवारी केवल नौकर ही नहीं, मेरा मित्र भी
अपना आदमी है—उसकी गोद में खेलकर ही मैं इतना बड़ा हुआ हूँ।
उसकी सेवा मैं ही करूँगा—उसके लिए मैं आपको कष्ट नहीं दे सकता।
तक आपका नहाना-खाना नहीं हुआ है, आप घर जाइए। आपका घर
यहाँ से बहुत दूर है ?"

भारती ने सिर हिलाकर कहा, "अच्छी बात है। घर मेरा तेल के
खाने के पास है, नदी के किनारे। मैं कल फिर आऊँगी।"

दोनों नीचे उतर आये और ताला खोलकर कमरे में प्रविष्ट हुए।
तिवारी कुछ बोलता-चालता नहीं, नींद खुल जाने पर भी वह प्रायः
-सा पड़ा रहता है।

अपूर्व जाकर उसके बिस्तर के पास बैठ गया और भारती दो-चार
बरतन, जो अब तक माँज-धोकर रखे नहीं गये थे, उठाकर नल वाले
चली गई। उसकी इच्छा थी कि जाने के पहले वह रोगी के विषय में
खास आवश्यक बातें बताकर इस भयानक रोग से अपने को बचाये
की आवश्यकता अपूर्व को स्मरण दिलाती जाये। हाथ का काम
त करके वह इन्हीं बातों को मन-ही-मन दुहराती हुई वापस आकर

देखती है तो अपूर्व बेहोश तिवारी के विकृत चेहरे की तरफ एकटक देखता हुआ पत्थर की मूर्ति-सा बना बैठा है और उसका मुंह बिल्कुल फक पड़ गया है। चेचक की बीमारी शायद उसने अपने जीवन में कभी देखी नहीं। उसकी भीषणता उसकी कल्पना से परे है। भारती के पास आकर खड़े होने पर उसने मुंह उठाकर देखा। उसकी आँखें भर आईं, और उन्हीं आँखों, बिना पलक मारे, बिल्कुल बच्चे जैसे व्याकुल स्वर में कह उठा, "मैं नहीं कर सकूँगा।" क्षण-भर मौन रहकर भारती ने केवल इतना कहा, "सेवा नहीं कर सकेंगे, तब फिर?"

उसके स्वर में कुछ विस्मय के अलावा कुछ नहीं था। पर यह क्या उत्तर हुआ? सहसा अपूर्व चिन्मय हुआ।

भारती ने कहा, "तो फिर उसे अस्पताल ही भिजवा दिया जाए।"

उसकी बात में न कोई श्लेष था और न तीखापन। मारे शर्म के अपूर्व का सिर नीचा हो गया। लज्जा उसे सिर्फ अपने कुछ न कर सकने के लिए नहीं थी—जो कर सकोगी उसी को कर सकने के लिए कहने का जो उसका छिपा हुआ इशारा और जो दावा था, जब भारती की अस्वीकृति से कठोर अपमान के रूप में उस पर पड़ा, तब सिर नीचा करके अत्यन्त पश्चाताप के साथ उसे एक बार मानना पड़ा कि इस लड़की को वास्तव में वह पहचान नहीं सका। दुःख या दुश्चिन्ता कुछ नहीं थी—बात केवल इतनी-सी थी कि जो कितनी ही दीप-मालाएँ जल रही थी, मानो किसी ने एक फूंक में उन सबको बुझाकर चालू नाटक के बीच में यवनिका डाल दी। और उस घोर अन्धकार में रह गया वह स्वयं और उसका अचेतन तिवारी।

भारती ने फिर कहा, "हमें दिन रहते ही कुछ कर लेना चाहिए। कहें तो मैं घर जाते समय अस्पताल को टेलीफोन करती जाऊँ, गाड़ी आकर इसे ले जायगी।"

अपूर्व ने अपने मन के भावों को जबर्दस्ती हटाकर पूछा, "लेकिन आप ही तो कह रही थीं कि वहाँ जाने से कोई बचता नहीं?"

भारती ने कहा, "कोई बचता ही नहीं, ऐसा तो नहीं कहा?"

अपूर्व ने अत्यन्त मलीन मुख से कहा, "अधिकतर तो मर ही जाते हैं।"

भारती ने सिर हिलाकर कहा, "अ... तो मर ही जाते हैं। इसीलिए

श रहते कोई वहाँ जाना नहीं चाहता।"

अपूर्व कुछ देर तक चुप बैठा रहा। फिर उसने पूछा, "अच्छा, तिवारी ो क्या कुछ होश नहीं है?"

भारती ने कहा, "कुछ है क्यों नहीं! बेहोशी में भी तो होश आ ही ाता है।"

सहसा तिवारी चीत्कार उठा। अपूर्व ऐसा चौंका कि भारती ने स्पष्ट देख लिया। उसने पास आकर रोगी के मुंह पर झुककर स्नेह के साथ पूछा, "क्या चाहिए तिवारी?"

तिवारी ने होंठ हिलाकर जो कुछ कहा, अपूर्व उसका कुछ भी अर्थ न समझ सका। परन्तु भारती ने सावधानी से उसको करवट बदलकर लोटे से थोड़ा-सा पानी पिला दिया और फिर उसके कान में कहा, "तुम्हारे बाबू आ गये हैं।"

तिवारी ने जवाब में एक अव्यक्त ध्वनि की और दाहिना हाथ उठाने की कोशिश की, मगर उठा न सका।

दूसरे ही क्षण देखा गया कि उसकी आँखों के किनारे से आँसू निकल रहे हैं। अपूर्व की आँखों में आँसू भर आये। धोती के छोर से उसने उन्हें झटपट पोंछ तो लिया, पर रोक न सका—बार-बार उसकी भीगी आँखें जोर से अश्रुधारा बहाने का प्रयत्न करने लगीं।

दो-तीन मिनट तक किसी से कुछ बोला नहीं गया। घर-भर में दुःख और शोक के बादल से छा गये।

भारती ने ही मौन भंग किया। जरा हटकर वह चुपके से बोली, "क्या किया जाय, अस्पताल ही भेज दीजिये।"

अपूर्व अपनी आँखों पर से अब तक उसका परदा नहीं हटा पाया। फिर भी सिर हिलाकर बोला, "ना।"

भारती ने उसी प्रकार धीरे से कहा, "मैं अभी जाती हूँ। यदि समय मिला, तो एक बार फिर आऊँगी।"

अपूर्व अब भी आँख नहीं खोल सका। सन्न होकर बैठा रहा। भारती ने जाते-जाते कहा, "सबकुछ है, केवल मोमबत्ती समाप्त हो गई—मैं नीचे से एक बण्डल खरीदकर दिये जाती हूँ।" यह कहकर वह धीरे से किवाड़

खोलकर बाहर चली गई। कई मिनट बाद मोमबत्ती लेकर वह वापस आई तब तक अपूर्व ने अपने को बहुत कुछ सँभाल लिया था। आँखें पोंछ डाली थीं। भीगी पलकों के नीचे वे लाल हो उठी थीं। भारती के भीतर घुसते ही उसने दूसरी ओर मुँह फेर लिया। हाथ का बण्डल पास रखकर वह कुछ कहना चाहती थी; पर दूसरे ने जबकि कुछ बात न करके मुँह फेर लिया तो वह भी बिना कुछ बोले-चाले घर जाने के लिए तैयार हो गई। ज्यों ही उसने जाने के लिए किवाड़ खोले, त्यों ही अपूर्व अकस्मात् पूछ उठा, "तिवारी यदि पानी माँगे तो?"

भारती घूमकर खड़ी हो गई। बोली, "पानी पिला दीजिएगा।"

अपूर्व ने कहा, "और यदि करवट लेना चाहे तो?"

भारती ने कहा, "करवट बदल दीजिएगा।"

"कहना तो सरल है। और मैं सोऊँगा कहाँ, बताइये तो?" अपूर्व क्रोध से बोला, "बिछौने तो मेरे ऊपर ही पड़े हैं?"

भारती ने क्या सोचा, उसके चेहरे से नहीं मालूम हुआ। क्षण-भर स्थिर रहकर वैसे ही शान्त-मृदु कण्ठ से उसने कहा, "और एक बिस्तर है तो नहीं आपकी खाट पर, उस पर आसानी से सो सकते हैं।"

अपूर्व ने कहा, "आप तो कहेंगी ही ऐसी बात! और मेरे खाने-पीने का क्या प्रबन्ध होगा?"

भारती चुप रही। पर इस असंगत और बेढंगे प्रश्न से उसकी गुप्त हँसी का आवेग इतना बढ़ गया कि उसकी पलक काँपने लगी। बहुत देर बाद गम्भीरता के साथ उसने कहा, "आपके सोने और खाने-पीने का भार क्या मुझ पर है?"

"मैं क्या कह रहा हूँ?"

"यही तो आपने कहा। और वह भी क्रोध में।"

अपूर्व को कुछ उत्तर ढूँढ़े न मिला।

उसके मलीन और दुःखी मुख की तरफ देखकर भारती ने धीरे से कहा "आपको कहना चाहिए था, कृपा करके मेरे लिए इन सबका प्रबन्ध कर दीजिए।"

अपूर्व ने किसी ओर बिना देखे ही कहा, "यह कहने में ऐसी कौन-सी

कठिनाई है ?"

भारती ने कहा, "अच्छी बात है, कहिए।"

"यही तो कह रहा हूं।" कहकर अपूर्व मुंह भारी करके उसकी तरफ देखने लगा।

भारती ने पूछा, "कभी किसी बीमारी में आपने किसी की सेवा-चाकरी की है ?"

"ना।"

"कभी परदेश भी नहीं गये ?"

"ना। मां मुझे कहीं जाने ही नहीं देती थी।"

"तो इस बार आपको कैसे छोड़ दिया ?"

अपूर्व चुप रहा। कैसे और किस कारण से उसका विदेश जाना मां को स्वीकार करना पड़ा है, इस बात को वह दूसरे के सामने कहना नहीं चाहता था।

भारती ने कहा, "इतनी बड़ी नौकरी ठहरी—बगैर छोड़े नहीं चल सकता था, क्यों ? पर वे साथ क्यों नहीं आईं ?"

इसके इस अनुचित परामर्श पर अपूर्व ने क्षुब्ध होकर कहा, "मेरी माँ को आपने देखा नहीं है, नहीं तो ऐसी बात आप नहीं कहतीं। उन्होंने बड़े दुख से मुझे यहाँ भेजा है।—वे विधवा ठहरीं, इस म्लेच्छ देश में कैसे आ सकती थीं ?"

भारती क्षण-भर स्थिर रहकर बोली, "म्लेच्छों से आपको बहुत घृणा है। मगर रोग तो केवल म्लेच्छों या गरीबों के लिए नहीं बना, आपको भी तो हो सकता है? और भी हो सकता है—तो फिर क्या मां नहीं आयेंगी ?"

अपूर्व का चेहरा फक पड़ गया, बोला, "आप इस प्रकार डराएँगी तो मैं अकेला कैसे रहूँगा ?"

भारती ने कहा, "डर दिखाये बिना भी आप अकेले नहीं रह सकते। आप बहुत ही डरपोक हैं।"

अपूर्व प्रतिवाद करने का साहस न कर सका, चुपचाप बैठा रहा।

भारती सहसा कह उठी, "एक बात मैं पूछती हूं आपसे। मेरे हाथ का पानी पीने से तिवारी की जात तो मारी गई, अब वह अच्छा होकर भी क्या

करेगा ?"

अपूर्व को इसकी सम्भावना विदित नहीं मालूम थी। जरा सोचकर बोला, "उसके बारे होश में भी लिया नहीं, सामान्यतः रोग में लिए हैं, पीने से मर जाता। इससे ज्यादा बात नहीं जानी, प्रायश्चित्त करने से ही काम चल जाता है।"

भारती भौंहें चढ़ाकर बोली, "हूँ, इसका व्यय शायद आपको सहन करना पड़ेगा, नहीं तो भला फिर उनके हाथ का खाना-पीना कैसे ?"

अपूर्व ने उसी समय उसका समर्थन करते हुए कहा, "मैं तो सर्व दूँगा ही, अवश्य दूँगा। भगवान् करे, उसे जल्दी से आराम हो जाय।"

भारती ने कहा, "और मैं ही सेवा करके उसे अच्छा करूँ, क्यों ?"

उसके शान्त कठिन स्वर पर अपूर्व ने ध्यान नहीं दिया। कृतज्ञता से भरपूर होकर उत्तर दिया, "सो आपकी कृपा है। तिवारी तो जान—आपने ही तो उसकी जान बचाई है।"

भारती जरा हँसकर बोली, "म्लेच्छ के जान बचाने में दोष नहीं। मुँह में पानी देने में ही प्रायश्चित्त की आवश्यकता होती है, क्यों ?" इतना कहकर वह फिर जरा हँसकर बोली, "अच्छा, अभी मैं चलती हूँ। कल यदि समय मिला तो एक बार आकर देख जाऊँगी।" वह जाने को तैयार हुई पर तुरन्त ही मुड़कर बोली, "और यदि न आ सकी, तो तिवारी के अच्छे हो जाने पर उससे कहिएगा कि आप न आ जाते तो मैं उसे छोड़कर नहीं जाती। म्लेच्छों का भी एक समाज है। आपके साथ अकेले घर में रात बिताने को वह भी अच्छा नहीं कहेगा। कल सवेरे जब आपका सिपाही आये, तो उसके हाथ तलवरकर को सूचना भिजवा दीजिएगा। वे अनुभवी आदमी हैं, सब प्रबन्ध कर देंगे। अच्छा, नमस्कार।"

अपूर्व ने कहा, "करवट बदलने से इसे कष्ट नहीं होगा ?"

भारती ने कहा, "ना।"

"यदि रात को बिछौना बदल देने की आवश्यकता पड़े तो कैसे क्या करना होगा ?"

भारती ने कहा, "सावधानी रखनी होगी।" घर जाने के लिए ज्यों ही —ती ने दरवाजा खोला, अपूर्व झट से डरकर बोल उठा, "और यदि

अचानक उठकर बैठ जाए और रोने लगे तो?"

इन सब प्रश्नों के उत्तर देने में चुप भारती ने धीरे से बाहर निकलकर सावधानी से किवाड़ बन्द कर दिए। उसके पैरों की मन्द-मन्द आहट जब तक सीढ़ियों पर सुनाई दी, तब तक वह काठ की मूर्ति बना चुपचाप बैठा रहा। परन्तु आवाज थमते ही, मानो उसकी आँखों के आगे कहीं से एक काला जाल-सा उतर आया और उसने उसका शरीर ऐसा हो उठा कि वैसा उसने अपने जीवन में कभी अनुभव ही नहीं किया। मारे भय के लपककर उसने बरामदे की ओर के किवाड़ खोल दिये और नीचे सड़क की तरफ देखा, तो भारती जल्दी-जल्दी जाती दिखाई दी। 'मिस जोजफ' नाम वह मुँह से निकाल ही न सका, जोर से पुकार उठा, "भारती!"

भारती ने मुँह उठाकर उसकी ओर देखा।

अपूर्व ने दोनों हाथ जोड़कर कहा, "जरा एक बार आइए।" उसके आगे मुँह में कुछ बात ही नहीं निकली। भारती लौट आई। दो मिनट बाद दरवाजा खोलकर भीतर आकर उसने देखा, अपूर्व नहीं है, और तिवारी अकेला पड़ा है। जरा और आगे बढ़कर झाँककर देखा, बरामदे में भी नहीं है, वहीं भी नहीं है। चारों ओर देखने लगी। देखा तो स्नानघर का दरवाजा खुला हुआ है। आखिर पाँच-छः मिनट ठहरने पर भी जब कोई नहीं आया, तब वह उठी और गुसलखाने में झाँककर जो कुछ उसने देखा, उससे उसके भय का ठिकाना न रहा।

अपूर्व जमीन पर औंधा पड़ा है—दोपहर को जो कुछ खाया था, सो सब उलट दिया है। उसकी आँखें बन्द हैं और सारे शरीर से पसीना छूट रहा है। पास जाकर पुकारा, "अपूर्व बाबू!"

पहली ही आवाज से अपूर्व ने आँखें खोल दीं, किन्तु दूसरे ही क्षण फिर जैसा-का-तैसा अचेत हो गया। भारती क्षण-भर के लिए दुविधा में पड़ गई। उसके बाद अपूर्व के पास बैठकर सिर पर हाथ फेरती हुई धीरे से बोली, "अपूर्व बाबू! उठके बैठना होगा। सिर और मुँह पर पानी छिड़के बिना तो तबीयत सुधरेगी नहीं।"

अपूर्व बैठ गया। भारती हाथ पकड़कर उसे नल के पास ले गई और नल खोल दिया। अपूर्व ने मुँह धो डाला। फिर भारती ने उसे धीरे से उठा

ने जाकर खाट पर लिटा दिया और अंगोछे के अभाव में अपने आँचल से ही उनके हाथ-पैर पोंछ दिये। इसके बाद वह कहीं से एक पंखा लाकर उनके माथे पर हवा करती हुई बोली, "अब जरा सोने का प्रयत्न कीजिए; आपकी तबीयत ठीक न होने तक मैं नहीं जाऊँगी।"

अपूर्व ने लज्जित होकर कहा, "परन्तु आपने तो अभी तक खाना नहीं खाया ?"

भारती ने कहा, "खाना आपने दिया कहाँ, आप सो जाइए।"

"सो जाने पर आप चली तो नहीं जायेंगी ?"

"ना, आपकी नींद खुलने तक मैं यहीं रहूँगी।"

अपूर्व कुछ देर तक चुप रहकर अचानक पूछ उठा, "अच्छा, सिर्फ भारती कहने से क्या आप अप्रसन्न होंगी ?"

"जरूर, पर केवल भारती कहने से नहीं हूँगी।"

"सबके सामने ?"

भारती ने जरा हँसकर कहा, "सबके सामने ही सही, क्या हानि है? मगर आप चुपचाप जरा सो जाइए—मुझे बहुत काम करना है।"

अपूर्व ने कहा, "सोने में मुझे भय लगता है, कहीं आप धोखा देकर चली न जायें ?"

"लेकिन जागते रहने पर भी जाऊँ तो आप रोक कैसे सकते हैं ?"

अपूर्व चुप होकर उसकी तरफ देखता रहा।

भारती ने कहा, "हमारे म्लेच्छ समाज में क्या सुनाम-बदनाम नाम की कोई चीज नहीं है ? मुझे भी उसमें डरकर चलना पड़ता है।"

अपूर्व की बुद्धि उस समय सामान्य नहीं थी। वह एक विचित्र ही प्रश्न कर बैठा। बोला, "मेरी माँ यहाँ नहीं है, मैं बीमार हो जाऊँ तो आप क्या करेंगी ? तब आपको ही रहना पड़ेगा।"

भारती ने कहा, "मुझको ही रहना पड़ेगा ? आपके मित्र तलवरकर साहब को सूचना देने से क्या काम नहीं चलेगा ?"

अपूर्व जोर से सिर हिलाकर कहने लगा, "ना, यह हरगिज नहीं हो सकता। या तो मेरी माँ, या आप—दोनों में से एक को बिना देखे मैं कदापि न जीऊँगा। कल को यदि मुझे चेचक निकल आई—इस बात को आप

बिल्कुल न भूल जाइएगा।"

उसके अनुरोध के अन्तिम हिस्से ने भारती को सहमा विमूढ़ बना दिया। बिस्तर के किनारे पर चट से बैठकर अपूर्व के शरीर पर अपना हाथ फेरते हुए उसने रुँधे गले से कहा, "ना-ना, भूलूँगी नहीं। यह क्या मैं कभी भूल सकती हूँ?"—परन्तु बात कह चुकने के बाद तुरन्त ही वह अपनी भूल समझ गई और उसी क्षण उठकर खड़ी हो गई। जबर्दस्ती जरा हँसकर बोली,"पर अच्छे होने के बाद भी कम वेदना नहीं सहनी पड़ेगी अपूर्व बाबू! धूमधाम के साथ फिर प्रायश्चित्त भी तो करना पड़ेगा? लेकिन डर की कोई बात नहीं, उसकी आवश्यकता न होगी। अच्छा, अब जरा चुप होकर सो तो जाइए। सचमुच मेरा बहुत काम पड़ा हुआ है।"

"क्या काम है?"

भारती ने कहा, "क्या काम है? खाना-पीना दूर रहा, अभी तक तो स्नान को भी समय नहीं मिला।"

"लेकिन शाम के समय नहाने से तबीयत खराब नहीं होगी?"

भारती ने कहा, "हो भी सकती है, कोई असम्भव नहीं। नहानघर में आपने जो कुछ कर रखा है, उसे साफ करने के बाद बिना नहाये और कोई चारा भी तो नहीं। उसके बाद दो गस्सा पेट में भी डालना है।"

अपूर्व ने अत्यन्त लज्जित होकर कहा, "उसे मैं साफ कर दूँगा—आप जाइयेगा नहीं।"—इतना कहकर वह झटपट उठने लगा। भारती ने क्रोधित होकर कहा, "अब बहादुरी दिखाने की आवश्यकता नहीं। जरा सोने की कोशिश कीजिए। मुझे तो इस बात का आश्चर्य है कि ऐसे शक्की लड़के को माँ ने परदेश कैसे भेज दिया। सच कहती हूँ, उठिएगा नहीं। माँ यहाँ नहीं है—इसीलिए अगर यहाँ मेरी बात न सुनी, तो बड़ी खराबी होगी—कहे देती हूँ।" यह कहकर कृत्रिम क्रोध से आज्ञा जारी करके वह जल्दी से उठकर चल दी।

उद्विग्न, श्रान्त और बिल्कुल निर्जीव की भाँति अपूर्व अब सो गया।

भारती के पुकारने पर उसकी नींद खुली। आँखें मींचता हुआ उठकर बैठ गया। सामने घड़ी पर नजर पड़ी तो देखा रात के बारह बजे हैं।

भारती पास ही खड़ी है। अपूर्व की पहली दृष्टि पड़ी उसके बालों के

फैलाव और लम्बाई पर। सद्य:स्नान से घने बाल भीगकर काले-स्याह हो गये थे और नीचे लटककर जमीन छूना चाहते थे। साबुन की भीनी-भीनी खुशबू से कमरे की रुकी हुई हवा सहसा मानो पुलकित हो उठी थी। वह एक काली किनारी की सूती साड़ी पहने थी—बदन पर कुरती न होने से बाँहों का बहुत-सा हिस्सा दिखाई दे रहा था—भारती की यह मानो एक और ही नई मूर्ति थी, अपूर्व ने पहले कभी देखी ही नहीं।

उसके मुँह से हठात् यही निकल पड़ा, "इतने भीगे बाल सूखेंगे कैसे?"

भारती ने कहा, "आपको इसके लिए चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। आप आइए तो मेरे साथ जरा।"

"तिवारी कैसा है?"

"अच्छा है। कम-से-कम आज रात के लिये चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। आइये।"

उसके साथ-साथ स्नानघर जाकर अपूर्व ने देखा, छोटी-सी एक टोकरी में कुछ फल-फलारी, हँसिया और पास में थाली, गिलास आदि रखा हुआ है।

भारती ने उन्हें दिखाते हुए कहा, "इससे अधिक और कुछ कर नहीं सकती थी। नल के पानी से सब धो डालिए—हँसिया, थाली, गिलास वगैरह। गिलास में पानी ले लीजिए, लेकर उस कमरे में चलिए, आसन बिछा रखा है।"

बात का उत्तर देते हुए कहा, "हँसती क्या ऐसे ही हूँ अपूर्व बाबू ! माना कि मर्द हँसिये से कुछ नहीं कर सकते। तिवारी कुछ अच्छा हो जाए, तो मैं अवश्य माँ को चिट्ठी दूँगी; या तो वे यहाँ आ जाएँ, नहीं तो अपने लड़के को यहाँ से वापस बुला लें। ऐसे आदमी को परदेश में नहीं छोड़ा जा सकता।"

अपूर्व ने कहा, "माँ अपने लड़के को अच्छी तरह जानती है। मगर, देखिए, मैं न होकर मेरे भाइयों में से कोई होता, तो आप इतनी बातें नहीं कह सकती थीं। आपसे वे सब काम करा लेते।"

भारती कुछ समझ न सकी।

अपूर्व ने कहा, "मेरे दादा सब ऐसे हैं कि उनसे ऐसी कोई चीज नहीं बची, जिसे वे छूते या खाते न हों। मुर्गी और होटलों में डिनर के बिना तो उनका काम ही नहीं चलता।"

भारती आश्चर्यचकित होकर बोली, 'क्या कहते हैं !"

अपूर्व ने कहा, "ठीक कहता हूँ। बाबा तो आधे ईसाई कहे जा सकते थे। माँ को इस बारे में क्या कुछ कम कष्ट उठाना पड़ा है।"

भारती ने उत्सुक होकर पूछा, "सच? माँ शायद बड़ी कट्टर हिन्दू हैं?"

अपूर्व ने कहा, "कट्टरता की इसमें क्या बात है? हिन्दू घर की स्त्रियों को वास्तव में जैसा होना चाहिए वैसी ही वे हैं।"—माँ की बात कहते-कहते अपूर्व का स्वर करुण और कोमल हो उठा, बोला, "घर में दो बहुएं हैं, फिर भी माँ को अपने हाथ से बनाकर खाना पड़ता है। पर माँ कभी किसी पर जोर-जबर्दस्ती नहीं करती, किसी से इसके लिए शिकायत भी नहीं करती। कहती है, मैं भी तो अपने आचार-विचार को छोड़कर अपने पति की राय में अपनी राय नहीं मिला सकी, अब ये लोग भी मेरी राय नहीं मिलाती तो इसमें शिकायत करना क्या ठीक है? मेरी बुद्धि और मेरे संस्कारों को मानकर ही बहुओं को चलना होगा, इसके क्या अर्थ हैं?"

भारती भक्ति और श्रद्धा से नम्र होकर बोली, "माँ पुराने समय की ठहरीं मगर धैर्य की तो प्रतिमा है।"

अपूर्व प्रसन्न होकर कहने लगा, "धैर्य? माँ के धैर्य की क्या कोई सीमा है? आपने उन्हें देखा नहीं। अगर देखेंगी तो मैं कहे देता हूँ कि एकबारगी आश्चर्यचकित रह जाएँगी।"

भारती प्रसन्नमुख अपलक उसकी ओर देखती रही।

अपूर्व फल काटना बन्द करके कहने लगा, "सच पूछो तो माँ बेचारी ने जीवन दुःख ही दुःख पाती रही हैं; जीवन-भर पति और पुत्रों के स्वेच्छाचार में ही चुपचाप दिन काटती आई हैं। उनको केवल भरोसा है मेरा। इनकी बीमारी में केवल मैं ही कुछ बनाकर उनके मुँह में दिया करता हूँ।"

भारती ने कहा, "तो, अभी तो उन्हें कष्ट रहा होगा?"

अपूर्व ने कहा, "सो तो होगा ही। इसी से तो वे पहले मुझे यहाँ भेजने को राजी नहीं हुई थीं। मगर हमेशा तो मैं घर बैठा नहीं रह सकता। उन्हें केवल एक आशा है कि मेरी बहू के आ जाने पर फिर उन्हें अपने हाथ से बनाकर न खाना पड़ेगा।"

भारती ने जरा-सा हँसकर कहा, "उनकी उस आशा को पूरी करके ही यहाँ से क्यों नहीं चले।"

अपूर्व ने उसी समय अनुमोदन करते हुए कहा, "ऐसा तो था ही। उन्होंने स्वयं लड़की पसन्द कर-कराके सब ठीक कर लिया था। अचानक मुझे यहाँ चला आना पड़ा। वक्त ही नहीं मिला। मगर मैं कह आया हूँ कि माँ, तुम चिट्ठी लिखोगी, तभी आकर तुम्हारी इच्छा को पूरी कर जाऊँगा।"

भारती ने कहा, "तो यही उत्तम है।"

अपूर्व ने मातृ-स्नेह से पिघलकर कहा, "अवश्य। वह खा-उठाकर करेगी, आचार-विचार समझेगी, ब्राह्मण-पण्डित के घर की लड़की होगी —माँ को कभी कष्ट न देगी—यही तो मैं चाहता हूँ। मुझे गाना-बजाना जानने वाली कविता की पढ़ी-लिखी विदुषी स्त्री की आवश्यकता क्या है?"

सको वही तो मानकर चलना चाहिए। घर-भर आदमियों में रहती हुई ी माँ मेरी अकेली हैं, इससे बढ़कर दुर्भाग्य और क्या होगा ? इसीलिए गवान् से मैं केवल इतनी प्रार्थना करता हूँ कि मेरे किसी आचरण से माँ ो कभी कष्ट न हो।" कहते हुए उसका गला भारी हो आया और आँखें ब्डबा आईं।

इसी समय सोते हुए तिवारी ने कुछ आवाज-सी दी। भारती चट से उठकर चली गई। अपूर्व उलटी हथेली से आँखें पोंछकर फिर फल काटने लग गया।

माँ से उसको कुछ ज्यादा प्रेम है। घर में रहते हुए वह माँ की प्रसन्नता के लिए चोटी रखने से लेकर एकादशी के दिन भात के बदले पूड़ी खाने तक के सब नियम पालन करता था। और वास्तव में ब्राह्मण-सन्तान की आचार-भ्रष्टता की वह निन्दा ही करता था। प्रवास में आकर आचार-विचार के प्रति ऐसे दृढ़ प्रेम के विषय में शायद उसकी माँ सन्देह न कर सकती थी। असल बात यह है कि आज उसका शरीर और मन भय और चिन्ता के मारे अत्यन्त विकल हो रहा था। माँ को अपने पास पाने की एक अन्ध-आकुलता ने उसके भीतर ही भीतर एक आँधी-सी उठा दी थी। उसके भीतर की सम्पूर्ण भाव-धारा विकृत होकर प्रत्यक्ष हो रही थी कि अन्तर्यामी से वह अगोचर न रही। परन्तु भारती की छाती के भीतर अपमान के दुःख से फोड़ा-सा फूटने लगा।

भारती ने थोड़ी देर बाद लौटकर देखा कि अपूर्व किसी प्रकार फल काटकर चुप बैठा है।

उसने कहा, "बैठे हैं, खाया नहीं ?"

अपूर्व ने कहा, "ना, आपके लिए बैठा हूँ।"

"क्यों ?"

"आप नहीं खाएँगी ?"

"नहीं, आवश्यकता होगी तो मेरे लिए अलग रखा है।"

अपूर्व ने फल की तश्तरी हाथ से जरा अलग करते हुए कहा, "वाह ! ऐसा भी होता है कहीं ? आपने सवेरे से कुछ खाया नहीं, और···" उसकी बात समाप्त भी न हो पाई थी कि इतने में अत्यन्त शुष्क दबे स्वर में उत्तर

आया, "उँह, आप बहुत परेशान करते हैं। भूख हो, खाइए, न हो, खिड़की से बाहर फेंक दीजिए।" इतना कहकर वह उसी क्षण दूसरे कमरे में चली गई। वास्तव में, एक क्षण-भर ही अपूर्व ने उसका मुँह देखा था, पर उस एक ही क्षण ने उसके हृदय पर जीवन-भर के लिए एक छाप मार दी। इस चेहरे को वह भूला नहीं। उस आने के दिन से आज तक उसका बहुत बार उससे साक्षात् हुआ है, झगड़े में, शत्रुता में, मित्रता में, सम्पद और विपद में कितनी बार उसने उसे देखा है, पर उस देखने के साथ इसका कोई सादृश्य नहीं। वह तो कुछ और ही है।

भारती चली गई, फल की तश्तरी उसी प्रकार पड़ी रही और अपूर्व जैसा था, वैसे ही पत्थर के समान चुपचाप बैठा रहा। कैसे क्या हुआ, उसकी समझ ही में न आया।

घण्टे-भर बाद !

उसने दूसरे कमरे में जाकर देखा कि तिवारी के पास भारती एक चटाई बिछाकर बाँह पर सिर रखे सो रही है। वह जैसे चुपचाप गया था वैसे ही चुपचाप वापस आकर अपनी खाट पर पड़ा रहा। पड़ते ही उसकी थकी हुई आँखें अपने-आप मुंद गईं। जब वह जागा तो भोर हो चुकी थी।

भारती ने कहा, "मैं जाती हूँ।"

अपूर्व हड़बड़ाकर उठ बैठा, पर अच्छी प्रकार होश आने से पहले ही उसने देखा कि भारती चली गई है।

□

आज एक महीना बीत चुका है। तिवारी को आराम हो गया है, पर अभी तक पहले जैसी शक्ति नहीं आई है। अपूर्व अपने साथ जिसे भामो ले गया था, वही रसोई बनाता है।

तिवारी का जीवन बचाने के लिए लगभग ऑफिस भर के लोगों ने काफी परिश्रम किया है। रामदास ही स्वयं कितने ही दिन अपने घर तक नहीं जा सका है। शहर के एक डॉक्टर ने उसका इलाज किया और उन्हीं की सिफारिश से उसे चेचक अस्पताल नहीं जाना पड़ा। यह बर्मा देश तिवारी को भी अच्छा नहीं लगा। अपूर्व ने उसे छुट्टी दे दी है कि जरा और शक्ति आ जाने पर वह घर चला जाएगा। आगामी सप्ताह में शायद

उनका जाना नहीं हो सकेगा, तिवारी स्वयं ऐसी आशा करता है।

भारती गई, फिर लौटकर आई ही नहीं। और मजा यह कि इतनी अनोखी घटना के बारे में आपस में कोई चर्चा तक नहीं करता। इसमें तिवारी का विशेष अपराध न था; बल्कि वह तो मानो डरता-सा रह गया था, कहीं कोई उसका नाम न ले दे। भारती शत्रु-पक्ष की है। यहाँ आने के बाद उसने इन लोगों को बहुत प्रकार सताया है। झूठी गवाही देकर अपूर्व को जेल भेजने का प्रयत्न तक किया था। वह मालिक के लिए ऐसी औरत को बुलाने की शर्म और संकोच दोनों अनुभव कर रहा था; मगर वह कब और कैसे चली गई है तिवारी को नहीं मालूम। जानने के लिए वह भीतर बहुत छटपटाता था—उसके उद्वेग और भय की सीमा न थी, पर कैसे जाना जा सकता है, यह उसकी समझ में नहीं आता था।

कभी सोचता, भारती चालाक लड़की है, अपूर्व के आने का समाचार पाते ही वह छिपकर भाग गई है। कभी सोचता, अपूर्व ने आकर शायद उसे अपमानित करके निकाल दिया है, मगर इन दोनों में से कोई भी बात क्यों न हुई हो, भारती अब अपनी तबीयत से उसे देखने के लिए इस मकान में न आयेगी, इस विषय में वह निश्चिन्त था।

अपूर्व स्वयं कुछ कहता नहीं, और पूछने में तिवारी को सबसे अधिक भय इस बात का है कि पूछताछ करने पर कहीं पिछला सब भेद न खुल जाए। लड़ाई-झगड़े की बात चूल्हे में गई, पर उसने जो उसके हाथ का पानी पिया है, उसका बनाया हुआ दूध-सागू और वार्ली खाई है—हो सकता है कि इसमें ऐसे भयंकर रूप से जात मारी गई हो कि जिसका कोई प्रायश्चित्त ही न हो।

तिवारी ने तय कर रखा था कि किसी प्रकार यहाँ से कलकत्ता जाकर वह सीधा घर चला जाएगा और वहाँ गंगा-स्नान करके, छिपे तौर से गोबर आदि खाकर, किसी बहाने से ब्राह्मण भोजन कराके, अपने को काम-चलाऊ शुद्ध कर लेगा। किसी प्रकार यह बात माँजी के कान तक पहुँच गई तो हालदार-घर की नौकरी तो जाएगी ही, साथ ही उसके गाँव के समाज तक को मालूम हो सकता है।

तिवारी की इस स्वार्थ और भय की दिशा को छोड़कर उसके हृदय

की एक दिशा भी है। वह जितना मधुर है, उतना ही दुखी। अपूर्व के ऑफिस चले जाने पर रोज वह एक बेंत का मूढ़ा लेकर बरामदे में जा बैठता है। कमजोर शरीर को दीवार के सहारे टेककर, सामने की गली जहाँ बड़ी सड़क में जा मिली है, उसी ओर एकटक देखता रहता है। ऐसा नहीं हो सकता कि इस रास्ते आने की भारती को कभी आवश्यकता ही न हो, इस गली के सामने से निकलते समय अभ्यासवश वह इधर झाँक कर देखे भी नहीं!

अपूर्व के भामो चले जाने पर भारती से उसका घनिष्ठ परिचय हुआ था। जिस दिन दोपहर के समय सहसा उसकी माँ मर गई थी और तिवारी ने सब तक खाया भी न था, वह रोती-बिलखती हुई दरवाजे पर आई थी। दो दिन पहले जोजफ मर चुका था, इसलिए उसे कोई भय न था। दरवाजा खोलते ही भारती घर में आकर उसके दोनों हाथ पकड़ के फूट-फूटकर रोने लगी। हाय, उसका वह रोना! कौन कहेगा कि वह मलेच्छ है, कौन कहेगा कि वह ईसाई की लड़की है। तिवारी का बना-बनाया दाल-भात हण्डी में ही पड़ा रहा और दिन-भर उसे उसकी चिट्ठियाँ लिए-लिए न जाने कहाँ-कहाँ दौड़ना पड़ा।

दूसरे दिन जब लोग अरथी को ले जाने लगे, तो बरामदे में खड़ा-खड़ा वह ऐसा रोया कि आँसू रोके न रुके। तभी से वह भारती को कभी बिटिया और कभी लल्ली कहने लगा था, और जबर्दस्ती उसने उसे चार-पाँच दिन तक खाना नहीं बनाने दिया था, स्वयं ही बनाकर खिलाया था। उसके बाद, भारती जिस दिन अपनी चीज-वस्त लेकर दूसरे मकान में जाने लगी, उस दिन उसकी शाम कटनी कठिन हो गई। उसकी चेचक की बीमारी में भारती ने उसके लिए क्या-क्या किया था, सो वह अच्छी प्रकार जानता भी न था और न सोचता ही था। उस समय की याद आते ही उसे अपनी जान जाने का ध्यान आ जाता। परन्तु इसके साथ ही वह एक बात और सोचने का प्रयत्न करता। रोज सवेरे वह नहा-धोकर अपने लम्बे-काले भीगे बालों का भार पीठ पर डाले हुए उसकी खबर-सुध लेने आया करती थी। न तो रसोईघर में घुसती थी और न कोई चीज छूती थी, चौखट के बाहर जमीन पर बैठकर पूछ लिया करती—"आज क्या-क्या

बनाया, देखूं तिवारी ?"

तिवारी कहता, "लल्ली, एक आसन बिछा दूं ?"

भारती कहती, "ना, रहने दो। फिर धोना भी तो पड़ेगा।"

तिवारी कहता, "वाह ! आसन में भी कहीं छूत लगती है ?"

भारती कहती, "लगती क्यों नहीं ? तुम्हारे बाबू तो समझते हैं, मेरे रहने से सारा मकान अशुद्ध हो जाता है। कहीं उनका मकान होता तो शायद वे आग लगाकर इसे भी शुद्ध कर लेते। ठीक है न तिवारी ?"

तिवारी हँसकर कहता, "तुम्हें तो बस यही सूझा करता है। तुमसे स्वयं देखा नहीं जाता, इसलिए तुम सभी को वैसा ही समझती हो। लेकिन हमारे बाबू को अगर एक बार अच्छी तरह समझ लोगी, तो कहोगी कि ऐसा आदमी दुनिया में और है ही नहीं।"

भारती कहती, "यह तो मैं भी कहती हूँ। नहीं तो जिसने चोरी बचाई, उसी को चोर बताकर गिरफ्तार करवाने जाते ?"

इस विषय में अपना दोष याद करके तिवारी मर्माहत हो जाता। बात को दबाकर वह जल्दी से कहने लगता, "लेकिन तुमने तो भी कुछ कम नहीं किया लल्ली ! सबकुछ झूठ जानते हुए भी तुमने बाबू पर बीस रुपया जुर्माना भी तो अपनी ही तरफ से दे दिया, तुम्हारे बाबू को तो नहीं देना पड़ा ?"

"वाह ! देना कैसे नहीं पड़ा ? मैंने अपनी आँखों से देखा है, दो नोट जमा कराके तब वे अदालत से बाहर निकले थे।

"मैंने भी अपनी आँखों से देखा था तिवारी, तुम्हें घर में घुसते ही दो नोट दरवाजे के पास मिले पड़े थे और तुमने उठाकर बाबू को दे दिये थे।"

तिवारी के हाथ की करछुल हाथ में ही रह गयी—"क्या ?"

"उधर कड़ाही में तरकारी जो जली जा रही है तिवारी, फिर खाई भी न जायगी !"

तिवारी कड़ाही उतारकर कहता, "लेकिन बाबू से मैं यह बात कह दूँगा, लल्ली।"

भारती हँसकर जवाब देती, "कह न देना ! तुम्हारे बाबू से क्या मैं डरती हूँ ?"

इतनी आश्चर्यजनक बात भी अपूर्व ने कह देने का तिवारी को मौका ही नहीं दिया। कब और किस तरह मिलेगा, यह भी उसकी समझ में नहीं आ रहा है। एक दिन आलस्य के कारण वह काफी हल्दी से भात बना रहा था, तब भारती ने उसे फटकार दिया था। और एक दिन बीमार पड़ने पर उसने रसोई बना ली, इसलिए भारती ने उसके हाथ का खाना नहीं खाया था।

तिवारी ने क्रोध में आकर कहा था, "तुम तो ईसाई हो, क्या तुम लोगों को इतना विचार क्यों? तुम तो हमारी मौसी से भी आगे बढ़ गईं!"

भारती जरा हँसकर चली गई थी। कुछ उत्तर नहीं दिया था। वास्तव में रसोई के मामले में मौसी के सिवा तिवारी से और कोई कुछ प्रश्न कर सकता है, यह उसकी समझ के बाहर की बात थी, इसलिए उस दिन उसे मन-ही-मन बड़ा दुःख हुआ था। मगर उसके बाद से आचार-विचार के मामले में उसे इस म्लेच्छ लड़की से भी सतर्क रहना पड़ा था। तब ये सब बातें उसे अच्छी नहीं लगी थीं, और जो अच्छी भी लगी थीं, उनकी उसने कभी परवाह नहीं की थी। ये सब बातें आज उसे चिन्ता में लीन किए दे रही हैं। अब वह बर्मा लौटकर नहीं आयेगा। जाने के पहले भारती से भेंट होने की कोई आशा नहीं। कोई कारण भी नहीं। जो कुछ वह जानता है, उसे सुना देने को कोई विश्वसनीय प्राणी नहीं। इसलिए रात-दिन सड़क के किनारे निष्फल दृष्टि बिछाये चुपचाप अकेले बैठ रहने से उसके मन में मानो पीड़ा का संचार होता था।

अपूर्व ने उस दिन ऑफिस से लौटकर तिवारी से अचानक पूछा, "भारती का घर कहाँ पर है तिवारी?"

तिवारी ने भयभीत स्वर में उत्तर दिया, "मैं देखकर थोड़े ही आया हूँ?"

"जाते समय तुमसे कह नहीं गई थी?"

"मुझसे किसलिए कह जाती?"

अपूर्व ने कहा "मुझसे कहा था, पर जगह की ठीक याद नहीं रही।

तिवारी का मन घबराने लगा—न मालूम कौन-सा फसाद उठ खड़ा
ोगा। पर उसका इतना साहस नहीं पड़ा कि कारण पूछ लेता।

अपूर्व स्वयं ही कहने लगा, "चोरी की चीजें मिल गई हैं। पुलिस उन्हें
ापस देना चाहती है, लेकिन भारती के हस्ताक्षर चाहिए।"

तिवारी दूसरी ओर देखता रहा।

अपूर्व कहने लगा, "उस दिन वे यही बात तो कहने आई थी, सो तेरी
शा देखकर फिर लौट ही न सकी। वे न सम्हालती, तो तू न जाने कब मर-
र भूत हो गया होता। मेरे साथ भेंट भी न होती।"

तिवारी ने हाँ, ना कुछ भी न कहा।

अपूर्व ने कहा, "उस दिन आकर देखा तो अँधेरे में तू और भारती,
ौर कोई था ही नहीं, क्या होता, कोई ठीक थोड़े ही था। कहाँ खाती
होगी, कहाँ सोती होगी—दो दिन पहले बेचारी के माँ-बाप मर चुके थे—
मगर कैसी कठोर लड़की है, किसी ओर कोई ध्यान ही नहीं।"

तिवारी से अब न रहा गया, बोला, "चली कब गई थी?"

अपूर्व ने कहा, "मेरे आने के दूसरे दिन ही तड़के सुबह। कहा कि
जाती हूँ। फिर ऐसी गई कि आज तक नहीं लौटी।"

"गुस्सा होकर चली गई क्या?"

"गुस्सा होकर?" अपूर्व ने जरा सोचकर कहा—"क्या मालूम, हो
भी सकता है। उसको समझना ही कठिन है। नहीं तो, तेरे लिए इतना
किया, इतनी सेवा की, एक बार फिर खबर लेने भी न आई कि अच्छा हुआ
या नहीं।"

यह बात तिवारी को अच्छी नहीं लगी। बोला, "स्वयं ही शायद
बीमार पड़ गई हो।"

स्वयं बीमार पड़ गई हो! अपूर्व चौंक पड़ा।

भारती के विषय में बहुत दिन बहुत-सी बातों का ध्यान आया है, पर
किसी दिन बीमार पड़ने की तो आशंका भी उसके मन में नहीं उठी। जाते
समय शायद वह गुस्सा होकर ही चली गई हो और गुस्सा होने के कारणों
के बारे में ही उसके मन में तरह-तरह के विचार उठते रहे हैं। परन्तु और
भी कुछ हो सकता है, इस विषय में उसके दुखी मन ने कभी विचार ही नहीं

किया।

सहसा बीमारी की बात सुनकर, इस बारे में जितनी भी बातें उस रात को हुई थीं, पलक मारते ही उसे सब याद आ गई और तब वह प्लेग के सिवा और किसी बीमारी की कल्पना ही न कर सका। नये मकान में जहाँ वह रहती है, वहाँ उसे देखने वाला कोई नहीं—शायद उसे अस्पताल भेज दिया गया हो, शायद अब तक जीवित भी न हो—मन-ही-मन वह एक बार चंचल हो उठा। एक कुरसी पर बैठकर ऑफिस के कपड़े, नेकटाई खोलते हुए उसने बातचीत शुरू की थी, हाथ का यह काम उसका वहीं बन्द हो गया, मुंह से कोई आवाज ही नहीं निकली, और उसी कुरसी पर मिट्टी के पुतले के समान बैठा रहा—ऐसी अपरिचित और अस्पष्ट-सी अनुभूति उस पर छा गई, मानो अब उसे संसार में और कुछ करना ही नहीं है।

कुछ देर तक मौन।

इसी तरह बीस-पच्चीस मिनट बीत जाने पर जब अपूर्व ने किसी तरह का नाम नहीं लिया, तब तिवारी मन-ही-मन केवल आश्चर्यचकित नहीं, दुखी भी हो उठा। धीरे से बोला, "छोटे बाबू! मकान-मालिक का आदमी आया था, यदि ऊपर का कमरा लेना हो तो इसी महीने में बता देने के लिए कह गया है। मुझे चिन्ता है कि कहीं और कोई न आ जाय।"

अपूर्व ने मुंह उठाकर कहा, "कौन आयेगा यहाँ?"

तिवारी ने कहा, "आज माँजी का एक पोस्टकार्ड आया है। दरवान से लिखवाकर भेजा है।"

"क्या लिखा है?"

"मेरे आराम हो जाने से उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई है। दरवान का भाई मुरारी [illegible] देश जा रहा है—उसके हाथ विश्वेश्वर की पूजा के लिए पाँच रुपये भिजवाए हैं।"

अपूर्व ने कहा, "अच्छा ही तो है। माँ मुझे अपने लड़के के समान समझती हैं।"

तिवारी ने थोड़ा [illegible] होकर कहा, "लड़के से भी ज्यादा। [illegible] इच्छा है कि मुरारी [illegible] हम दोनों का

जावें। चारों ओर हारी-बीमारी···"

अपूर्व बीच में ही बोल उठा, "हारी-बीमारी कहाँ नहीं है रे? कलकत्ते में नहीं होती? तूने शायद डराने के लिए तरह-तरह की बातें लिख दी होंगी?"

"जी नहीं।" तिवारी ने सोच रखा था, असली बात वह खाने-पीने के बाद रात को कहेगा। पर अब उससे नहीं रहा गया। बोला, "काली बाबू बहुत हठ कर रहे हैं। शायद सभी की यह इच्छा है कि इस चैत के बाद बैसाख लगते ही यह शुभ काम हो जाए।"

काली बाबू अत्यन्त निष्ठावान ब्राह्मण हैं। उनके घराने की आचार-परायणता की काफी प्रसिद्धि है। उन्हीं की छोटी लड़की को माँ ने पसन्द किया है। यह आभास उनके कई पत्रों में मिल चुका था।

तिवारी की बात अपूर्व को अच्छी नहीं लगी। बोला, "इतनी जल्दी काहे की है? काली बाबू को गौरीदान का सन्तोष न हो, तो वे और कहीं प्रयत्न कर सकते हैं।"

तिवारी ने जरा हँसने की चेष्टा करते हुए कहा, "जल्दी उन्हें है या माँजी को, मैं कैसे जान सकता हूँ छोटे बाबू? लोग शायद उन्हें डराते होंगे कि बर्मा देश अच्छा नहीं है—यहाँ रहने से लड़के बिगड़ जाते हैं।"

अपूर्व एकदम जल-भुन उठा। बोला, "देख तिवारी, तू मेरे ऊपर इतनी पण्डिताई मत बघारा कर। माँ को तू रोज-रोज इतनी चिट्ठियाँ क्यों लिखा करता है?"

इस अकारण क्रोध से तिवारी पहले तो आश्चर्य में पड़ गया, पर फिर उसे भी क्रोध आ गया। इधर रोग के बाद से उसका भी स्वभाव सामान्य नहीं रहता था, "आते समय माँजी से यह बात कह क्यों नहीं आये? तो मेरा भी पिण्ड छूट जाता। जात-धर्म नष्ट करने जहाज पर न चढ़ना पड़ता।"

अपूर्व की आँखें लाल हो गईं। वह चट से कालर और नेकटाई उठाकर पहनने लगा। तिवारी बहुत दिनों से इसके अर्थ जानता था। बोला, "तो पानी-वानी कुछ नहीं पियेंगे?"

अपूर्व उसके प्रश्न के उत्तर में खूंटी से कोट उतारकर उसमें हाथ

बातें-बात में झनझनाता हुआ बाहर चला गया।

तिवारी गर्म होकर बोला, "कल इतवार को चटगाँव होकर एक जहाज आता है—मैं उसी से चला जाऊँगा, कहे देता हूँ।"

अपूर्व ने गाड़ी से उतरते हुए कहा, "मुझे सौभाग्य है यदि न चला।" और वह नीचे चला गया।

८

रंगून में बगालियों की कोई कमी नहीं है, मगर जब से वह आया है तब से इतने झंझटों में उसके दिन बीते हैं कि किसी से परिचय करने का उसे अवसर ही नहीं मिला। घर से निकलकर आज भी वह रेलवे स्टेशन की ओर ही जा रहा था, पर अचानक उसे शनिवार को उनके दफ्तर के थियेटर देखने की बात याद आ गई। लिहाजा रास्ते में घूमने-फिरने के सिवा और कहीं जाने की जब कोई सम्भावना नहीं दीखी तो झट से भारती की याद आ गई। उसके प्रति अपनी गहरी अकृतज्ञता आज उसे तीक्ष्ण ही चुभने लगी। उसका आहत मन अपने ही सामने मानो उत्तर के तौर पर कहने लगा, वह अच्छी तरह होगी, उसे कुछ नहीं हुआ, नहीं तो क्या इतने बड़े जीवन-मरण के प्रश्न के विषय में जरा सूचना नहीं पहुँचाती? ऐसा हो ही नहीं सकता। फिर भी वह इससे और आगे न बढ़ सका। तेल के कारखाने के पास ही कहीं उसका घर है, इस बात को भूला नहीं था। उसे ढूँढ निकालने के लिए उसका मन नाच उठा। परन्तु इतने दिनों बाद इस तरह जो व्यक्ति अपने को छिपाये हुए है, उसकी सुधि लेने जाने की लज्जा ने भी उसका पीछा न छोड़ा। सम्भव है वह ऐसा न चाहती हो, हो सकता है कि वह मुझे देखकर अप्रसन्न हो।

इसी से चलते-चलते वह अपने-आपसे सौ-सौ बार कहने लगा, [illegible] उसके दस्तखत चाहती है, लिहाजा मैं अपने काम से ही आया हूँ—वह कैसे, वहाँ रहती है, इन सब अकारण कुतूहलों से नहीं आया। इतने दिनों यह अभियोग भारती मुझ पर किसी प्रकार भी नहीं लगा सकती।

इस ओर अपूर्व पहले नहीं आया था।

पूरब की ओर चौड़ी सड़क सीधी चली गई है। बहुत दूर चलकर हनी ओर नदी के किनारे जो सड़क गई है, वहाँ पहुँचकर उसने एक मी से पूछा, "इधर साहब-मेमों के मकान किधर हैं, मालूम है ?"

इसके उत्तर में उसने आसपास के जो बड़े-बड़े बंगले दिखाये, उनकी ति, अवयव और ठाट-बाट देखकर अपूर्व समझ गया कि उसके प्रश्न में गलती हुई। संशोधन करके उसने फिर पूछा, "बहुत-से हिन्दुस्तानी भी ते हैं, कारीगर, मिस्त्री, उनके बाल-बच्चे···"

उस आदमी ने कहा, "मैं भी तो मिस्त्री हूँ। मेरे ही नीचे पचास रीगर रहते हैं—जो कहता हूँ वही होता है—छोटे साहब से कहकर करी से निकलवा सकता हूँ। आप किसको चाहते हैं ?"

अपूर्व ने सोच-समझकर कहा—"मैं किसे चाहता हूँ?—अच्छा, जो गली, ईसाई, या···"

वह विस्मित होकर बोला, "बंगाली—फिर ईसाई कैसा ? ईसाई होने क्या कोई बंगाली बना रहता है ! ईसाई ईसाई है, मुसलमान मुसलमान। बस, मैं तो इतना ही जानता हूँ साहब।"

अपूर्व ने कहा, "ओह ! आखिर हैं तो बंगाल ही के ! बंगला भाषा हो बोलते हैं !"

वह नाराज होकर बोला, "बोला करें, इसमें क्या ? बोलने से ही हो या ! जो अपनी जात गवाँकर ईसाई हो गया, उसमें रह क्या गया साहब ! दि कोई बंगाली उसके साथ आहार-व्योहार करे तो देखूँ। वह एक आई न औरत मास्टरनी—लड़कों को पढ़ाती है। बस, पर कोई उसके साथ ाना-पीना तो दूर रहा, उठना-बैठना तक भी नहीं।"

अपूर्व ने उससे शान्ति से पूछा, "वे रहती कहाँ हैं, पता है आपको ?"

"इतना भी क्या नहीं जानता मैं ? इस रास्ते से सीधे जाकर गंगा के नारे जाके पूछिएगा, नया स्कूल कहाँ है—नन्हा-सा लड़का भी बता देगा। गॉक्टर बाबू रहते हैं न वहाँ। आदमी थोड़े ही हैं, देवता हैं देवता ! मुरदे ो जिला सकते हैं।"—इतना कहकर वह आगे चला गया।

अपूर्व को उस रास्ते जाते-जाते सामने एक लाल रंग का लकड़ी का

मकान दिखाई दिया। दुमंजिला, एकदम नदी के किनारे।

तब रात हो चुकी थी। रास्ते में कोई आदमी नहीं था। मकान की दुमंजिली खिड़की से प्रकाश आ रहा था। किसी से पूछने की इच्छा से वह वहाँ खड़ा हो गया। मगर मन में उसे सन्देह हो रहा था कि भारती यहीं रहती होगी और उस खिड़की से ही उसके दर्शन होंगे।

लगभग पन्द्रह मिनट बाद दो-तीन आदमी बाहर निकले और उसे खड़ा देखकर जैसे चौंक पड़े।

एक ने पूछा, "कौन? किसे चाहते हैं?"

उसके नम्र स्वर से अपूर्व संकुचित होकर बोला, "मिस जोजफ नाम की कोई महिला यहाँ रहती है?"

उसी क्षण उसने कहा, "रहती क्यों नहीं—आइए।"

अपूर्व की इच्छा जाने की नहीं थी, परन्तु दुविधा करते ही उस आदमी ने कहा, "आप कब से खड़े हैं? वे तो घर पर ही हैं—आइए। हम आपको ले चलते हैं।" इतना कहकर वह आगे बढ़ने लगा।

उसकी बात से साफ मालूम होता था कि वह उसे जाँच लेना चाहता है, लिहाजा सोचा, दरवाजे से 'नहीं' कहकर लौट जाने से उसका सन्देह ऐसा भद्दा रूप धारण करेगा कि जिसका ठिकाना नहीं। इसलिए 'चलिए' कहकर वह उसके पीछे हो लिया और क्षण-भर बाद ही उस मकान के नीचे के कमरे में पहुँच गया—एक ओर ऊपर जाने की सीढ़ी है। हॉल जैसा लम्बा-चौड़ा कमरा है। छत के नीचे बड़ा भारी एक लैम्प लटक रहा है, कई टेबल-कुर्सियाँ पड़ी हैं, एक काला बोर्ड है और दीवारों पर चारों ओर तरह-तरह के नक्शे टँगे हुए हैं।

अपूर्व देखते ही समझ गया कि यही नया स्कूल है। वहाँ चार-पाँच भले स्त्री और पुरुष मिलकर किसी बात पर तर्क कर रहे थे। सहसा एक अपरिचित आदमी को घुसते देख चुप हो गये।

अपूर्व केवल एक बार उसकी ओर देखकर जिसके साथ आया था उसी के पीछे-पीछे ऊपर चढ़ा चला गया।

भारती घर पर ही थी। अपूर्व को देखकर उसका मुँह चमक उठा। पास आकर उसके हाथ पकड़कर उसने स्वागत के साथ उसे एक कुर्सी पर

डा दिया और कहा, "आपने इतने दिनों तक मेरी कुछ सुध ही नहीं ली ?"

अपूर्व ने कहा, "आपने भी तो मेरी सुध नहीं ली।" तुरन्त ही वह बात को समझ गया कि उसकी बात उत्तर के हिसाब से ठीक नहीं बैठी।

भारती केवल जरा मुसकरा दी। बोली, "तिवारी घर जाना चाहता उसे जाने दीजिए। नहीं जाने से वह बिल्कुल नीरोग नहीं होगा।"

अपूर्व ने कहा, "यानी आप हमारी खबर-सुध नहीं लेतीं, मेरा यह हना सच नहीं ?"

भारती फिर जरा हँसकर बोली, "कल रविवार है, कल तो कुछ होगा हीं। हाँ, परसों बारह बजे के भीतर ही कोर्ट में जाकर आप अपने रुपये र सारी चीजें ले आइएगा। जरा देख-भालकर लीजिएगा, कहीं ठग न ।"

"आपके हस्ताक्षर चाहिए लेकिन…।"

"मालूम है।"

अपूर्व ने पूछा, "आपके साथ तिवारी की शायद भेंट हो जाती होगी, यो ?"

भारती ने सिर हिलाकर कहा, "ना। पर आप जाकर उस पर झूठ-ठ क्रोध न कीजिएगा।"

अपूर्व ने कहा, "झूठ-मूठ नहीं, उस पर सचमुच ही क्रोधित होना चाहिए। आपने उसकी जान बचाई है, इतनी कृतज्ञता उसमें होनी चाहिए थी।"

भारती ने कहा, "सो तो है। नहीं तो कम से कम वह मुझे जेल भेजने की एक बार कोशिश तो कर ही देखता।"

अपूर्व इस व्यंग्य को समझ गया। नीचे को निगाह किये कुछ देर बैठा रहकर अन्त में बोला, "आप मुझ पर बहुत अप्रसन्न हैं ?"

भारती ने कहा, "ना-ना। दिन-भर स्कूल में लड़के-लड़कियों को पढ़ाकर घर आती हूँ और समिति की असंख्य चिट्ठी-पत्रियाँ लिखकर बिस्तर पर पढ़ते-पढ़ते सो जाती हूँ—अप्रसन्न होने का भी समय ही कहाँ है मेरे पास ?"

अपूर्व ने कहा, "अच्छा—अप्रसन्न होने का भी समय नहीं है आपके

पास ?"

भारती ने कहा, "कहाँ है, बताइए ? आप किसी रोज सवेरे से आकर देखिए, सच है कि झूठ।"

एक दीर्घ निःश्वास निकल पड़ा अपूर्व के मुँह से। बोला, "देखने की मुझे आवश्यकता ही क्या है !" फिर जरा ठहरकर बोला, "स्कूल से आपको कितना वेतन मिलता है ?"

भारती ने हँसी रोक गम्भीर होकर कहा, "आप तो खूब आदमी हैं। वेतन की बात कहीं किसी से पूछी जाती है ? इससे उसका अपमान नहीं होता ?"

अपूर्व ने क्षुब्ध कण्ठ से कहा, "अपमान करने के विचार से मैंने पूछा नहीं। जबकि नौकरी करती हैं—"

भारती बीच में ही बोल उठी, "न करूँ, तो क्या आपका कहना है कि भूखों मरूँ ?"

अपूर्व ने कहा, "जैसी नौकरी है, उसे देखते तो यह भूखों मरना ही है। इससे तो अच्छी बल्कि, हमारे ऑफिस में एक स्थान खाली है, वेतन सौ रुपये—और दो घण्टे से अधिक मेहनत भी नहीं करनी पड़ती।"

भारती ने कहा, "मुझे वही नौकरी करने को कहते हैं ?"

अपूर्व ने कहा, "कौन-सा दोष है ?"

भारती ने सिर हिलाकर कहा, "ना, मैं नहीं करूँगी। आप ही तो उसके स्वामी हैं, काम में कुछ गलती हुई कि आप लाठी लेकर पीछे पड़ जाएँगे।"

अपूर्व चुप रहा। वह मन-ही-मन समझ गया कि भारती केवल मज़ाक कर रही है। कुछ देर पहले नीचे जो तर्क-वितर्क का कोलाहल सुनाई दे रहा था, सहसा वह तेज हो उठा।

अपूर्व ने सभ्य मनुष्य के समान कहा, "आपका स्कूल शायद शुरू हो गया है।"

भारती ने गम्भीरता से कहा, "तब तो और कुछ कम होगा। शायद उनके शिक्षकों ने विषय-निर्वाचन की ओर ध्यान दिया है।"

"आप नहीं जाएँगी ?"

"जाना तो चाहिए था, मगर आपको छोड़कर जाने को जी नहीं चाहता।" इतना कहकर वह जरा मुस्कराई।

अपूर्व के कान तक लाल हो उठे। वह दूसरी ओर आँखें फेरकर बगल की दीवार पर कच्चे झाऊ के पत्तों से लिखे हुए कई अक्षरों की ओर सहसा देखकर कहने लगा, "यह क्या लिखा है यहाँ ?"

भारती ने कहा, "पढ़िए न !"

क्षण-भर ध्यान से पढ़कर अपूर्व बोला, "पाथेरदाबी (पथ के दावेदार) है। इसका तात्पर्य ?"

"हमारी साधना है। आप हमारे सदस्य होंगे ?"

अपूर्व ने कहा, "आप स्वयं तो सदस्या होंगी हीं। मगर हमें करना क्या होगा ?"

भारती ने कहा, "हम सभी यात्री हैं, पथिक हैं, मनुष्य को मनुष्यता के मार्ग पर चलने के सब तरह के दावेदार मानते हुए हम समस्त बाधा-विघ्नों को रौंदते हुए चलेंगे। हमारे बाद जो लोग आयेंगे वे बिना किसी बाधा के चल सकें, उनकी अबाध गति को कोई रोक न सके, यही हम लोगों का प्रण है। आयेंगे आप हमारे दल में ?"

अपूर्व ने कहा, "हम पराधीन हैं। हम अंग्रेजी नहीं है, फ्रांसीसी नहीं हैं, अमेरिकन नहीं हैं—कहाँ मिलेगी हमें अबाध गति ? स्टेशन में एक बेंच पर बैठने का हक नहीं, अपमानित होकर शिकायत करने की भी सुविधा नहीं।" कहते-कहते उस दिन की सारी बेइज्जती—फिरंगी छोकरों के बूटों की मार से लेकर स्टेशन-मास्टर द्वारा निकाले जाने तक का सारा-का-सारा अपमान और उसके दुख को याद करके उसकी दोनों आँखें जल उठीं। बोला: "हम लोगों के बैठने से बच अपवित्र हो जाती है—हमारे घूमने से घर की हवा गन्दी हो जाती है—हम लोग जैसे आदमी ही नहीं ! हमारे शरीर में मानो प्राण नहीं ! मानव-रक्त नहीं !—इसी के विरुद्ध अगर आप लोगों की साधना हो, तो मैं भी आपके साथ हूँ।"

भारती ने कहा, "अपूर्व बाबू, आप भी क्या मनुष्य की इस पीड़ा को महसूस करते हैं ? सचमुच क्या आदमी की छूत से आदमी को कुछ आपत्ति न करनी चाहिए, एक के शरीर की हवा लगने से दूसरे के घर की हवा

गन्दी नहीं होती ?"

अपूर्व तेज स्वर में कहने लगा, "कदापि नहीं। मनुष्य के चमड़े का रंग उसकी मनुष्यता का मापदण्ड नहीं। किसी एक खास देश में पैदा होना ही तो उसका अपराध नहीं हो सकता ? क्षमा कीजिएगा आप, जॉइंट साहब के सिर्फ क्रिश्चियन होने के कारण से ही अदालत ने मुझ पर बीस रुपया जुर्माना कर दिया था। धर्म के भिन्न होने से ही क्या मनुष्य हीन हो जाता है ? यह कहाँ का न्याय है ? मैं कहता हूँ आपसे, इसी कारण ये लोग किसी दिन मरेंगे। यह जो मनुष्य को अकारण छोटा और नीचा समझना है, यह जो घृणा है, यह जो विद्वेष-भाव है, इस अपराध को भगवान् कभी भी क्षमा नहीं कर सकते।"

वेदना और अपमान की तुलना में दुनिया में ऐसी कोई चीज नहीं जो मनुष्य की सच्ची आत्मा को खींचकर बाहर ला सके। इसी के कारण वह सबकुछ भूलकर अपमान करने वालों के विरुद्ध अपमानितों की पीड़ा और पीड़क के विरुद्ध पीड़ितों के मर्मान्तिक अभियोग से जल उठा था।

भारती उसके कठोर चेहरे की तरफ देखती हुई अब तक चुप बैठी थी, परन्तु उसकी बात समाप्त होते ही उसने केवल जरा-सा मुस्करा दिया और मुँह फेर लिया।

अपूर्व चौंक उठा, मानो उसके चेहरे पर किसी ने जोर से तमाचा मार दिया हो। भारती के किसी भी प्रश्न पर अब तक उसने ध्यान नहीं दिया था, लेकिन अब वे अग्नि-रेखा की तरह उसके दिमाग में ऐसे जोर-शोर से चक्कर काटने लगे कि उसके मुँह से कुछ बात ही नहीं निकली।

थोड़ी देर बाद भारती ने जब मुँह फेरकर देखा, तब उसके होंठों पर हँसी का चिह्न तक न था। बोली, "आज शनिवार को हमारा स्कूल बन्द है, पर समिति का काम होना है। चलिए न, सीधे चलकर डॉक्टर से आपका परिचय करा दूँ और सदस्य भी बना लूँ।"

"वे क्या सभापति हैं ?"

"... ? नहीं, वे हमारे गुरु-तुल्य हैं। अर्थात् के लोग रहते हैं, [illegible] से नहीं सीखना।"

... गुरु के प्रति जरा भी कुतूहल पैदा नहीं हुआ। पूछने लगा,

"आपके सदस्य शायद सभी क्रिश्चियन होंगे ?"

भारती ने कहा, "ना, मेरे सिवा और सब हिन्दू है।"

अपूर्व विस्मित होकर बोला, "परस्त्रियों का स्वर भी तो सुन रहा हूँ ?"

भारती ने कहा, "वे भी हिन्दू है।"

क्षण-भर दुविधा करके अपूर्व ने कहा, "लेकिन वे शायद खाने-पीने और छुआछूत आदि का विचार नही रखती होंगी ?"

भारती ने कहा, "ना।" फिर हँसती हुई बोली, "मगर कोई ऐसे विचार रखता भी हो, तो उसके मुँह मे हम जबर्दस्ती कोई खाने की चीज नहीं ठूँस देती। आदमी की व्यक्तिगत इच्छा का हमारे यहाँ आदर किया जाता है। आपके भयभीत होने की कोई बात नही।"

अपूर्व ने कहा, "भय की क्या बात है! मगर—अच्छा, आप जैसी शिक्षित महिला भी शायद इसमे होंगी ?"

"मुझ जैसी ?" वह हँसती हुई बोली, "हमारी जो सभानेत्री है, उनका नाम है सुमित्रा। वे अकेली ही सारी दुनिया घूम आई है—केवल एक डॉक्टर के सिवा उन जैसी विदुषी शायद इस समिति मे और कोई नही है।"

अपूर्व ने आश्चर्य के साथ पूछा, "और जिन्हें आप डॉक्टर कहती है वे ?"

"डॉक्टर ?" श्रद्धा और भक्ति से भारती की आँखें सजल हो उठीं। बोली, "उनकी बात छोड़िए अपूर्व बाबू ! परिचय देकर शायद उन्हे छोटा कर डालूँगी।"

अपूर्व ने फिर कोई प्रश्न नही किया। वह चुप ही रहा। देश को प्यार करने का नशा उसके खून में समाया हुआ है, इसलिए पाथेरदाबी नाम की विचित्रता उसे अपनी ओर खींचने लगी। इस संगीहीन, बन्धुहीन, विदेश मे इतने असाधारण शिक्षित नर-नारियों की आशा और इच्छाएँ, प्रयत्न और उद्यम—उनका इतिहास, उनके रहस्यमय कर्म-जीवन का तरीका कि जो उस अद्भुत नाम को जकड़ता जा रहा है—उसके साथ घनिष्ठ मिलन के लोभ को जीतना कठिन है। परन्तु फिर भी न जाने कैसी एक विजातीय धर्महीन अस्वास्थ्यकर भाप नीचे से उठ-उठकर उसके मन को धीरे-धीरे

ग्लानि से भर देने लगी।

शोर बढ़ता ही जा रहा था।

भारती ने कहा, "चलिए, चलें।"

अपूर्व ने गले में स्वर मिलाकर कहा, "चलिए।"

दोनों नीचे पहुँच गये।

भारती ने उसे एक बेंच के कोने पर बिठा दिया और स्थान की कमी से वह भी उसके पास बैठ गई।

वह आसन इतना तंग था कि उस पर उतने आदमियों के सामने मर्यादा की रक्षा करते हुए दो जनों का बैठना नहीं हो सकता था। ऐसा बेहूदा आचरण भारती ने पहले कभी नहीं किया था। अपूर्व को केवल संकोच ही नहीं हुआ, वह अत्यन्त लज्जा भी महसूस करने लगा।

वहाँ इन सब बातों पर ध्यान देने का भी किसी को अवकाश नहीं मालूम होता था। उसका और भी एक बात पर लक्ष्य गया—उस अपरिचित व्यक्ति को आसन ग्रहण करते देख लगभग सभी ने उसकी ओर देखा, परन्तु वाद-विवाद ऐसी उद्दाम गति से चल रहा था कि उसमें रत्ती मात्र भी बाधा नहीं पहुँचती। केवल एक आदमी, जो कि उनकी तरफ पीठ किये टेबल पर बैठा हुआ कुछ लिख रहा था, लिखता ही रहा।

अपूर्व का आगमन शायद उसे मालूम ही न हुआ।

अपूर्व ने सबको गिनकर देखा, छह महिलाएँ और आठ पुरुष मिलकर वाद-विवाद में भाग ले रहे हैं। इनमें सभी अपरिचित थे—केवल एक आदमी को अपूर्व देखते ही पहचान गया। वेश-भूषा में कुछ परिवर्तन जरूर हो गया है, परन्तु इस मूर्ति को कुछ दिन पहले उसने मिक्थिला रेलवे-स्टेशन पर बिना टिकट सफर करने के कसूर पर पुलिस के हाथ से बचाया था, और इसी ने अपनी इच्छा से यथाशीघ्र रुपये वापस भेज देने का वचन भी दिया था।

उसने इसकी ओर देखा भी, मगर शराब के नशे में जिसके आगे हाथ पसारकर उपकार ग्रहण किया था, शराब बिना.पीई हालत में वह उसका स्मरण नहीं कर सका। किन्तु उसके कारण नहीं, बल्कि भारती का ख्याल करके अपूर्व के हृदय में गहरी चोट पहुँची कि ऐसे संग में वह कैसे आ

देंगी ?

सामने कोई खड़ा था। उसके बैठ जाते ही भारती ने अपूर्व के कान के पास अपना मुँह ले जाकर धुसके से कहा, "ये ही हैं हमारी प्रेसीडेण्ट सुमित्रा।"

अपूर्व देखते ही ताड़ गया था कि नारी द्वारा यदि किसी समिति का संचालन हो सकता है, तो वह यही होनी चाहिए। उम्र होगी तीस के करीब, परन्तु है ऐसी जैसे राजरानी। रंग कच्चे सोने जैसा, दाक्षिणात्य ढंग का जूड़ा बँधा हुआ है, हाथों में गिनती की चार-चार सोने की चूड़ियाँ हैं, गर्दन के पास सोने के हार का कुछ भाग चमक रहा है, कानों में सब्ज रंगदार एरन लटक रहे हैं जो प्रकाश पड़ने से साँप की आँखों के समान चमक उठते हैं— यही तो चाहिए।—ललाट, ठोड़ी, नाक, आँख, भौंह—कहीं पर जरा भी कोई नुक्स नहीं—कैसा सुन्दर आकर्षक रूप है ! काले बोर्ड पर एक हाथ टेके खड़ी है। अपूर्व के पलक गिरते ही नहीं। वह गणित पढ़कर ही इतना बड़ा हुआ है, काव्य के साथ उसका बहुत कम परिचय है, मगर जो लोग काव्य लिखा करते हैं, वे संसार में इतनी चीजों के होते हुए भी नगणा के साथ नारी-देह की क्यों तुलना करते हैं, यह बात आज उसे अच्छी प्रकार समझ में आ गई। सामने एक बीस-बाईस वर्ष की साधारण-सी महिला नीचे को निगाह किये बैठी है। देखने से मालूम होता है, शायद इसी को केन्द्र करके यह तर्क का तूफान चल रहा है। उसके पास ही एक प्रौढ़-सा आदमी बैठा है। उसका शुद्ध विलायती पहनावा देखकर मालूम होता है कि पैसे वाला है। जहाँ तक सम्भव है, वही प्रतिवादी है। वे सब क्या कर रहे हैं अपूर्व को अच्छी तरह सुनाई नहीं देता था, और न उसने उधर ध्यान ही दिया। उसका सम्पूर्ण चित्त सुमित्रा की ओर ही एकाग्र हो रहा था। उसके स्वर में न जाने कौन-सा विस्मय झरने लगेगा, अपूर्व उसी की आशा में मग्न था।

थोड़ी देर पहले के दुःख का कारण उसे याद ही नहीं रहा। साहबी पोशाक पहने हुए सज्जन की बात का उत्तर देती हुई अब वह बोली—यही तो है ! नारी का स्वर इसी को तो कहते हैं ! अपूर्व इस ढंग से कान लगाकर उसकी बातें सुनने लगा जैसे एक शब्द भी उसमें से खोना नहीं चाहता।

सुमित्रा ने कहा, "मनोहर बाबू, आप कोई कच्चे वकील नहीं, अगर कहीं यदि वैसा हुआ, तो मैं उनकी समालोचना करने में असमर्थ होऊँगी।"

मनोहर बाबू ने उत्तर दिया, "असम्बद्ध तर्क करना मेरा पेशा भी नहीं है।" सुमित्रा ने हँसते हुए चेहरे से कहा, "आशा तो यही करती हूँ। इसके माने है, आपका कथन संक्षेप में यह होता है : आप नवतारा के पति के मित्र हैं। वे जबरदस्ती अपनी स्त्री को ले जाना चाहते हैं। मगर स्त्री पति के साथ नहीं रहना चाहती, देश की सेवा करना चाहती है, इसमें अन्याय तो नहीं है।"

मनोहर ने कहा, "मगर पति के प्रति भी तो स्त्री का कोई कर्तव्य है? देश की सेवा करूँगी, कहने से ही उसका उत्तर नहीं हो जाता।"

सुमित्रा ने कहा, "देखिए मनोहर बाबू, नवतारा क्या काम करेंगी, क्या नहीं, इस बात के विचार का भार उन्हीं पर है। मगर उनके पति का जो उनके प्रति कर्त्तव्य था, वह भी उन्होंने किसी दिन नहीं किया। इस बात को आप सभी जानते हैं। कर्त्तव्य तो केवल एक ओर का नहीं होता?"

मनोहर ने जोश में आकर कहा, "मगर इसका अर्थ यह नहीं कि स्त्री को भी कुलटा हो जाना चाहिए। यह तो कोई युक्ति नहीं हो सकती। इस उम्र में और इस दल में रहती हुई भी सतीत्व कायम रखकर देश की सेवा कर सकेंगी, यह बात दावे के साथ हरगिज नहीं कही जा सकती।"

सुमित्रा के चेहरे पर कुछ लाली आ गई, पर उसी समय स्वाभाविक भाव लाकर उन्होंने कहा, "दावे के साथ कुछ कहना उचित भी नहीं। परन्तु हम लोगों ने देखा है—नवतारा के हृदय है, जीवन है, साहस है—और जो सबसे बढ़कर है वह धर्मज्ञान भी है। देश की सेवा के लिए इतना होना हमारी दृष्टि में काफी है। हाँ, जिसे आप सतीत्व कहते हैं, उसे रखना उनके लिए सहज होगा या नहीं, यह वे ही जानें।"

नवतारा के झुके हुए मुँह की ओर कटाक्ष से देखते हुए मनोहर ने कहा, "बहुत ही ऊँचा धर्मज्ञान है! देश की सेवा करती हुई शायद वे यही शिक्षा देश की औरतों को देती फिरेंगी?"

सुमित्रा ने कहा, "उनके दायित्व-ज्ञान पर हम लोगों का विश्वास है। व्यक्ति-विशेष के चरित्र की आलोचना करना हमारा नियम नहीं। परन्तु

ति को वे मन से प्रेम नहीं कर सकी हैं, उसे और एक बड़े काम के छोड़ आने में उन्होंने अन्याय नहीं समझा—यही शिक्षा यदि वे देश के समाज को देना चाहें तो दें, हमारी ओर से उस पर कोई भी आपत्ति होगी।"

मनोहर ने कहा, "हमारे इस सीता-सावित्री के देश में ऐसी ही शिक्षा रतों को देंगी?"

सुमित्रा ने समर्थन भाव से कहा, "ठीक तो यही है। औरतों के आगे अर्थहीन बोल न सुनाकर नवतारा यदि कहे कि इस देश में सीता ने दिन आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए पति को त्यागकर पाताल-प्रवेश था, और राज-कन्या सावित्री ने दरिद्र सत्यवान से विवाह से पहले प्रेम किया था कि अत्यन्त अल्पायु जानकर भी उससे विवाह करने में ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं हुई थी—मैं स्वयं भी अपने दुराचारी पति म नहीं कर सकी हूँ, इसलिए मेरी जैसी हालत में तुम भी ऐसा ही —तो इस शिक्षा से देश की महिलाओं की भलाई ही होगी, मनोहर !"

मनोहर के होंठ मारे क्रोध से काँपने लगे। पहले तो उनके मुँह से बात ही निकली, बाद में आवेश में आकर वे बोले, "तो देश जहन्नुम को गा।" फिर सहसा हाथ जोड़कर कहने लगे, "प्रार्थना है आप लोगों से, आप जो चाहे कीजिए, मगर दूसरों को यह शिक्षा न दीजिए। विला-सभ्यता के आने से हमारी काफी हानि हो चुकी है, मगर अब नारी-में भी उसका प्रचार करके सारे भारतवर्ष को रसातल को न दिए।"

सुमित्रा के चेहरे पर विरक्ति और क्लान्ति मिश्रित भाव प्रकट हुए, ो, "रसातल से बचाने का यदि कोई रास्ता है, तो यही है। असल में, अपनी सभ्यता के विषय में आपको विशेष कुछ ज्ञान नहीं है, अतः इस य में विवाद करने से केवल समय नष्ट होगा। बहुत-सा समय चला भी है—हमें और काम भी करने हैं।"

यथासाध्य क्रोध को रोकते हुए मनोहर बाबू ने कहा, "समय मेरे पास ज़्यादा नहीं है। नवतारा नहीं जाएँगी?"

अब तक मुँह उतारकर नवतारा ने ऊपर भी नहीं देखा था। उसने सिर हिलाकर कहा, "हाँ।"

मनोहर ने सुमित्रा से पूछा, "तो इनका दाम्पत्य आप ही ने तोड़ दिया?"

इसका उत्तर नवतारा ने ही दिया, "अपना दाम्पत्य मैं स्वयं ही उजाड़ूँगी, आप विस्मित न हों।"

मनोहर ने वक्र दृष्टि से नवतारा की ओर देखा। फिर सुमित्रा से कहा, "आप ही से पूछता हूँ, पति के घर विवाहित जीवन बिताने की अपेक्षा स्त्री के लिए क्या और भी कोई गौरव की चीज है—आप कह सकती हैं?"

सुमित्रा ने कहा, "औरों के बारे में चाहे जो हो, परन्तु कम-से-कम नवतारा के विषय में इतना कह सकती हूँ कि उनके पति के घर के विवाहित जीवन को गौरव का जीवन नहीं कह सकती।"

मनोहर बाबू इस उत्तर के बाद अपने को सँभाल न सके। व्यंग्य स्वर में बोल उठे, "मगर अब घर के बाहर उनके कुलटा जीवन को शायद गौरव का जीवन कह सकेंगी?"

आश्चर्य है कि इतने वीभत्स व्यंग्य से भी किसी के चेहरे पर कोई चाञ्चल्य दिखाई नहीं दिया।

सुमित्रा ने शान्त स्वर में ही कहा, "मनोहर बाबू, हमारी समिति में संयत भाव से बात करने का नियम है।"

"और उस नियम को यदि मैं न मान सका?"

"तो आपको बाहर निकाल दिया जाएगा।"

धनुष की डोर से छूटे हुए तीर के समान सीधे होकर पागल-से बोले, "अच्छा, जाता हूँ। गुड बाई!"

दरवाजे के पास पहुँचते ही उनका क्रोध मानो सहस्र धाराओं में बह पड़ा। हाथ-पैर पटकते हुए जोर से चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे, "मैं तुम लोगों का सब हाल जानता हूँ। अंग्रेजी राज्य को तुम लोग उखाड़ फेंकना चाहते हो। मगर यह विचार भी न करना। मैं गँवार किसान नहीं हूँ,

एडवोकेट हूँ। अच्छा, देखा जाएगा !" कहकर वे अँधेरे में लपकते हुए चले गए।

सहसा मालूम हुआ जैसे एक बड़ा-सा काण्ड हो गया। किसी ने उत्तेजना प्रकट नहीं की, परन्तु सभी के चेहरों पर मानो एक छाया-सी पड़ गई। सिर्फ एक ही आदमी ने, जो एक कोने में बैठा इधर पीठ किये लिख रहा था, इधर को देखा तक नहीं।

अपूर्व को मालूम हुआ—या तो वह बिल्कुल बहरा है या पत्थर का पुतला।

भारती का चेहरा उसने देखना चाहा, पर मानो वह जानबूझकर दूसरी तरफ गर्दन फिराए बैठी रही।

मनोहर आदमी चाहे जैसा भी है, पर इस समिति के विरुद्ध जैसी बातें कह गया है, वे अत्यन्त सन्देहजनक हैं। इतने आश्चर्यपूर्ण स्त्री-पुरुष कहाँ से आये और कैसे इन लोगों ने इस समिति का गठन किया, इसका सच्चा उद्देश्य क्या है, सहसा भारती भी इसमें कैसे आ जुटी, और वह जो एक दिन टिकट खरीदने के बदले शराब खरीद के पी गया था और उसकी आँखों के सामने पकड़ा गया था—सबसे बढ़कर यह नवतारा यहाँ कैसे आई? पति को त्यागकर देश की सेवा करने आई है! सतीत्व-रक्षा की बात पर विचार करने का अभी जिसे अवकाश ही नहीं! मजा यह कि ये लोग इतने बड़े अन्याय का समर्थन ही नहीं करते बल्कि उसे बढ़ावा भी देते हैं। जो इन सबकी संचालिका है, स्त्री होकर भी वह इतने पुरुषों के समान सती-धर्म के प्रति अपनी एकान्त अवज्ञा निःसंकोच भाव से प्रकट करने में जरा लजाई तक नहीं। यह सब क्या है? कैसा है?

कुछ देर तक कमरे में सन्नाटा छाया रहा।

बाहर अँधेरा और सड़क सुनसान। न मालूम कैसी एक उद्विग्न आशंका से अपूर्व का मन भीतर से भारी-सा हो उठा।

सहसा सुमित्रा का स्वर सुनाई पड़ा, "अपूर्व बाबू!"

अपूर्व ने चौंककर मुँह उठाकर उनकी ओर देखा।

सुमित्रा ने कहा, "आप तो हम लोगों को पहचानते नहीं, लेकिन भारती के जरिये हम सब आपको पहचानते हैं। सुना है, आप हमारी समिति के

ने आने हों, इतने ही से वह सच्ची नहीं हो जाती। इसके भीतर पोल है। जिन लोगों ने कभी किसी दिन देश का काम नहीं किया, यह उन्हीं की कही हुई बात है। देश की अपेक्षा अपना स्वार्थ जिनके लिए बहुत अधिक है, वे ही यह कहते हैं। पर इसमें सत्य नहीं। आप स्वयं जब काम में लग जाएँगे तब इस सत्य का अनुभव करने लगेंगे कि जिसे आप स्त्रियों का बाहर आकर पुरुषों में भीड़ करना कहते हैं, वह यदि किसी दिन हो सका, तो सचमुच ही देश का काम होगा, नहीं तो केवल पुरुषों की भीड़ सूखी बालू की भीत के समान टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ेगी, किसी दिन भी जमकर पक्की नहीं होगी।"

मन-ही-मन लज्जित होकर अपूर्व बोला, "पर इससे क्या अनीति नहीं बढ़ेगी? चरित्र कलुषित होने का भय नहीं रहेगा?"

सुमित्रा ने कहा, "भीतर भी रहते हुए डर क्या कम रहता है? घरों में क्या अनीति नहीं होती? अपूर्व बाबू, वह बाहर आने का दोष नहीं है। दोष विधाता का है जिन्होंने नर-नारी की सृष्टि की है। उनमें अनुराग जो भर दिया है उन्होंने। अपूर्व बाबू, मन में जरा विनय रखकर संसार के और देशों की ओर भी तो देखिए।"

इस बात से अपूर्व प्रसन्न न हो सका, बल्कि कुछ तीव्रता के साथ ही कहने लगा, "अन्य देशों की बात अन्य सोचें, हम अपने कल्याण की बात सोच सकें, तो यही हमारे लिए काफी है। आप मुझे क्षमा करेंगी। यहाँ मैं एक बात पर ध्यान दिये बिना नहीं रह सकता कि विवाहित जीवन पर आप लोगों की आस्था नहीं है, और तो क्या, नारीत्व का जो चरम उत्कर्ष है, उस सतीत्व और पतिव्रत धर्म को भी आप लोग उपेक्षा की दृष्टि से देखती हैं। इससे क्या भला हो सकता है?"

कुछ देर तक सुमित्रा उसके मुँह की ओर देखकर कौतुक-भरे स्वर से बोली, "अपूर्व बाबू, आप जरा अप्रसन्नता से कह रहे हैं, नहीं तो ठीक यह भाव तो मैंने प्रकट नहीं किया और आपने गलत ही समझा हो, यह भी नहीं। जिस समाज में केवल पुत्र-प्राप्ति ही भार्याग्रहण करने की विधि है, नारी होने के कारण उस विधि को तो मैं श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देख सकती। आप सतीत्व के चरम उत्कर्ष की बड़ाई कर रहे थे, मगर जिस देश में यही

विवाह की व्यवस्था है, उस देश में वह चीज बड़ी नहीं हो सकती, छोटी ही होती है। सतीत्व केवल देह में ही सीमित नहीं है अपूर्व बाबू, वह मन से भी तो होना चाहिए। मन-वचन-कर्म से प्रेम हुए बिना तो उस ऊँचे स्तर पर पहुँचना सम्भव नहीं। आप क्या वास्तव में यही समझते हैं कि मंत्र पढ़कर व्याह हो जाने से कोई भी भारतीय स्त्री किसी भी भारतीय पुरुष को प्रेम कर सकती है? यह क्या तालाब का पानी है जो किसी भी पात्र में भरकर मुँह बन्द कर देने से काम चल जाएगा?"

सहसा अपूर्व को कुछ उत्तर ढूँढे नहीं मिला। बोला, "मगर हमेशा से चलना तो आ रहा है?"

उसकी बात सुनकर सुमित्रा ने हँसते और सिर हिलाते हुए कहा, "यह तो चल ही रहा है। 'प्राणाधिक', 'प्राणनाथ' लिखने में उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं होती, कर्तव्यों की दृष्टि से श्रद्धा-भक्ति करने में भी उन्हें संकोच नहीं। वास्तव में घर-गृहस्थी के काम में इससे अधिक आवश्यकता भी नहीं होती। आपने तो कथा पढ़ी होगी कि कोई एक ऋषि-पुत्र दूध के बदले चावल का धोवन पीकर ही रहते थे।—जो चीज नहीं है, उसकी कल्पना करके गर्व तो नहीं किया जा सकता?"

अपूर्व को यह आलोचना बहुत ही व्यर्थ लगी। अबकी बार भी वह कुछ उत्तर न दे सकने के कारण कहने लगा, "आप क्या यह कहना चाहती हैं कि इससे अधिक किसी के भाग्य में कुछ लिखा नहीं?"

सुमित्रा ने कहा, "ना, ऐसा मैं कह ही नहीं सकती। कारण, संसार में 'कदाचित्', 'कभी' नाम के भी शब्द उपस्थित हैं।"

अपूर्व ने कहा, "अगर आपकी बात सच भी हो, तो मैं कहूँगा कि समाज के मंगल के लिए और उत्तम पुरुष के कल्याण के लिए यही अच्छा है।"

उसी प्रकार शान्त किन्तु दृढ़ स्वर से सुमित्रा ने कहा, "ना अपूर्व बाबू, समाज और वंश के नाम पर व्यक्तियों को अब तक बलि किया जाता रहा है, पर फल उसका अच्छा नहीं हुआ—आज वह नहीं चल सकता। प्रेम की सबसे बड़ी आवश्यकता पुरुष के लिए न होती, तो ऐसे अवहेलना करने की व्यवस्था उसमें टिक नहीं सकती थी। विवाहित जीवन के इस स्वार्थ की मात्रा में नारी को पृथक् होना ही पड़ेगा। उसे समझना ही होगा
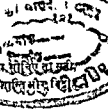
कि इसमें उसके लिए लज्जा की बात है, गौरव की नहीं।"

अपूर्व ने व्याकुल होकर कहा, "लेकिन आप जरा सोचिए तो सही आपकी इन सब शिक्षाओं से हमारे नियन्त्रित समाज में अशान्ति और विद्रोह उठ खड़ा होगा!"

सुमित्रा ने कहा, "होने दीजिए। अशान्ति और विद्रोह के मानी तो अकल्याण नहीं है, अपूर्व बाबू! जो रोगी है, कमजोर है, जिसके झुर्रियाँ पड़ रही हैं, वही तो अपने को उत्कंठित स्वाधीनता के साथ बचाता रहता है कि किसी प्रकार से उसे धक्का न लग जाय। रात-दिन, क्षण-क्षण इसी डर से वह सूखकर काँटा होता जाता है, जरा-सा हिलने-डोलने में ही उसकी पुतलियों में जान आ जाती है। इस समाज की ऐसी ही दशा हो तो हो जाने दीजिए—इस पार या उस पार। दो दिन आगे-पीछे होने में अधिक क्या हानि है?"

अपूर्व ने उत्तर नहीं दिया। सुमित्रा स्वयं भी कुछ देर मौन रही। फिर बोली, "ऋषि-पुत्र की उपमा देकर मैंने शायद आपके मन को दुखाया है। लेकिन करती क्या, इतना दुःख जो आपका शेष था, उससे मैं आपको बचा भी कैसे सकती थी?"

उसकी अन्तिम बात अपूर्व की समझ में न आई, लेकिन उसका विरक्ति का पात्र भर चुका था। कह बैठा, "जगन्नाथजी के रास्ते में खड़े होकर मिशनरी लोग यात्रियों को काफी सताते हैं, फिर भी उस टोंटे जगन्नाथ को छोड़कर कोई पूरे हाथों वाले ईसा को नहीं भजता। आश्चर्य है कि टोंट से ही उनका काम चल जाता है।"

सुमित्रा क्रोधित नहीं हुई। हँसकर बोली, "संसार में आश्चर्य है, इसी-लिए तो आदमी का जीना असम्भव नहीं हो जाता। अपूर्व बाबू! पेड़ के पत्ते का रंग सभी को हरा नहीं दिखाई देता, फिर भी लोग उसे हरा ही कह सकते हैं, यह क्या कम विस्मय है? सतीत्व का सच्चा मूल्य जानने से क्या..."

"सुमित्रा!" जो आदमी अब तक मौन हो लिख रहा था, वह उठकर खड़ा हो गया। सभी उसके साथ उठ खड़े हुए।

अपूर्व ने देखा, गिरीश महापात्र है।

भारती ने उसके कान में कहा, "ये ही हैं हमारे डॉक्टर। बाईं ह
आइये।" काठ की पुतली के समान अपूर्व खड़ा हो गया, परन्तु पल
कुद्ध मनोहर के अन्तिम शब्दों की याद आते ही उसका सारा सु
ठण्डा हो गया।

गिरीश ने उसके पास आकर कहा, "आप शायद मुझे भूले नहीं हैं।
मुझे ये सब लोग डॉक्टर कहते हैं।" वह हँस दिया।

अपूर्व हँस न सका। धीरे से बोला, "मेरे चाचाजी की नोटबुक में
एक भयानक-सा नाम लिखा हुआ है।"

गिरीश ने अचानक उसके दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर
कहा, "सव्यसाची न?" और फिर हँसकर कहने लगा, "मगर रात हो
है अपूर्व बाबू, चलिए आपको जरा आगे तक पहुँचा दूँ। मार्ग ठीक नहीं है
—पठान वर्कमैनों को शराब पीने पर कुछ होश-हवास नहीं र
चलिए।"—इतना कहकर डॉक्टर लगभग जबरदस्ती ही उसे बाहर ले ग

सुमित्रा को अपूर्व नमस्कार भी न कर सका। भारती से एक बात
न कर पाया—मगर सबसे बड़ी चीज जो उसके हृदय पर बोझ बनी
गई वह थी मोटा रजिस्टर जिसमें उसका नाम लिखा रह गया।

१०

अपूर्व ने थोड़ा चलकर सौजन्य दिखाते हुए कहा, "आपका बस
निर्बल शरीर है, अब अधिक चलने की आवश्यकता नहीं। सीधा रास्त
आ गया है, बड़ी सड़क पर आसानी से पहुँच जाऊँगा—आप रहने दीजिए।"

चलते-चलते जरा हँसकर डॉक्टर ने कहा, "आसानी से आते है
क्या सुगमता से जाया जा सकता है अपूर्व बाबू? शाम के वक्त जो रास्
सीधा था, अब उतनी रात बीते पठान और बेकार हब्शियों ने मिल
शायद उसे काफी टेढ़ा बना दिया हो। चलिए, अब खड़े मत होइए।"

अपूर्व ने इशारा समझते हुए भी पूछा, "क्या करते हैं ये लोग! मा
पीट भी करते हैं?"

सायी ने हँसते हुए ही कहा, "करते क्या नहीं! शराब का व्यय दूसरों के मत्थे लादने के इस काम को अभी तक वे छोड़ नहीं सके हैं। मान लीजिए, जैसे आपके पास सोने की घड़ी है। यदि वह दूसरे की जेब में जाने लगे तो आपको आपत्ति होनी ही। फिर उसके बाद की घटना तो बिल्कुल स्वाभाविक है।"

अपूर्व ने सिर हिलाकर कहा, "पर यह तो मेरे पिताजी की घड़ी है।"

डॉक्टर ने कहा, "यह तो वे समझेंगे नहीं, लेकिन आज बिना समझे काम नहीं चलेगा।"

"अर्थात् ?"

"अर्थात् आज इसके बदले उन्हें शराब पीने को न मिल सकेगी।"

क्षण-भर मौन रहकर अपूर्व शंकित स्वर में बोला, "बल्कि चलिए और किसी मार्ग से घूमकर निकल जाएँ।"

डॉक्टर उसके चेहरे की ओर देखकर खिलखिलाकर हँस दिये। बोले, "घूमकर ?···अब आधी रात के वक्त ? ना-ना, उसकी आवश्यकता नहीं, चलिए।"

उन्होंने अपने उसी दुबले-पतले हाथ से अपूर्व का दाहिना हाथ खींचकर ऐसा दबाव दिया कि अपूर्व के बहुत दिनों के जिमनास्टिक, क्रिकेट और हॉकी खेले हुए हाथ के भीतर की हड्डियाँ तक चरमरा उठीं।

अपूर्व अपना हाथ छुड़ाकर बोला, "चलिए, समझ गया।" तब उसने स्वयं भी जरा हँसने का प्रयत्न किया और कहा, "चाचाजी ने उस दिन आपके विषय में ही हँसी में कहा था, 'बेटाजी, उस महापुरुष के स्वागत के लिए क्या यों ही इतने आदमियों का प्रबन्ध किया जाता है? हम लोगों के गुप्त रजिस्टर में लिखा है कि वे कृपा करें तो पाँच-दस पुलिस वालों का जीवन सिर्फ तमाचे मारकर ही समाप्त कर सकते हैं।' चाचाजी के कहने के ढंग पर हम लोग उस दिन खूब हँसे थे, लेकिन अब मालूम होता है कि हँसना ठीक नहीं था, आप चाहें तो वह भी कर सकते हैं।"

डॉक्टर के चेहरे का भाव बदल गया। कहने लगे, "चाचाजी की वह अतिशयोक्ति थी। मगर 'हम लोग' कौन-कौन ?"

अपूर्व ने कहा, "वे और उनके दो-चार कर्मचारी।"

[illegible] के [illegible] कहकर [illegible] एक ओर [illegible]।

अपूर्व उसका अर्थ समझ गया, पर कुछ देर तक चुप रहे कोई बात ही नहीं सूझी। बेचारा भला आदमी था, क्योंकि किसी भी हालत में ही लोग ऐसे व्यक्ति से प्यार नहीं कोई भी [illegible] नहीं था।

निर्जन सुनसान गली को पार करके बड़ी सड़क के करीब पहुँचकर अपूर्व सहसा बोल उठा, "अब शायद मैं निर्भय जा सकूँगा, धन्यवाद।"

डॉक्टर ने मंद मुस्कान भरी। सामने की चौड़ी सड़क पर दूर तक निगाह फैलाकर धीरे से कहा, "आ सकेंगे शायद!"

अपूर्व नमस्कार करके विदा होते समय अपने भीतर के कुतूहल को किसी भी प्रकार दबा न सका, कह बैठा, "अच्छा, मान-"

"ना-ना, गलत नहीं, गलत नहीं, डॉक्टर बाबू!"

जरा कुछ लज्जित-सा होकर अपूर्व बोला, "अच्छा डॉक्टर बाबू, इन लोगों का सौभाग्य है कि रास्ते में कोई था नहीं, मगर मान लीजिए कि यदि वे संख्या में अधिक होते तो क्या कोई भय नहीं था?"

डॉक्टर ने कहा, "संख्या में वे दो-चार-दस से कभी अधिक नहीं होते।"

अपूर्व ने कहा, "दो-चार-दस जने! यानी दो आदमी होने भी भय नहीं था और दस होने तो भी नहीं?"

डॉक्टर ने मुस्कराते हुए कहा, "ना।"

बड़ी सड़क के चौराहे पर आकर अपूर्व ने पूछा, "अच्छा, वास्तव में क्या आपका पिस्तौल का निशाना कभी गलत होता ही नहीं?"

उसी तरह मुस्कराते और गर्दन हिलाते हुए डॉक्टर ने कहा, "हाँ! मगर बताइये तो? मेरे साथ तो पिस्तौल है नहीं।"

अपूर्व ने कहा, "बिना लिए ही निकल पड़े हैं—आश्चर्य है! अँधेरी गहरी रात सांय-सांय कर रही है।" वह सुनसान लम्बे रास्ते की ओर देखकर बोला, "मार्ग में न तो कोई आदमी है, न पुलिस है, और बत्तियाँ भी जो हैं सो नहीं के बराबर। अच्छा डॉक्टर बाबू, मेरा मकान यहाँ से कोस-भर के करीब होगा?"

डॉक्टर ने कहा, "लगभग इतना ही।"

[illegible] ने कहा, "अच्छा नमस्कार, आपको बड़ा कष्ट दिया।" फिर

जाने को तैयार होकर कहा, "अच्छा, ऐसा भी तो हो सकता है कि आज वे लोग किसी दूसरे मार्ग पर खड़े हों?"

डॉक्टर ने समर्थन करते हुए कहा, "कोई आश्चर्य नहीं।"

अपूर्व ने कहा, "आश्चर्य क्या है! होंगे ही। अच्छा, नमस्कार। मगर एक मजे की बात देखी। जहाँ असली आवश्यकता है, वहाँ पुलिस की छाया तक नहीं दिखाई देती। यही तो है उसका कर्तव्य-ज्ञान! और इसी के लिए हम टैक्स देते-देते मर जाते हैं। सब बन्द कर देना चाहिए। क्यों, है न ठीक?"

"इसमें क्या सन्देह है!" कहकर डॉक्टर खिलखिलाकर हँस दिये। स्त्रियों की-सी कोमल मीठी हँसी थी। बोले, "चलिए, बात करते-करते और भी थोड़ा-सा आगे पहुँचा दूँ।"

अपूर्व शरमा गया। क्षण-भर जमीन की तरफ देखकर धीरे से बोला, "मैं बड़ा डरपोक आदमी हूँ डॉक्टर बाबू! मुझमें जरा भी साहस नहीं। और कोई होता तो बड़ी आसानी से चला जाता। इतनी रात में आपको कष्ट न देता।"

उसकी इस विनम्र और दंभहीन सच्ची बात पर डॉक्टर अपनी हँसी पर स्वयं लज्जित-से हो गये। स्नेह से उसके कन्धे पर हाथ रखकर बोले, "साथ चलने के लिए मैं आया हूँ, अपूर्व बाबू! नहीं तो प्रेसीडेण्ट यह चीज मेरे हाथ में न देती।" और तब उन्होंने बाएँ हाथ की काली-सी मोटी चीज दिखाई।

अपूर्व ने चौंककर कहा, "सुमित्रा ने? तो क्या वे आप पर भी आज्ञा चला सकती हैं?"

डॉक्टर ने हँसकर कहा, "क्यों नहीं!"

अपूर्व ने कहा, "मगर वे और किसी आदमी को भी तो मेरे साथ भेज सकती थीं?"

डॉक्टर ने कहा, "इसका मतलब होता, सबको एक साथ भेजना। उससे यही व्यवस्था सही थी अपूर्व बाबू!"

चलते-चलते बातें होती रहीं। डॉक्टर ने कहा, "सुमित्रा हमारे दल की संचालिका हैं। उन्हें सब तरफ निगाह रखकर चलना पड़ता है। जहाँ

छुरी-छुरा, खून-खराबा होने की सम्भावना है वहाँ तो हर किसी को भेजा नहीं जा सकता। मैं नहीं होता तो आज आपको वहीं रहना पड़ता—वे किसी प्रकार आने ही नहीं देती।"

यह सुनसान अँधेरे रास्ते में छुरी-छुरे के नाम से अपूर्व के रोंगटे खड़े हो गये। धीरे से बोला, "मगर इसी मार्ग में आपको जो अकेले जाना पड़ेगा?"

डॉक्टर ने कहा, "सही है।"

कोई प्रश्न नहीं किया अपूर्व ने। उसके निरन्तर वार्तालाप से वहाँ किसी अवांछित व्यक्ति को न खींच जाये, इस बात का ध्यान उसके मन से दया नहीं था। वह अपनी आँख, कान और मन को एक साथ ही रास्ते के दाहिने, बायें और सामने नियुक्त करके दबे पाँव तेजी के साथ चलने लगा।

लगभग पन्द्रह मिनट तक इसी प्रकार चलकर, शहर का पहला पुलिस स्टेशन पार करके, बस्ती में प्रवेश करने के बाद अपूर्व फिर बात करने लगा। बोला, "डॉक्टर बाबू, मेरा घर तो अब अधिक दूर नहीं है, चलिए न, रात आज रात को वहीं रह जाइए तो क्या हानि है?"

उसके मन की बात ताड़ गये डॉक्टर हँसते हुए बोले, "हानि बहुत-सी बातों में नहीं होती अपूर्व बाबू, मगर बिना आवश्यकता भी कोई काम करने की हमारे यहाँ मनाही है। सिर्फ जरूरत न होने के कारण ही मुझे लौट जाना होगा।"

"आप लोग क्या बिना आवश्यकता के दुनिया में कोई काम ही नहीं करते?"

"ना, मनाही है—तो मैं अब चलूं?"

अन्धकारमय मार्ग की ओर देखकर और इस आदमी के अकेले लौट जाने की कल्पना करके अपूर्व को रोमांच हो आया। वह बोला, "डॉक्टर बाबू, आदमी का मान रखने की भी आपके यहाँ मनाही है?"

डॉक्टर ने आश्चर्य के साथ पूछा, "अचानक ऐसी बात क्यों?"

अपूर्व क्षुब्ध अभिमान के स्वर में बोला, "इसके सिवा और क्या हो सकता है, पर मुझे सही-सलामत पहुँचाकर उसी विपत्ति के भीतर से आप यदि अकेले लौट जायें तो फिर मैं क्या मुँह दिखाने योग्य रहूँगा?"

उसी समय प्रेम के मारे डॉक्टर ने उसके दोनों हाथ थाम लिए और

...हा, "अच्छा तो चलिए, आज रात को आपके ही यहाँ अतिथि होकर रहूँगा। मगर ऐसा बखेड़ा क्या आपको अपने ऊपर लेना चाहिए बाबू!"

अपूर्व बात को ठीक तौर से समझ न सका। परन्तु कुछ कदम आगे बढ़ते ही जब उसके हाथ में अपना बिस्तर पकड़े चला, तो उसने घूमकर देखा कि डॉक्टर लंगड़ा रहे हैं। बोला, "आपके जूते से चला नहीं मालूम होता है, आप लंगड़ा क्यों रहे हैं?"

डॉक्टर ने हँसते हुए उत्तर दिया, "कुछ नहीं। सर्दी आते ही मेरे पैर ऐसे ही लंगड़ाते हैं। फिरोज महाराज का बदला याद है!"

अपूर्व चिढ़कर बोला, "तो अब आपके जाने की आवश्यकता नहीं डॉक्टर बाबू!"

डॉक्टर ने मुस्कराकर कहा, "मगर आपका माल?"

अपूर्व ने कहा, "आपके सामने मेरा माल कैसा? पाँव की धूल के बराबर भी नहीं। आपके सिवा दुनिया में क्या और किसी को इतना साहस हो सकता है?"

इस डॉक्टर नामधारी व्यक्ति के जीवन-इतिहास के साथ पूर्व परिचय कुछ भी न था। होता तो वह इस अत्यन्त तुच्छ बात पर इतना उच्छ्वास प्रकट करने के मारे शर्म के गड़ जाता। समुद्र के आगे गोष्पद के समान इस मार्ग को अकेले पार करना इस आदमी के लिए क्या है! पुलिस के आदमी जिसे युगान्तरों के रूप में जानते हैं, दस-बारह गुण्डे मिलकर भला उसका मार्ग कैसे रोक सकते हैं?

अन्त में डॉक्टर ने मुँह फेरकर हँसी को छिपाते हुए गम्भीर मनुष्य के समान कहा, "इससे तो यह अच्छा है कि चलिए हम दोनों जने फिर एक-साथ लौट चलें। मुझ अकेले पर तो शायद कोई आक्रमण करने का साहस भी करे, पर आपके रहने से उसकी सम्भावना नहीं रहेगी।"

अपूर्व ने अनिश्चित स्वर में कहा, "फिर लौटूँ?"

डॉक्टर ने कहा, "हानि क्या है? तब मेरे अकेले जाने के भय की भी आशंका न रहेगी।"

"रहूँगा कहाँ?"

"मेरे पास।"

और पिता डिप्टी मजिस्ट्रेट न होते तो कहाँ का पानी कहाँ जाकर भरता,
बात का इससे बड़ेपन में पद-पद पर अनुभव किया है। जरा सोचकर
ने कहा, "राज न सही, राज-कर्मचारियों के विरुद्ध कोई-न-कोई षड्यंत्र
। रहा है, यह तो झूठ नहीं है डॉक्टर बाबू !"

डॉक्टर बहुत देर तक मौन रहे। उसके बाद धीरे से कहा, "राज-
चारी राजा के नौकर हैं, वेतन पाते हैं, आज्ञा का पालन करते हैं। एक
ता है, दूसरा आता है। यह सहज और मोटी बात है। परन्तु आदमी जब
सहज को, जटिल और मोटी को निरर्थक बारीक करके देखना चाहता
तब उसमें बड़ी भूल होती है। इसी से वह उन पर आघात करने को ही
ज-शक्ति की जड़ में आघात करना समझकर आत्मवंचना करता है।
नी बड़ी घातक व्यर्थता और नहीं हो सकती।"

जरा चुप रहकर अपूर्व बोला, "मगर ऐसे व्यर्थ काम को करने वाले
या भारत में नहीं हैं ?"

डॉक्टर ने शान्त भाव से कहा, "हो भी सकते हैं।"

सहसा अपूर्व कह उठा, "अच्छा डॉक्टर बाबू, ये लोग सब रहते कहाँ
हैं, और करते क्या हैं ?"

उसकी उत्सुकता और आकुलता देखकर डॉक्टर बाबू सिर्फ जरा हँस
दिये।

अपूर्व ने कहा, "आप तो हँसने लगे !"

डॉक्टर ने उसी तरह हँसकर कहा, "आपके वे चाचाजी होते तो शायद
समझ जाते। जब आपकी धारणा है कि मैं एक राजद्रोहियों का पण्डा हूँ,
तब मुझसे इसके उत्तर की आशा करनी चाहिए अपूर्व बाबू !"

अपूर्व अपनी मूर्खता का स्पष्ट संकेत पाकर शर्मिन्दा हो गया, मन-ही-
मन जरा अप्रसन्न भी हुआ, बोला, "आशा करना बिल्कुल ही अनुचित होता
अगर आज मैं आपके दल में न मिला लिया गया होता। इस बात को शायद
आप अस्वीकार न करेंगे कि सदस्य को यह सब जानने का अधिकार है। यह
तो लड़कों का खेल नहीं है, जबर्दस्त उत्तरदायित्व भी तो है !"

"है ही।" कहकर डॉक्टर बाबू हँस दिये। यह मीठी हँसी और सहज बात
अपूर्व के कानों में ठीक व्यंग्य के समान लगी। विद्रोही दल के पक्के रजिस्टर

जरा लज्जित होकर डॉक्टर बाबू ने कहा, "[illegible] किसे मेम्बर बनायें और किसे नहीं। मैं तो अचानक आ गया हूँ। बल्कि इस सभा के बारे में विशेष कुछ जानकारी नहीं रखता।"

अपूर्व ने समझा, यह भी व्यंग्य है। मन-ही-मन कहने लगा, "क्यों छल कर रहे हैं डॉक्टर बाबू! चाहे सुमित्रा को प्रेसीडेंट बनाइये, चाहे और किसी को, दल आपका ही है और आप ही इसके सर्वेसर्वा हैं, इसमें मुझे रंचमात्र भी सन्देह नहीं। पुलिस की आँखों में धूल झोंक सकते हैं, पर मेरी आँखों को आप धोखा नहीं दे सकते, यह आप निश्चय समझ लीजिए।"

इस बार उस दुबले-पतले रहस्यप्रिय आदमी ने बनावटी आश्चर्य के साथ दोनों आँखें फाड़कर अपूर्व के चेहरे की तरफ देखकर कहा, "मेरे दल से आपका मतलब है एनार्किस्ट दल! आप झूठमूठ ही शंकित हो उठे हैं अपूर्व बाबू! आपने शुरू से आखिर तक गलती की है। उनके लिए जीना-मरना खेल समान है। वे भला आप जैसे डरपोक आदमी को शामिल करेंगे! वे क्या

पागल है?"

अपूर्व लज्जा से गड़ गया। उसकी छाती पर से एक भारी पत्थर-सा भी उतर गया।

डॉक्टर ने कहा, "सुमित्रा ने ही 'पथ का अधिकार' यानी दावेदारी नाम देकर इस छोटी-सी समिति की प्रतिष्ठा की है। आदमी भूल गया है कि जीवन-पथ पर स्वेच्छानुसार निर्विघ्न चलने का मनुष्य का दावा कितना बड़ा और कितना पवित्र है। आप लोग, अर्थात् जो इस समिति के सदस्य हैं, वे अपना सम्पूर्ण जीवन देकर आदमी को उस बात की याद दिलाना चाहते हैं। सुमित्रा ने मुझसे अनुरोध किया कि मैं जितने दिन यहाँ हूँ, उसकी समिति का संगठन कर दूँ। मैं मान गया—बस, इसके सिवा आप लोगों के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। आप लोग ठहरे समाज-सुधारक। मगर मुझे समाज-सुधार करते फिरने का न तो समय है और न इतना धैर्य ही। हो सकता है कि कुछ दिन रहूँ और नहीं तो कल ही चल दूँ, सम्भव है, फिर जीवन-भर किसी से भेंट हो न हो। जिन्दा हूँ या नहीं, यह समाचार तो शायद आप लोगों के कानों तक न पहुँचे।"

उसकी बातें शान्त और धीर थीं। जल्दबाजी की तो उनमें गन्ध तक न थी। यह व्यक्ति चाहे जो भी हो, परन्तु सव्यसाची के जो लक्षण अपूर्व ने अपने चाचा से सुन रखे थे, चट से उसे उनकी याद आ गई और तब उसकी छाती में शूल-सा चुभ गया। उसे यह भी ध्यान आ गया कि वह पाषाण है, उसके लिए यह दुःख की अनुभूति क्यों?

क्षण-भर बाद उसने पूछा, "डॉक्टर बाबू, सुमित्रा कौन हैं? आपका उनसे परिचय कैसे हुआ?"

डॉक्टर केवल जरा हँस दिये। उत्तर न पाकर अपूर्व स्वयं समझ गया कि ऐसा पूछना ठीक नहीं हुआ। इस थोड़े-से समय में ही वह इस रहस्यमय विचित्र समाज के आचरण की विशिष्टता पर ध्यान करने लगा था, इससे वह भारती के सम्बन्ध में भी अपने कुतूहल को दबाकर चुप ही रहा।

कई पल इसी प्रकार मौन बीते। डॉक्टर ने ही पहले कहा, "आपके भाग्य से ही शायद आज रास्ता बिल्कुल साफ था। अक्सर ऐसा देखने में नहीं आता। मगर आप सोच क्या रहे हैं, बताइये तो?"

अपूर्व ने कहा, "सोच तो बहुत कुछ रहा हूँ, पर छोड़िए उस सबको। अच्छा, आपने कहा न, मनुष्य का जीवन-पथ पर निर्विघ्न चलने का अधिकार है। जैसे हम लोग आज निर्विघ्न चल रहे हैं—ठीक इसी प्रकार न?"

डॉक्टर ने हँसकर कहा, "इसी प्रकार का ही कुछ होगा।"

अपूर्व ने कहा, "लेकिन वह जो महिला पति को छोड़कर इस समिति की सदस्या होने आई है, उसे तो मैं ठीक से समझ नहीं सका।"

डॉक्टर ने कहा, "मैं ठीक समझ गया हूँ, ऐसा नहीं कह सकता। इन सब बातों को सुमित्रा ही अच्छी तरह समझती है।"

अपूर्व ने पूछा, "उसके शायद पति नहीं हैं।"

डॉक्टर चुप रहे।

अपूर्व ने लज्जा और क्षोभ के साथ फिर सोचा कि उसके अकारण औत्सुक्य का वे उत्तर नहीं देंगे। इस बात की जाँच के लिए ज्योंही उसने इस साथी के चेहरे की ओर देखा त्योंही वह एकबारगी आश्चर्यचकित हो गया। उसे लगा कि इस आश्चर्यजनक आदमी के छद्म जीवन का एक छुपा हुआ कोना दिखाई दे गया। मानो उसका मन किसी सुदूर प्रान्तर में चला गया है, आसपास कहीं भी नहीं है। पास के एक लैम्प-पोस्ट का क्षीण प्रकाश उसके चेहरे पर पड़ रहा था, बगल से जाते समय अपूर्व ने स्पष्ट देखा कि इस सदा-सावधान व्यक्ति की आँखों पर एक धुँधला जाल-सा घूम रहा है—क्षणभर के लिए मानो वह मन-ही-मन कोई चीज ढूँढ़ रहा है।

अपूर्व ने फिर कोई प्रश्न नहीं किया, मौन हो चलता रहा।

दो मिनट बाद ही अकस्मात् अकारण ही वे हँस पड़े और बोले, "देखिए अपूर्व बाबू, आपसे मैं सच ही कह रहा हूँ, स्त्रियों के इन सब प्रणय-घटित मान-अभिमानों की बातें मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आतीं। समझने की कोशिश भी की जाये तो निरर्थक। बहुत अधिक समय नष्ट हो जाता है, इतना समय कहाँ?"

अपूर्व के प्रश्न का यह उत्तर नहीं था। डॉक्टर फिर कहने लगे, "बड़ी कठिनाई है। इनके बिना काम भी नहीं चलता, और शामिल करने से बखेड़ा उठ खड़ा होता है।"

यह कथन भी असंगत था। अपूर्व मौन रहा।

"क्या हुआ ? आप तो बोल ही नहीं रहे हैं ?"

अपूर्व ने कहा, "क्या कहूँ, बताइए ?"

डॉक्टर ने कहा, "जो मन में आवे। देखिए अपूर्व बाबू, यह भारती बड़ी अच्छी लड़की है। जैसी बुद्धिमती, वैसी कर्मठ और दृढ़।"

व्यर्थ बात। उत्तर में उसने यह प्रश्न जानबूझकर ही नहीं किया कि आपने उसे कितने रोज से जाना है और कैसे जाना ? सिर्फ बोला, 'हाँ।'

डॉक्टर ने शायद अपने अन्तिम शब्दों के सिलसिले में ही कहा, "आपके बारे में वह कह रही थी कि आप बड़े कट्टर हिन्दू हैं, और मैंने इतने बड़े कट्टर हिन्दू ब्राह्मण की जात मार दी है।"

अपूर्व ने कहा, "हो सकता है।" इस अत्यन्त अल्पभाषी आदमी के साथ बातचीत करने की उसकी तबीयत ही नहीं हुई।

बड़ी सड़क लगभग समाप्त हो गयी थी। गली के मोड़ पर आमने-सामने की दो बत्तियाँ सामने ही दिखाई दे रही थीं, और चलने से घर आ जाएगा। इतने में डॉक्टर अपने सोते हुए मन को अकस्मात् झकझोरकर एकदम सतर्क होकर बोला, "अपूर्व बाबू !"

अपूर्व उनके स्वर की तीक्ष्णता से सचेत होकर बोला, "कहिए ?"

डॉक्टर ने कहा, "जब तक इस देश में हूँ तब तक तो आवश्यकता नहीं, परन्तु मेरे चले जाने पर आप निःसंकोच भाव से सुमित्रा की सहायता करते रहिएगा। ऐसी स्त्री आप संसार घूम आने पर भी कहीं न पाएँगे। इतनी यह समिति कहीं अपमान और लापरवाही से नष्ट न हो जाये। एक इतने बड़े 'आइडिया' को क्या केवल ये इतनी सी स्त्रियाँ पूर्ण कर सकती हैं ? इन्हें आपकी एकनिष्ठ सेवा की आवश्यकता है।"

वास्तव में वह इतनी बड़ी महिला है, कि इस बात पर अपूर्व को विश्वास नहीं हुआ। बोला, "फिर इतने बड़े 'आइडिया' को छोड़कर आप स्वयं क्यों चले जाना चाहते हैं ?"

डॉक्टर ने मुस्कराते हुए कहा, "अपूर्व बाबू ! जहाँ छोड़ जाना मंगलजनक है वहाँ पकड़े रहना अकल्याणकर ही होता है। मेरी सहायता की आप लोगों को आवश्यकता नहीं—आप लोग स्वयं इसे बना डालिए। सम्भव है, इसी के द्वारा देश की सबसे बड़ी सेवा हो जाये।"

अपूर्व ने कहा, "नवतारा पर तो मैं विश्वास नहीं कर सकता डॉक्टर बाबू !"

डॉक्टर ने कहा, "पर सुमित्रा पर विश्वास कीजिएगा। अपूर्व बाबू, विश्वास करने की इतनी बड़ी ऊँची वस्तु आपको और कहीं न मिलेगी।" थोड़ी देर ठहरकर फिर कहा, "आपने तो मैं पहले ही कह चुका हूँ कि स्त्रियों के विषय में मेरा ज्ञान बहुत कम है, मगर सुमित्रा जब कहती है कि जीवन-पथ में चलने का मनुष्य को अधिकार है, तो उसके दावे को किसी भी युक्ति से अमान्य नहीं किया जा सकता। केवल मनोहर की ही बात नहीं—बहुत-से आदमियों के निर्दिष्ट किये हुए मार्ग पर चलने से नवतारा का जीवन निर्विघ्न होता, इस बात को मैं समझता हूँ और यह भी मानता हूँ कि जो मार्ग उसने स्वयं अपने लिए चुना है वह निरापद नहीं है। स्वयं विपत्तियों में डूबा हुआ मैं उसका विचार कैसे कर सकता हूँ। सुमित्रा का कहना है, इस जीवन का निर्विघ्न गुजरना ही मनुष्य का चरम उद्धार है। मनुष्य का विचार ही उसके कार्य को नियन्त्रित करता है, परन्तु दूसरों के विचार द्वारा निर्धारित आत्म-हत्या मेरी समझ में हमारे लिए और कुछ हो ही नहीं सकती। अपूर्व बाबू! इस बात का कोई उत्तर मुझे ढूँढ़े नहीं मिलता।"

अपूर्व ने कहा, "मगर सभी लोग यदि अपने विचार के अनुसार..."

डॉक्टर बीच में ही बोल उठे, "अर्थात् सभी अगर अपने-अपने विचार के अनुसार काम करना चाहें—यही न ?" और जरा मुस्करा दिये, फिर बोले, "तब फिर कैसी दुर्घटनाएँ होंगी, आप सुमित्रा से जरा पूछ देखिएगा।"

अपूर्व अपने प्रश्न को गलत समझकर लज्जा के साथ उसका संशोधन करना चाहता था, पर उसके लिए समय ही नहीं मिला।

डॉक्टर बीच ही में बोल उठे, "मगर अब तर्क नहीं हो सकता, अपूर्व बाबू। हम लोग आ पहुँचे। खैर, और किसी दिन इस आलोचना का अन्त

जाएगा।"

...ने सामने मुँह उठाकर देखा। वही लाल रंग का स्कूल वाला और भारती के दुमंजिले कमरे से बत्ती की रोशनी आ रही है।

...क्टर ने पुकारा "भारती!"

भारती ने खिड़की में से मुंह निकालकर आकुल स्वर में कहा, "विजय के साथ आपकी भेंट हुई थी डॉक्टर बाबू ? आपको बुलाने गया है वह।"

डॉक्टर ने कहा, "तुम्हारी प्रेसीडेण्ट की आज्ञा से न ? मगर कोई भी आज्ञा इतनी रात में किसी को उस रास्ते भेज नहीं सकती।—लेकिन किसे वापस ले आया हूँ, देखो।"

भारती ने ध्यान से देखा और अँधेरे में भी पहचान लिया कि अपूर्व है। बोली, "अच्छा नहीं किया। आप जल्दी जाइए, नरहरि ने शराब पीकर कुदाली से अपनी स्त्री का सिर फोड़ डाला है। बचेगी या नहीं, सन्देह है। सुमित्रा बहन वहीं गई है।"

डॉक्टर ने कहा, "अच्छा ही किया है। मरती है तो मरने दो—हाँ, मेरे अतिथि का क्या होगा ?"

भारती ने कहा, "स्त्रियों पर तो आपकी असीम कृपा है। अगर यह उसकी स्त्री न होती, स्वयं नरहरि होता तो अब तक आप उलटे पाँव भाग गये होते!"

डॉक्टर ने कहा, "तुम्हारे कहने से उलटे पाँव ही भागा-भागा जाऊँगा।—पर अतिथि ?"

"मैं आ रही हूँ।" भारती बत्ती हाथ में लिये हुए तुरन्त ही नीचे आई और दरवाजा खोलकर बोली, "सचमुच अब देर न कीजिये डॉक्टर बाबू, जाइए—मगर, ईसाई के आतिथ्य को क्या ये स्वीकार करेंगे ?"

मन-ही-मन जरा झुंझलाकर डॉक्टर बोले, "इन्हें छोड़कर मैं जा भी कैसे सकता हूँ भारती ? अस्पताल भेजने का प्रबन्ध क्यों नहीं किया ?"

भारती ने अप्रसन्न होकर कहा, "जो करना हो आप कीजिये डॉक्टर बाबू, आपके पैरों पड़ती हूँ, देरी न कीजिए। मैं इन्हें सम्हाल लूँगी, आप कृपा करके जल्दी जाइये।"

अपूर्व मौन था। उसके लिए एक आदमी की जान जाय, ऐसा तो कतई नहीं होना चाहिए, यह सोचकर वह कुछ कहना ही चाहता था कि उसके पहले ही डॉक्टर साहब तेजी से चल दिये और अन्धकार में खो गये।

११

थोड़ी देर बाद अपूर्व भारती के ऊपर के कमरे में पहुँचा और अच्छी सी एक आरामकुर्सी छाँटकर उस पर हाथ-पाँव पसारकर लेट गया। फिर आँखें मीचकर एक दीर्घ निश्वास छोड़कर बोला, "आह !"

कई क्षणों के बाद भारती ऊपर आकर जब हाथ की बत्ती तिपाई पर रखने लगी तो अपूर्व को मालूम हो गया। सहसा ऐसी शर्म मालूम हुई कि क्षण-भर में सो जाने जैसे अत्यन्त असम्भव बहाने के सिवा और कुछ उसे सूझा ही नहीं। हालाँकि यह कोई नई बात नहीं थी—इसके पहले भी इन दोनों ने एक कमरे में एक रात बिताई है और तब शर्म की हवा भी उसके मन को नहीं लगी थी। मन-ही-मन इसका कारण ढूंढते-ढूंढते उसे तिवारी की याद आ गई। वह तब मरणासन्न था, उसे होश नहीं था—यद्यपि वह नहीं रहने के ही बराबर था, फिर भी उस उपलक्ष्य को कारण मानकर उसे तसल्ली हो गई।

भारती ने कमरे में आकर उसकी ओर देखा और फिर वह अपने हाथ का अधूरा काम पूरा करने में लग गई, उसकी कपट-निद्रा भंग करने की उसने कोशिश ही नहीं की। परन्तु इस पुराने मकान के पुराने दरवाजे-जंगले बन्द करने में जो खटखट-पटपट हुई, वह सचमुच की नींद छुड़ाने के लिए भी काफी थी। लिहाजा अपूर्व उठकर बैठ गया। जमाई लेता हुआ बोला, "उफ्, इतनी रात बीते फिर वापस आना पड़ा !"

भारती जंगला बन्द करते-करते बोली, "जाते समय कहते क्यों नहीं गये ? सरकार महाशय से आपका खाना मँगवाकर रख देती।"

अपूर्व ऐसा सुनकर एकाएक तेज स्वर में बोला, "क्या मतलब ? वापस आने की बात क्या मुझे मालूम थी ?"

लोहे की चटकनी दबाकर बन्द करती हुई भारती स्वाभाविक स्वर में बोली, "मेरी ही भूल हुई। भोजन की बात उसी समय उनसे कहलवा देनी चाहिए थी। रात को झंझट न करना पड़ता। अब तक आप दोनों कहाँ बैठे रहे ?"

अपूर्व ने कहा, "उन्हीं से पूछियेगा। यदि दो-तीन कोस चलने का नाम बैठे रहना है, तो मुझे नहीं मालूम।"

खिड़की बन्द करने का काम अभी तक समाप्त नहीं हुआ। वह छींट का परदा खींच रही थी। उसने लगी हुई ही विस्मय प्रकट करके जरा हँसकर बोली,"संध्या-पूजा करने की बला अभी तक लगी हुई है या जाती रही? हो, तो धोती निकाले देती हूँ, कपड़े बदल लीजिए।" इतना कहकर वह आँचर समेत चाबियों का गुच्छा हाथ में लेकर अलमारी खोलती हुई बोली, "तिवारी बेचारा मारे चिन्ता के मर रहा होगा। आज तो मालूम होता है, ऑफिस से लौट के घर जाने का भी समय नहीं मिला?"

अपूर्व क्रोध को दबाकर बोला, "यह मैं जानता हूँ कि आपको बहुत-सी ऐसी बातें मालूम हो जाती हैं जो मुझे नहीं मालूम हो पातीं, मगर धोती निकालने की कोई आवश्यकता नहीं। सन्ध्या-पूजा की बला मेरी दूर नहीं हुई है और इस जन्म में दूर होगी भी नहीं, पर आपकी दी हुई धोती से मुझे कोई सहूलियत नहीं होगी। रहने दीजिए, कष्ट न कीजिए।"

भारती ने कहा, "देखिए तो सही, क्या दे रही हूँ"

अपूर्व बीच में ही बोल उठा, "मुझे मालूम है, टसर की या रेशमी देंगी। मगर मुझे आवश्यकता नहीं है—आप मत निकालिए।"

"संध्या-पूजा न कीजिएगा?"

"ना।"

"सोयेंगे क्या पहनकर? क्या ऑफिस के कोट-पतलून पहने-पहने ही सोयेंगे?"

"हाँ।"

"भोजन नहीं करेंगे?"

"ना।"

"सच?"

अपूर्व के स्वर में बहुत देर से स्वाभाविकता नहीं थी। अब वो वह सचमुच अप्रसन्न होकर बोला, "आप क्या मजाक कर रही हैं?"

भारती ने मुँह उठाकर उसके चेहरे की तरफ देखा। फिर कहा, "मजाक तो आप ही कर रहे हैं। आपमें शक्ति है भूखे रहने की।"

भारती ने तुरन्त आलमारी में से एक सुन्दर रेशम की साड़ी निकाल दी और कहा, "बिल्कुल पवित्र है। मैंने भी कभी नहीं पहनी। इस कोठरी में जाकर कपड़े उतारकर इसे पहन आइये। नीचे नल है, मैं बत्ती दिखाती हूँ, आप हाथ मुँह धोकर सन्ध्या-वन्दन आदि कर लीजिए। [illegible] इस कमरे में भी कहीं कुछ है—कोई अपवित्र चीज न होगी।"

सहसा उसके मन का भाव और बातचीत का ढंग ऐसा बदल गया कि अपूर्व चकित। एकदम मधुर। उसे यह भी याद आ गया कि उस दिन सवेरे भी ठीक इसी प्रकार की बात करके वह उसके घर से चली आई थी।

अपूर्व ने हाथ बढ़ाकर धीरे से कहा, "दीजिए न धोती, मैं स्नान ही [illegible] नहाकर आ रहा हूँ। लेकिन मैं किसी ऐरे-गैरे के हाथ की रसोई नहीं खा सकूँगा।"

भारती ने गंभीर होकर कहा, "सरकार महाशय बहुत भले हैं। ब्राह्मण आदमी हैं। होटल खोल रखा है, पर अनाचारी नहीं हैं। स्वयं रसोई बनाते हैं। सभी कोई उनके हाथ का खाते हैं। कोई आपत्ति नहीं करता। हमारे डॉक्टर बाबू के लिए भी उन्हीं के यहाँ से खाना आता है।"

फिर भी अपूर्व ने कठोर स्वर में कहा, "चाहे जैसी रसोई खाने में मुझे तो घृणा मालूम होती है।"

भारती हँसकर बोली, "चाहे जैसी रसोई क्या मैं भी आपको खिला सकती हूँ, मैं स्वयं यहाँ रहकर उसमें सब ठीक से लगवा लाऊँगी, तब तो आपको आपत्ति नहीं होगी?" वह फिर जरा हँस दी।

अपूर्व ने फिर कोई विरोध नहीं किया। बत्ती और धोती लेकर नीचे चला गया। परन्तु उसका चेहरा देखकर भारती को लगा कि वह होटल का भोजन करने में अत्यन्त संकोच का अनुभव कर रहा है।

अपूर्व जब रेशमी साड़ी पहनकर नीचे एक लकड़ी की बेंच पर बैठा था, तब भारती अकेली दरवाजा खोलकर अँधेरे में बाहर निकल गई। कहती गई, "सरकार महाशय को लेकर मैं जल्दी ही आ रही हूँ, तब तक आप नीचे ही रहियेगा।" वास्तव में उसे लौटने में देर नहीं लगी। अभी अपूर्व की संध्या-पूजा समाप्त हुई थी कि भारती ने बत्ती हाथ में लिए अत्यन्त सावधानी के साथ प्रवेश किया। साथ में सरकार महाशय थे। उनके हाथ

में पीतल के ढक्कन से ढँकी हुई थाली थी, और उनके पीछे-पीछे एक आदमी पानी का गिलास और आसन लिए आ रहा था।

उसने भारती की आज्ञानुसार कमरे के एक कोने में पानी छिड़ककर पोंछा करके आसन बिछा दिया। सरकार महाशय ने वहाँ थाली रख दी।

उन दोनों के चले जाने पर भारती ने किवाड़ बन्द कर लिए और गले में आँचल डालकर हाथ जोड़कर सविनय निवेदन किया, "यह म्लेच्छ का अन्न नहीं है, खर्च डॉक्टर बाबू का है। आप बिना संकोच के आतिथ्य को ग्रहण कीजिए।"

उसके इस कौतुकपूर्ण परिहास को अपूर्व प्रसन्नचित्त से ग्रहण न कर सका। यह माना कि वह जाति-पाँति मानता है, पर किसी का छुआ नहीं खाता, होटल की बनी रसोई खाने में उसकी रुचि नहीं होती—परन्तु इसके माने यह नहीं कि उसमें इतनी अधिक दकियानूसी है कि उसके पैसे म्लेच्छ के दिये या अध्यापक ब्राह्मण के। बड़े भाइयों ने उसकी शुद्धाचारिणी माँ को बहुत दुःख दिया है। अच्छी हो चाहे बुरी, माँ की आज्ञा और उसके हृदय की इच्छा उल्लंघन करने में उसे अत्यन्त दुःख मालूम होता है। यह बात भारती बिल्कुल जानती ही है, फिर भी, उसके उस आचार-विचार पर व्यंग्य करके इस तरह उपहास करने का प्रयत्न गलत है। कुछ उत्तर न देकर आसन पर बैठ गया और ढक्कन उठाकर खाने में लग गया। भारती सावधानी से काफी दूर जमीन पर बैठ गई और थाली के भोजन की छान-बीन करते-करते मन-ही-मन संकुचित और अत्यन्त उद्विग्न हो उठी। वह ईसाई है, इसलिए होटल के रसोईघर में नहीं घुसने पाई थी और इस बात का उसे ध्यान ही नहीं हुआ कि सरकार महाशय पीछे का बचा हुआ सामान किसी प्रकार इकट्ठा कराके थाली सजा लाये हैं। घर में काफी प्रकाश था। फिर भी ढक्कन खोलते ही अन्न-व्यंजन का जो रूप प्रकट हुआ, उसे देखकर तो भारती की बोलती बन्द। अनेक बार उसने अपने ऊपर के कमरे के छेद में से छिपे-छिपे अपूर्व की भोजन-सामग्री और खाने का ढंग देखा है। तिवारी की छोटी-मोटी भूल पर इस वहमी आदमी का खाना नष्ट होते भी उसने कितनी ही बार अपनी आँखों से देखा है। वही अपूर्व जब आज चुप-चाप उदास-सा रद्दी खाने को खाने लगा तो उससे नहीं रहा गया। वह

व्याकुल होकर कह उठी, "रहने दीजिए, इसे खाने की आवश्यकता नहीं—आप नहीं खा सकेंगे।"

अपूर्व ने विस्मित होकर मुँह उठा के देखा, कहा, "क्यों नहीं खा सकूँगा?"

भारती ने केवल सिर हिलाकर कहा, "नहीं खा सकेंगे।"

अपूर्व ने प्रतिवाद करते हुए उसी प्रकार सिर हिलाकर कहा, "अरे! मैं खूब मजे में तो खा रहा हूँ।" ज्योंही उसने कौर तैयार किया, त्यों ही भारती उठकर बिल्कुल पास आकर खड़ी हो गई। बोली, "आप खाना भी चाहेंगे, तो मैं नहीं खाने दूंगी। जबरदस्ती खाकर बीमार पड़ गए तो इस परदेश में आखिर भुगतना तो मुझे पड़ेगा, उठिए।"

अपूर्व ने उठकर धीरे से कहा, "तो खाऊँगा क्या? आज सवेरे भी ऑफिस में जलपान नहीं लाये थे—जितना खा सकूँगा, इसी में से न खा लूँ?" उसने इस ढंग से भारती के मुँह की ओर देखा कि उसको कितनी भूख है, पता पाने में भारती को जरा भी देर न लगी।

भारती उदासी से जरा हँसकर तथा सिर हिलाकर बोली, "अपूर्व बाबू! मैं प्राण रहते आपको यह कचरा नहीं खाने दूंगी। हाथ धोकर ऊपर चलिए, मैं और कोई प्रबन्ध किये देती हूँ।"

अपूर्व उसके अनुरोध या आज्ञानुसार शान्त बालक के समान हाथ धो कर ऊपर चला गया। दस ही मिनट बाद फिर उन्हीं सरकार महाशय और उनके सहयोगी ने आकर दर्शन दिये। अबकी बार दाल-भात के बदले एक हाथ में मुरमुरे और दूध का गिलास और दूसरे हाथ में थोड़े से दस

बिल्कुल उदार हुआ जा रहा है !"

अपूर्व ने कहा, "ना, इसमें सचमुच ही दोष नहीं है। डॉक्टर बाबू ने कहा कि चलो लौट चलें—मैं भी लौट आया। यहाँ शराबियों के ऊधम के मारे खून-खराबियाँ तक होती रहती हैं, यह कौन जानता था !"

"जानता तो क्या करते ?"

"जानता तो ? यदि जानता कि मेरे लिए आपको इतना कष्ट उठाना पड़ेगा, तो मैं कदापि वापस आने को राजी न होता।"

भारती ने कहा, "हाँ, अवश्य न होते। पर मैं समझी थी कि आप स्वयं ही अपनी इच्छा से लौट आए हैं।"

अपूर्व का मुँह लाल हो उठा। उसने मुँह का कौर निगल जोर से प्रतिवाद करते हुए कहा, "कदापि नहीं ! असम्भव ! बल्कि आप डॉक्टर बाबू से पूछकर देखिएगा।"

भारती ने शांत भाव से कहा, "इसमें पूछताछ की आवश्यकता ही क्या है ? आपकी बात पर क्या मैं विश्वास नहीं करती ?"

उसके स्वर में कोमलता होने पर भी अपूर्व की देह में आग-सी लग गई। उसके वापस आने पर भारती ने जो मत प्रकट किया था, उसको याद करके वह गुस्से में बोला, "मुझे झूठ बोलने की आदत नहीं—आप विश्वास न करें, न सही।"

भारती ने कहा, "मैं विश्वास क्यों नहीं करूँगी ?"

अपूर्व ने कहा, "यह नहीं मालूम। यह स्वभाव की बात है।" और वह सिर नीचा करके खाने लगा।

क्षण-भर मौन रहकर भारती धीरे से बोली, "आप व्यर्थ ही गुस्सा हो रहे हैं। मैं तो केवल यही आपसे कह रही थी कि यदि डॉक्टर के कहने से वापस न आकर अपनी ही इच्छा से आये हो तो भी इसमें दोष क्या है ? जैसे शाम को आप अपनी इच्छा से पता लगाकर मेरे यहाँ आये, तो इसमें क्या कोई दोष हो गया ?"

अपूर्व ने मुँह नीचे किये हुए कहा, "शाम को सुध लेने आना और आधी रात को बिना कारण आना, दोनों एक बात तो नहीं ?"

भारती ने तुरन्त कहा, "यह तो नहीं है। इसी से आपसे कह रही थी,

ज़रा ज़्यादा खाने से इतना कष्ट नहीं होता। सचमुच ठीक करके रख सकता था।"

अपूर्व कुछ उत्तर नहीं दे सका। खाना जब लगभग समाप्त हो चला तब सहसा उसने मुँह उठाकर देखा कि भारती कौतुक की दृष्टि से उसकी ओर टुकुर-टुकुर देख रही है।

भारती बोली, "देखिये तो, खाने का कितना कष्ट हुआ?"

अपूर्व ने गम्भीर होकर कहा, "आज आपको क्या हो गया है? बिलकुल सीधी बात भी नहीं समझ पातीं!"

भारती ने कहा, "और ऐसा भी तो हो सकता है कि बिलकुल हँसी न होने के कारण ही नहीं समझ पाती होऊँ?" और वह खिलखिलाकर हँस पड़ी।

अपूर्व स्वयं भी हँस दिया और संदेह हुआ कि शायद अब तक भारती उसे झूठमूठ ही तंग कर रही थी। छोटी-छोटी बातों में यह ईसाई लड़की उसे शुरू से ही छेड़ने की कोशिश करती चली आ रही है, फिर भी यह विशेष नहीं—कारण किसी भी आपद-विपद में उसके लिए इतना बड़ा निःसंशय सुरक्षित स्थान इस परदेश में और कहीं नहीं है, इस सत्य को स्वतः-सिद्ध की भाँति उसके हृदय ने सदा के लिए स्वीकार कर लिया है।

गिलास का पानी समाप्त हो गया था। अपूर्व के खाली गिलास उठाते ही भारती घबराकर उठी, "उफ, अब?"

"और पानी नहीं है क्या?"

"है तो!" भारती ने अप्रसन्न होते हुए कहा, "इतना नशा करने से क्या आदमी को किसी बात का होश रहता है? पानी का लोटा शिबू नीचे स्टूल पर छोड़ गया है—मेरी फूटी तक़दीर कि उस तरफ़ दृष्टि भी नहीं गई। अब तो कोई उपाय नहीं, अब तो खाने के बाद आचमन करते समय ही पीजिएगा—मगर अप्रसन्न नहीं हो सकेंगे, कहे देती हूँ!"

अपूर्व ने हँसकर कहा, "इसमें अप्रसन्न होने की कौन-सी बात है?"

भारती ने आन्तरिक दुःख के साथ कहा, "है क्यों नहीं! खाते समय पीने को पानी न मिले तो बड़ी अतृप्ति-सी मालूम होती है। मालूम होता है जैसे पेट ही नहीं भरा। लेकिन अधूरा खाना छोड़-छाड़कर मुझे उठने दें

भी नहीं घेरेगा। अच्छा, जाऊँ, घाट से तिवू को बुला लाऊँ?"

अपूर्व ने उसकी ओर देखकर हँसते हुए कहा, "इसके लिए इतनी अंधेरी रात में तिवू को बुलाने जाएँगी!—मुझे क्या आपने बिलकुल ही बो समझ रखा है?"

अपूर्व का पेट भर चुका था। फिर भी वह जबरदस्ती दो-चार ग्रास और खा गया, और अन्त में जब उठकर खड़ा हुआ तो उसे भारी शर्म-सी आने लगी। बोला, "सच कहता हूँ मैं आपसे, मुझे कुछ भी कष्ट नहीं हुआ। मैं हाथ-मुँह धोने के बाद ही खिड़ँगा, आप व्यर्थ ही दुःखी न होइए।"

भारती ने हँसकर कहा, "दुःखी क्यों होने लगी? कदापि नहीं। मैं जानती हूँ, दुःख करने को मेरे लिए कुछ है ही नहीं।" इतना कहकर उसने बत्ती उठाते हुए दूसरी ओर मुँह फेर लिया। फिर बोली, "मैं बत्ती दिखाती हूँ, चलिये, आप नीचे जाकर मुँह-हाथ धो आइए—पानी का लोटा सामने ही रखा है, भूल न जाइएगा।"

अपूर्व नीचे चला गया।

थोड़ी देर बाद ऊपर आने पर देखा कि भारती ने उसकी जूठी थाली आदि हटाकर जगह बिलकुल साफ कर रखी है और चौकी आदि जो सामान वहाँ से हटाकर खाने की जगह की गई थी, वह सब फिर से जहाँ-का-तहाँ सजा दिया गया है। इसके सिवाय उस आरामकुरसी के पास, जिस पर वह पहले आकर बैठा था, एक तिपाई पर तश्तरी में सुपारी-इलायची आदि रखी हुई हैं।

भारती के हाथ से तौलिया लेकर उसने हाथ-मुँह पोंछा और सुपारी-इलायची आदि मुँह में डालकर उसी आरामकुरसी पर बैठकर तथा पीठ टेककर आराम से तृप्ति की गहरी उसाँस लेते हुए कहा, "अब जरा जी में जी आया। कैसी जोर की भूख लगी थी!"

भारती उसकी आँखों के सामने से बत्ती उठाकर एक किनारे रख रही थी, उसके प्रकाश में उसके चेहरे की तरफ देखकर अपूर्व उठके बैठता हुआ बोला, "आपको तो सरदी-सी लग गई मालूम होती है!"

भारती ने झटपट बत्ती रखते हुए कहा, "ना!"

"ना कैसे! गला भारी है, आँखें फूली-फूली-सी हो रही हैं, काफी ठंड

नहीं है। अब तक कुछ स्नान ही नहीं किया था!"

भारती चुप रही। अपूर्व ने कहा, "डर की भी क्या बात सकती है। इतनी रात में किसी और कुछ करना नहीं है।"

भारती फिर भी चुप रही।

अपूर्व ने व्यथी आवाज में कहा, "आराम जाकर अभी ही आपको कष्ट दिया। मगर यह कौन जानता था, बताइए कि डॉक्टर बाबू मुझे बैठा लाकर आप से आप ही पर बोझा लादकर स्वयं खिसक जाएँगे? बोझा पड़ा सब आप ही को।"

भारती खिड़की के पास इधर को पीठ किये कुछ कर रही थी। बोली, 'यह तो पता ही। पर भगवान् ही बोझा लाद दें, तो शिकायत किसके लिए की जाए, बताइए?'

अपूर्व ने आश्चर्य के साथ पूछा, "इसका मतलब?'

भारती ने उसी प्रकार काम करते हुए कहा, "मतलब मैं ही क्या खाक जानती हूँ! पर देख तो रही हूँ, बर्मा में जब से आप आये हैं, तब से केवल मुझको ही बोझा उठाना पड़ रहा है। पिताजी के साथ लड़े आप, दण्ड दिया मुझे। घर की रखवाली के लिए रख गए तिवारी को आप, उसकी सेवा करनी पड़ी मुझे। बुला लाये डॉक्टर बाबू, और अब झंझट उठाना पड़ रहा है मुझे। मुझे तो भय है कि जीवन-भर मुझको ही न आपका बोझ ढोना पड़े। लेकिन अब रात बहुत कम रह गई है, बताइए तो कहाँ सोएँगे?"

अपूर्व ने विस्मित होकर कहा, "वाह, यह मैं क्या जानूँ?"

भारती ने कहा, "होटल में डॉक्टर बाबू की कोठरी में आपके लिए बिछौना करने को कह आई हूँ, शायद प्रबन्ध हो गया होगा।"

"वहाँ तक कौन ले जाएगा? मैं जानता नहीं।"

"मैं ही लिये चलती हूँ। चलिए, शोर-गुल मचाकर उन्हें जगाया जाए।"

अपूर्व उसी समय उठ खड़ा हो गया। फिर जरा संकोच के साथ बोला, "लेकिन आपका तकिया और बिछौने की चादर मैं लेता जाऊँ। कम-से-कम ये दो चीजें तो मुझे चाहिए ही। दूसरे के बिछौने पर जान निकल जाने पर भी मैं न सो सकूँगा।"

वह खाट पर से उसका तकिया और चादर उठाने जा ही रहा था कि भारती ने रोक दिया। उसका मलीन गम्भीर मुखड़ा स्निग्ध कोमल हँसी से भर उठा, मगर वह उसे छिपाने के लिए मुँह फेरकर धीरे से बोली, "यह भी दूसरे के ही बिछौने हैं अपूर्व बाबू, घृणा का न होना तो बड़े आश्चर्य की बात है। लेकिन, यदि ऐसी ही बात है तो आपको होटल में सोने जाने की आवश्यकता नहीं, आप इसी खाट पर सो जाइए।" यह बात उसने जान-बूझकर ही नहीं कही कि कुछ ही घण्टे पहले मेरे दिये हुए वस्त्र से भगवान् की उपासना करने में भी आपको घृणा-सी मालूम हुई थी।

अपूर्व और भी ज्यादा सकुचित हो उठा, बोला, "मगर आप कहाँ सोवेंगी? आपको तो कष्ट ही होगा?"

भारती ने सिर हिलाकर कहा, "जरा भी नहीं।" फिर उँगली से दिखाते हुए कहा, "उस छोटी कोठरी में कोई भी चीज बिछाकर मैं आराम से सो सकती हूँ। बिना कुछ बिछाये केवल काठ के फर्श पर तिवारी के पास कितनी ही रातें बिता दी हैं, पर यह शायद आपने देखा नहीं है।"

अपूर्व ने महीने-भर पहले की बात याद करके कहा, "एक रात मैंने भी देखा था, बिल्कुल ही न देखा हो, यह बात नहीं।"

भारती ने हँसते चेहरे से कहा, "उस रात की आपको याद है? अच्छा, उसी तरह एक रात और देख लीजिएगा।"

अपूर्व कुछ देर नीचे को निगाह किये बैठा रहा। फिर बोला, "उस समय तो तिवारी बीमार था—पर अभी लोग क्या समझेंगे?"

भारती ने उत्तर दिया, "कुछ भी नहीं समझेंगे। कारण, दूसरों की बात पर व्यर्थ ध्यान करने वाला छोटा मन यहाँ किसी का भी नहीं है।"

अपूर्व ने कहा, "नीचे की बेंच पर भी तो बिस्तर बिछाकर आसानी से सो सकता हूँ?"

भारती ने कहा, "आप सो भी सकें, पर मैं तो नहीं सोने दे सकती। कारण, उसकी आवश्यकता नहीं। मैं आपके लिए अछूत हूँ, इसलिए आपके द्वारा मेरी कुछ हानि होगी, यह भय तो मुझे है नहीं।"

अपूर्व ने आवेग में कहा, "मुझसे आपका रंचमात्र अनिष्ट हो सकता है, इस बात का मुझे भी कोई भय नहीं। परन्तु जब आप अपने को अस्पृश्य

कहती है, तो मुझे बड़ा दुःख होता है। 'अस्पृश्य' शब्द में घृणा का भाव है, मगर भारती को मैं घृणा नहीं करता। हमारी जाति अलग है, आपका छुआ हम खा नहीं सकते, परन्तु इसका कारण क्या घृणा है? इससे बड़ी झूठी बात और नहीं हो सकती। इससे लगता है कि आप मुझसे घृणा करती हैं। उस दिन सबेरे जब आप मुझे अपार समुद्र में छोड़कर चली गई थीं, उस का चेहरा आज भी मुझे याद है, उसे मैं जीवन-भर नहीं भूल सकता।"

भारती ने कहा, "मेरी और चाहे जो बात भूल जाएँ, पर उस जाने को नहीं भूल सकते?"

"कभी नहीं।"

"मेरे उस चेहरे पर क्या था? घृणा?"

"हाँ।"

भारती उसके चेहरे की तरफ देखकर हँसी, फिर धीरे से बोली, "दूसरे आदमी के मन को समझने की बुद्धि आपकी बहुत ही बारीक है—क्या नहीं? मगर यह सब आज रहने दीजिये, आप सोइए। मुझे तो रात जागने की आदत है, मगर आप अधिक जागेंगे तो शायद मेरी ही मुसीबत बढ़े।"

उत्तर की प्रतीक्षा किये बगैर ही, वह रैक पर से दो कम्बल उतारकर बगल की कोठरी में चली गई।

भारती फिर आई और अपूर्व के पलंग की मसहरी खोलकर और चारों ओर अच्छी प्रकार दबा के सोने चली गई।

अपूर्व की मिची हुई आँखों में नींद न थी। कमरे के एक कोने में ओट में रखी हुई बत्ती टिमटिमा रही है, बाहर गहरा अँधेरा है, रात का घुप सन्नाटा छाया हुआ है। शायद उसके सिवा और कोई भी कहीं जग नहीं रहा। कब नींद आयेगी, इसका भी कोई ठीक नहीं, फिर भी इस जागरण में उसने निद्रा न आने का जरा भी अनुभव नहीं किया। उसका सारा शरीर और मन अक्षरशः अनुभव करने लगा कि इस घर में, इस खाट पर, इस नवीन चन्द्रमा की रात्रि में ठीक इसी तरह चुपचाप सोते रहने के समान सुन्दर और मधुर दूसरी वस्तु त्रिभुवन में नहीं है। उसे ऐसा मालूम होने लगा कि ऐसे एकान्त, चिन्ता-शून्य निश्चिन्त विश्राम का आनन्द उसे मानो पहले कभी मिला ही नहीं।

भारती के पुकारने पर सवेरे उसकी नींद खुली। आँखें खोलकर देखा कि सामने भारती खड़ी है। प्रभात सूर्य का ताजा प्रकाश उसके स्नान से भीगे हुए बालों पर, उसकी सफेद रेशम की साड़ी की लाल किनारी पर, उसके सुन्दर मुखड़े के श्याम रंग पर पड़ रहा है। उसका यह अपूर्व सौन्दर्य अपूर्व की दृष्टि में आ समाया।

भारती ने कहा, "उठिए, फिर ऑफिस भी तो जाना है?"

"हाँ, जाना तो है ही।" कहता हुआ अपूर्व उठ बैठा। बोला, "देखता हूँ कि आपका तो स्नान-ध्यान भी हो चुका!"

भारती ने कहा, "आपको भी झटपट नहा-धोकर तैयार हो जाना पड़ेगा। कल रात को अतिथि-सत्कार में काफी कमी रह गई है। आज हमारी सभानेत्री की आज्ञा है कि आपको अच्छी प्रकार खिलाये-पिलाये बिना कदापि न छोड़ा जाय।"

अपूर्व ने पूछा, "कल की वह स्त्री बच गई?"

"उसे अस्पताल भेज दिया गया है—बच जाने की आशा तो है।"

उस स्त्री को अपूर्व ने आँखों से कभी भी नहीं देखा था, परन्तु फिर भी उसके कुशल-संवाद को उसने मानो परम लाभ समझा। आज उसे मालूम हुआ कि अब उससे किसी की भी बुराई न सही जायगी।

पूजा-पाठ करके, कपड़े पहनकर जब वह ऊपर पहुँचा, तब लगभग नौ बजे थे। इस बीच में चौका लगाकर सरकार महाशय थाली-बाटी सब रख गये थे।

अपूर्व ने आसन पर बैठते ही पूछा, "आपकी सभानेत्री के साथ तो भेंट नहीं हुई? उनके अतिथि-सत्कार की शायद यही रीति होगी?"

भारती ने कहा, "आपके जाने के पहले अवश्य भेंट हो जाएगी। उन्हें शायद आपसे कुछ काम भी है।"

अपूर्व ने कहा, "और डॉक्टर बाबू, जो मुझे बुला लाए थे, अभी तक शायद बिस्तर पर ही पड़े होंगे?" और वह हँसने लगा।

इस हँसी में भाग नहीं लिया भारती ने। कहा, "बिस्तर पर पड़ने का उन्हें समय नहीं मिला। अभी-अभी तो आये हैं अस्पताल से। सोने, न सोने का, किसी का भी मूल्य उनके निकट नहीं है।"

अपूर्व को सुनकर आश्चर्य हुआ। उसने पूछा, "इससे वे बीमार नहीं पड़ते ?"

भारती ने कहा, "कभी देखा तो नहीं। बीमारी और तन्दुरुस्ती दोनों ही शायद उनसे हार मानकर भाग गई हैं। आदमी के साथ उनकी बराबरी ही नहीं हो सकती।"

"खूब श्रद्धा है। श्रद्धा तो बहुत लोग बहुतों की करते हैं।" कहते-कहते उसका स्वर अचानक भारी हो आया। बोली, "उनके जाने पर ऐसा मालूम होता है कि हम सब रास्ते की धूल में पड़ी रहें और वे हमारे ऊपर से चले जाएँ मालूम होता है, फिर भी आशा नहीं मिटती अपूर्व बाबू!" कहकर उसने मुँह फेरकर आँखें पोंछ डालीं।

अपूर्व ने फिर कुछ नहीं पूछा, नीचे को दृष्टि कर भोजन करने लगा। उसे बार-बार यही ध्यान होने लगा कि सुमित्रा और भारती जैसी इतनी बड़ी शिक्षित और बुद्धिमती नारियों के हृदय में जिसने अपना इतना ऊँचा सिंहासन बना लिया है, पता नहीं भगवान् ने उसे किस धातु से बनाकर संसार में भेजा है और वे कौन-सा असाधारण काम उससे कराना चाहते हैं!

दूर दरवाजे के पास भारती चुपचाप बैठी रही।

अपूर्व स्वयं भी विशेष कुछ बोला नहीं। एक प्रकार चुपचाप ही उसका खाना समाप्त हुआ। यद्यपि कोई अप्रीतिकर बात नहीं हुई, फिर भी आज के प्रभात पर, जो बहुत ही मिष्ट होकर शुरू हुआ था, अकारण ही न जाने कहाँ से एक छाया-सी आ पड़ी।

उसने ऑफिस के कपड़े पहनकर तैयार होकर कहा, "चलिए, डॉक्टर बाबू से मिल आयें।"

"चलिए, उन्होंने आपको बुलाया भी है।"

सरकार महाशय के पुराने खण्डहर से होटल में···बिल्कुल पीछे की ओर एक कोठरी में डॉक्टर बाबू रहते हैं। न प्रकाश है, न वायु, आसपास गंदा पानी जमा हुआ है और उसमें से बदबू आ रही है। बहुत ही पुराना काठ का फर्श है, पाँव रखते ही डर लगता है कि कहीं टूट न जाए। ऐसी गंदी कोठरी में भारती जब उसे ले गई, तब उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। कोठरी में घुसने पर कुछ देर तक तो उसे अच्छी तरह कुछ दिखाई ही नहीं दिया।

डॉक्टर बाबू ने अभ्यर्थना करते हुए कहा, "आइए अपूर्व बाबू !"

"ओफ्—कैसी गंदी कोठरी आपने अपने लिए चुनकर निकाली है, डॉक्टर बाबू !"

"मगर कितनी सस्ती है, सो तो कहिए ? महीने का दस आना किराया है।"

अपूर्व ने कहा, "यह तो अधिक है, बहुत अधिक है ! दस पैसे होना चाहिए था।"

डॉक्टर ने कहा, "हम सब दुखी आदमी किस प्रकार रहते हैं, आपको अपनी आँखों से देखना भी तो चाहिए। बहुतों के लिए यही राजप्रासाद है।"

अपूर्व ने कहा, "तो ऐसे प्रासाद से भगवान् मुझे हमेशा वंचित रखें। बाप-रे-बाप !"

डॉक्टर ने कहा, "सुना है, कल रात को आपको बड़ा कष्ट हुआ, मुझे क्षमा कीजिएगा !"

अपूर्व ने कहा, "क्षमा तब करूँगा जब आप इस कोठरी को छोड़ देंगे, उससे पहले नहीं।"

डॉक्टर जरा मुस्करा दिये। बोले, "अच्छा, ऐसा ही होगा।" अब तक अपूर्व ने देखा नहीं था, सहसा अत्यन्त आश्चर्य के साथ देखा कि दीवार के पास एक मोढ़े पर सुमित्रा बैठी हुई है। बोला, "आप यहाँ हैं ? मुझे क्षमा कीजिएगा, मैंने बिल्कुल देखा ही नहीं।"

सुमित्रा ने कहा, "यह दोष आपका नहीं है, अपूर्व बाबू, अन्धकार का है।"

अपूर्व के आश्चर्य की सीमा न रही, जब उसने उसका स्वर सुना। वह स्वर जितना करुण था, उतना ही विषण्ण। ऐसा मालूम हुआ जैसे अभी-अभी कोई दुर्घटना हो गई है और उससे वह डर-सा गया। अच्छी तरह देख-भालकर उसने धीमे से कहा, "डॉक्टर बाबू ! आज यह आपकी कैसी पोशाक है? कहीं जा रहे हैं क्या ?"

डॉक्टर के सिर पर पगड़ी, बदन पर लम्बा कोट, ढीला पायजामा और पाँव में सलीमशाही जूते थे। एक चमड़े के सूटकेस में कुछ बण्डल-से बँधे थे। बोले, "मैं तो अब चल दिया अपूर्व बाबू, ये सब रहीं, आपको देख-भाल

करनी पड़ेगी। आपसे इससे अधिक कहने की मैं आवश्यकता नहीं समझता।"

अपूर्व दंग रह गया। बोला, "अचानक चल कैसे दिये? कहाँ जा रहे हैं?"

डॉक्टर के स्वर में कभी परिवर्तन नहीं होता, वैसे ही सहज स्वाभाविक शान्त स्वर में बोले, "अपूर्व बाबू! हमारे कोश में क्या 'अचानक' शब्द होता है? अभी जा रहा हूँ भामो के मार्ग से और भी कुछ उत्तर की ओर। बहुत-सा सच्ची जरी का माल है, सिपाहियों में वह अच्छे दामों में बिक जाता है।" फिर जरा मुस्करा दिये।

सुमित्रा सहसा कहने लगी, "उन्हें पेशावर में एकदम भामो में ले जाया गया है। जानते हो उन पर आजकल कैसी कड़ी दृष्टि रखी जाती है? तुम्हें भी बहुत-से पहचानते हैं। यह कभी मत सोचना कि सभी की आँखों में तुम धूल झोंक सकोगे। अभी कुछ दिन और न जाते तो क्या होता?" यह कहते-कहते अन्त में उसका स्वर कुछ अद्भुत-सा हो गया।

डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, "तुम तो जानती ही हो, बिना गये काम नहीं चल सकता।"

सुमित्रा आगे चुप रही। परन्तु अपूर्व सारे मामले को पल-भर में समझ गया। उसकी आँख और दोनों कान गर्म हो उठे और सारी देह से आग-सी निकलने लगी। आखिर किसी प्रकार वह पूछ ही बैठा, "मान लीजिए, यदि उनमें से किसी ने पहचान लिया और वहीं पकड़ लिया?"

डॉक्टर ने कहा, "पकड़ लिया तो शायद फाँसी पर चढ़ा देंगे। लेकिन दस बजे की गाड़ी में अब देर नहीं है अपूर्व बाबू, मैं चल दिया।" यह कहकर उन्होंने स्ट्रैप में बँधे हुए भारी बोझ को अनायास ही उठाकर पीठ पर रखा और चमड़े का बैग हाथ में लटका लिया।

भारती ने अभी तक एक भी शब्द नहीं कहा था और न अब भी कोई बात कही, केवल पैरों के पास सिर टेककर प्रणाम कर लिया।

सुमित्रा ने भी प्रणाम किया, बिल्कुल पाँवों पर पड़कर। ऐसा मालूम हुआ कि शायद अब वह उठेगी ही नहीं, इसी प्रकार पड़ी रहेगी—करीब एक मिनट बाद जब वह चुपके से उठ खड़ी हुई, तब उस स्वल्प आलोकित कोठरी में उसका चेहरा किसी को दिखाई ही नहीं दिया।

डॉक्टर ने कोठरी के बाहर आकर कल रात की तरह अपूर्व का हाथ अपनी मुट्ठी में दबाते हुए कहा, "चल दिया अपूर्व बाबू, सव्यसाची मैं ही हूँ।"

अपूर्व के भीतर का भाग सूखकर रेगिस्तान हो गया था, उसके गले में आवाज ही नहीं निकली, परन्तु उसने उसी क्षण घुटने टेककर उन औरतों के समान ही पृथ्वी से सिर लगाकर नमस्कार किया। डॉक्टर ने उसके माथे पर हाथ रखा और भारती के माथे पर रखकर अस्फुट स्वर में क्या कहा, कुछ सुनाई नहीं दिया। उसके बाद जल्दी-जल्दी कदम रखते हुए वे बाहर चले गये।

जब अपूर्व उठ के खड़ा हुआ तो देखा कि भारती के बगल में वह अकेला खड़ा है और पीछे उस फूटी कोठरी के बन्द दरवाजे के भीतर वह कर्त्तव्य-कठोर अशेष बुद्धिशालिनी अधिकार-समिति की भयशून्य तेजस्विनी सभा-नेत्री क्या कर रही है, कुछ ज्ञात न हो सका।

१२

जब दोनों होटल के बाहर निकल आये तब भारती ने कहा, "चलिये अपूर्व बाबू, हम लोग चल दें।"

"मगर, मेरा तो ऑफिस का समय हो गया है।"

"रविवार को भी आपको ऑफिस जाना है क्या?"

अपूर्व प्रसन्न होकर बोला, "रविवार है! अरे! मुझे ध्यान ही नहीं था। इस बात की सवेरे याद आती तो नहाने-खाने में इतनी जल्दी नहीं करनी पड़ती। आपको तो सारी बातें याद रहती हैं, फिर भी इतनी-सी बात भूल गई थीं?"

भारती ने कहा, "हो सकता है। मगर, कल रात को आपके न खाने की बात नहीं भूली थी।"

अपूर्व सहसा ठिठककर खड़ा हो गया। बोला, "मगर, मैं देरी नहीं कर सकता। तिवारी बेचारा चिन्ता में मरा जा रहा होगा।"

भारती ने कहा, "ना -क्योंकि मैंने आपके जाने के पहले ही इसकी खबर भिजवा दी है कि आप सकुशल हैं।"

"उसे मालूम है कि मैं आपके यहाँ हूँ?"

भारती ने सिर हिलाकर कहा, "हाँ, मालूम है। सवेरे ही मैंने इसे भेज दिया है।"

इससे अपूर्व केवल निश्चिन्त ही नहीं हुआ, बल्कि उसके मन परसे बोझा-सा उतर गया। कल रात को लौटते समय, खाते वक्त, सोते वक्त सब काम में उसे इसी बात की चिन्ता होती रही थी कि क्या मालूम कल सवेरे तिवारी उस की बात पर विश्वास करेगा या नहीं। इन बातों के कितनी कहावतें प्रसिद्ध हैं। शायद माँ के पास चिट्ठी में कुछ उल्टा-सीधा लिख दे, या वापस घर पहुँचकर कोई जिक्र कर दे, तो पक्की स्याही के तरह स्याही पुंछ जाने पर भी उसका दाग नहीं मिटेगा—यह छोटी-सी बात ही छोटे-से काँटे के समान उसके पाँव में हर कदम पर गड़ रही थी। इतनी देर के बाद अब वह निर्भय होकर कदम बढ़ाने लगा। तिवारी और चाहे जो करे, पर भारती की बात पर जान जाने पर भी अविश्वास नहीं कर सकता। जो फारखती भारती ने लिख दी है, अपूर्व इस बात को अच्छी तरह जानता था कि उससे बढ़कर निष्कलंकता की बड़ी दलील तिवारी के लिए और कुछ नहीं हो सकती।

वह प्रसन्नचित्त से बोला, "आपकी सब ओर निगाह रहती है। घर पर मैंने अपनी भाभियों को देखा है, और-और स्त्रियों को देखा है, माँ को भी देखा है, मगर ऐसी सब ओर निगाह रखना मैंने किसी में नहीं देखा। सच कहता हूँ, आप जिस घर की गृहिणी होंगी, उस घर के लोग बड़े मजे से पाँव पसारकर सोते रहेंगे। कभी किसी को कष्ट न उठाना पड़ेगा, इसे मैं लिखकर दे सकता हूँ।"

भारती की आँखों के सामने से मानो अचानक बिजली-सी चमककर निकल गई। पर अपूर्व को इसका कुछ पता ही नहीं चला। वह पीछे-पीछे आ रहा था। फिर वह बोला, "इस देश में आप न होतीं तो मेरा क्या होता, बताइए? सबकुछ चोरी चला जाता, तिवारी शायद घर में मरा ही पड़ा मिलता—ब्राह्मण के लड़के को मेहतर-डोम खींच-घसीटकर ले जाते।"

इस भयंकर कल्पना से उसके रोंगटे खड़े हो गये। जरा ठहरकर वह फिर कहने लगा, "और तब क्या मैं रह सकता था? नौकरी छोड़-छाड़कर भाग जाता और वही फिर जैसे का तैसा। वही भाभियों के ताने और माँ के आँसू। आपने सचमुच बचा दिया मुझे।"

भारती ने मुस्कराकर कहा, "फिर भी मुझ ही से लड़ रहे थे?"

अपूर्व लज्जित होकर बोला, "सब उस तिवारी का दोष है। पर माँ ये सब बातें सुनेंगी तो आपको कितनी आशीषें देंगी, यह आप नहीं जानतीं।"

भारती ने कहा, "कैसे जानूँगी? माँ आयें यहाँ तभी तो उनके मुँह से सुन सकती हूँ।"

अपूर्व ने आश्चर्य के साथ कहा, "माँ आयेंगी बर्मा में? आप कहती क्या हैं?"

भारती ने जोर देकर कहा, "क्यों नहीं आयेंगी? कितनी की ही तो माताएँ नित्य-प्रति आती रहती हैं। यहाँ आने से ही किसी की जात थोड़े ही नष्ट हो जाती है?"

दोनों ऊपर के कमरे में बात करते-करते पहुँच गये।

अपूर्व कमरे में घुसते ही फिर उसी आरामकुर्सी पर बैठ गया। जब बगल की खिड़की में से धूप आकर उसके मुँह पर पड़ने लगी तो भारती ने खिड़की बन्द करते हुए कहा, "आपकी भाभियाँ माँ की सेवा नहीं करतीं और आपको हमेशा परदेश में नौकरी करनी पड़ेगी, तो इस आयु में उनकी सेवा कौन करेगा, बताइए?"

अपूर्व ने कहा, "माँ कहती हैं, छोटी बहू आकर उनकी सेवा करेगी।"

भारती ने कहा, "और यदि वह सेवा न करे?—आप रहेंगे परदेश में, जिठानियों की देखा-देखी वह भी उन्हीं की ओर हो जाए, माँ की सेवा न करके उलटा उनको कष्ट देने लगे, तो फिर आप क्या करेंगे, भला बताइये?"

अपूर्व डर गया। बोला, "यह कभी नहीं हो सकता। धर्मात्मा घराने की लड़की माँ को किसी तरह कष्ट नहीं पहुँचा सकती, यह आप जान लीजिए।"

"धर्मात्मा ब्राह्मण-घराना?" भारती जरा मुस्कराकर बोली, "अभी

भारती ने कहा, "ना —क्योंकि मैंने आपके जागने के पहले ही खबर भिजवा दी है कि आप सकुशल हैं।"

"उसे मालूम है कि मैं आपके यहाँ हूँ?"

भारती ने सिर हिलाकर कहा, "हाँ, मालूम है। सवेरे ही मैंने उसे भेज दिया है।"

इससे अपूर्व केवल निश्चिन्त ही नहीं हुआ, बल्कि उसके मन पर से बोझा-सा उतर गया। कल रात को लौटते समय, खाते वक्त, सोते वक्त सब काम में उसे इसी बात की चिन्ता होती रही थी कि क्या मालूम कल सवेरे तिवारी उसकी बात पर विश्वास करेगा या नहीं। इस बारे में कितनी कहावतें प्रसिद्ध हैं। शायद माँ के पास चिट्ठी में कुछ अंटसंट लिख दे, या वापस घर पहुँचकर कोई जिक्र कर दे, तो पक्की स्याही की तरह स्याही पुँछ जाने पर भी उसका दाग नहीं मिटेगा—यह छोटी-सी बात ही छोटे-से काँटे के समान उसके पाँव में हर कदम पर गड़ रही थी। इतनी देर के बाद अब वह निर्भय होकर कदम बढ़ाने लगा। तिवारी और चाहे जो करे, पर भारती की बात पर जान जाने पर भी अविश्वास नहीं कर सकता। जो फारखती भारती ने लिख दी है, अपूर्व इस बात को अच्छी तरह जानता था कि उससे बढ़कर निष्कलंकता की बड़ी दलील तिवारी के लिए और कुछ नहीं हो सकती।

वह प्रसन्नचित्त से बोला, "आपकी सब ओर निगाह रहती है। घर पर मैंने अपनी भाभियों को देखा है, और-और स्त्रियों को देखा है, माँ को भी देखा है, मगर ऐसी सब ओर निगाह रखना मैंने किसी में नहीं देखा। सच कहता हूँ, आप जिस घर की गृहिणी होंगी, उस घर के लोग बड़े मजे से पाँव पसारकर सोते रहेंगे। कभी किसी को कष्ट न उठाना पड़ेगा, इसे मैं लिखकर दे सकता हूँ।"

इस भयंकर कल्पना से उसके रोंगटे खड़े हो गये। जरा ठहरकर वह फिर कहने लगा, "और तब क्या मैं रह सकता था? नौकरी छोड़-छाड़कर भाग जाता और वहाँ फिर वैसे का वैसा। वही भाभियों के ताने और माँ के आँसू। ने सचमुच बचा दिया मुझे।"

भारती ने मुस्कराकर कहा, "फिर भी मुझ ही से लड़ रहे थे?"

अपूर्व लज्जित होकर बोला, "सब उस तिवारी का दोष है। पर माँ ये बातें सुनेंगी तो आपको कितनी आशीषें देंगी, यह आप नहीं जानतीं।"

भारती ने कहा, "कैसे जानूँगी? माँ आयें यहाँ तभी तो उनके मुँह से सकती हूँ।"

अपूर्व ने आश्चर्य के साथ कहा, "माँ आयेंगी बर्मा में? आप कहती हैं?"

भारती ने जोर देकर कहा, "क्यों नहीं आयेंगी? कितनों की ही तो ताएँ नित्य-प्रति आती रहती हैं। यहाँ आने से ही किसी की जात थोड़े ही ट हो जाती है?"

दोनों ऊपर के कमरे में बात करते-करते पहुँच गये।

अपूर्व कमरे में घुसते ही फिर उसी आरामकुर्सी पर बैठ गया। जब ल की खिड़की में से धूप आकर उसके मुँह पर पड़ने लगी तो भारती ने ड़की बन्द करते हुए कहा, "आपकी भाभियाँ माँ की सेवा नहीं करती र आपको हमेशा परदेश में नौकरी करनी पड़ेगी, तो इस आयु में उनकी वा कौन करेगा, बताइए?"

अपूर्व ने कहा, "माँ कहती हैं, छोटी बहू आकर उनकी सेवा करेगी।"

भारती ने कहा, "और यदि वह सेवा न करे?—आप रहेंगे परदेश में, ठानियों की देखा-देखी वह भी उन्हीं की ओर हो जाए, माँ की सेवा न रके उलटा उनको कष्ट देने लगे, तो फिर आप क्या करेंगे, भला बताइये?"

अपूर्व डर गया। बोला, "यह कभी नहीं हो सकता। धर्मात्मा घराने की लड़की माँ को किसी तरह कष्ट नहीं पहुँचा सकती, यह आप जान लीजिए।"

"धर्मात्मा ब्राह्मण-घराना?", भारती जरा मुस्कराकर बोली, "अभी

रहने दीजिए, यदि आवश्यकता हुई तो उसकी कहानी फिर कभी सुनाऊँगी।" फिर कुछ देर चुप रहकर बोली, "आप सिर्फ माँ की इच्छा के लिए ही यदि ब्याह करके उसे वहीं छोड़ आयेंगे, तो क्या यह उन पर भी अन्याय नहीं होगा?"

अपूर्व उसके चेहरे की तरफ देखकर बोला, "यह तो होगा ही।"

भारती ने कहा, "और इस अविचार या अन्याय के बदले आप उसके सुविचार का दावा करेंगे?"

कुछ देर तक चुप बैठा रहा अपूर्व, फिर धीरे से बोला, "किन्तु उसके सिवा और उपाय ही क्या है भारती!"

भारती ने कहा, "उपाय चाहे न भी हो, परन्तु इतनी कठोर बात आप बड़े-से-बड़े धर्मात्मा घराने की लड़की से भी नहीं कर सकते। इसका फल भी अच्छा नहीं हो सकता। आपकी निष्ठुरता के बदले वह जितना ही अपना कर्त्तव्यपालन करेगी उसकी दृष्टि में उतने ही आप छोटे होते जायेंगे अपूर्व बाबू! स्त्री की दृष्टि में अश्रद्धेय और हीन होने से बढ़कर दुर्भाग्य संसार में और है ही क्या?"

बात इतनी अधिक सच थी कि अपूर्व से उत्तर नहीं बन पड़ा।

शास्त्रानुसार स्त्री का क्या कर्त्तव्य है, पतिव्रता किसे कहते हैं, सात की निःस्वार्थ सेवा का कितना महत्त्व है, पति की इच्छा-मात्र का पालन करने में कितना पुण्य है इत्यादि अनेक पौराणिक कथाएँ उसने उदाहरण के तौर पर अपने मित्रों के सामने पेश की हैं और आधुनिकता के विरुद्ध वह काफी लड़ा है—अपनी बातों से मित्र-मंडली को उसने हैरान कर दिया है, परन्तु इस ईसाई लड़की के सामने उसका आभास-मात्र भी उसके मुँह से नहीं निकला।

कुछ देर बाद उसने करीब-करीब अपने-आपसे ही कहा, "वास्तव में आजकल ऐसी लड़की शायद ही कोई होगी।"

भारती हँस दी और बोली, "ना, ऐसा तो कैसे कह सकते हैं! हो सकता है, धर्मात्मा घर में न हो, और कहीं कोई हो, जो इसके लिए अपने को ... रूप से जलांजलि दे सके, परन्तु उसे आप ढूँढ़ कैसे निकालेंगे!" अपूर्व ... ही चिन्ता में था, भारती की बात पर उसका ध्यान नहीं गया, बोला,

"यह तो है ही।"

भारती ने कहा, "आप देश कब जाएँगे ?"

अपूर्व ने अनमने मन से उत्तर दिया, "पता नहीं, माँ को चिट्ठी लिखेंगे बुलाने के लिए।" फिर कुछ देर बिलकुल चुप रहकर कहा, "बाबा के साथ मन न मिलने से मेरी माँ जीवन में कभी सुखी नहीं हुई। ऐसी माँ को अकेले छोड़ने को मेरा कभी जी नहीं चाहा। सोचता हूँ, अब की बार जाने पर वे फिर लौटने देंगी या नहीं।" फिर अचानक भारती के चेहरे की ओर निगाह जमाकर कहने लगा, "देखो भारती, बाहर से देखने में हमारे घर की हालत भले ही अच्छी हो, पर भीतर अभाव है। शहर के अधिकांश गृहस्थों की यही दशा है। भाभियाँ चाहे जिस दिन हम लोगों को पृथक् कर दे सकती हैं। यदि यहाँ फिर से नौकरी पर न आ सका, तो हमारे कष्टों की सीमा न रहेगी।"

भारती ने कहा, "आपको आना ही होगा।"

"माँ से हमेशा अलग रहूँगा ?"

"उन्हें राजी करके साथ लेते आइएगा। मैं निश्चित जानती हूँ, वे अवश्य चली आयेंगी।"

अपूर्व हँसता हुआ बोला, "ना-ना ! माँ को तुम पहचानती नहीं। मान लो, वे आ भी गईं, तो उन्हें सँभालेगा कौन ?"

भारती ने भी हँसते हुए कहा, "मैं सँभाल लूँगी।"

"आप ! आपके घर घुसते ही माँ हँडिया-हबकियाँ सब फेंकवा देंगी।"

भारती ने उत्तर दिया, "कितनी बार फेंकवायेंगी, मैं रोज-रोज घर में घुस जाया करूँगी !"

इस पर दोनों हँस पड़े।

भारती ने सहसा गम्भीर होकर कहा, "आप स्वयं भी तो उसी हँड़िया फेंकने वालों के दल में हैं। मगर हँड़िया फेंक देने से ही सब झगड़ा मिट जाता तो संसार की समस्याएँ बहुत आसान हो जातीं। विश्वास न हो, तो तिवारी से पूछ लीजियेगा।"

अपूर्व ने स्वीकार करते हुए कहा, "ठीक है। वह बेचारा हँड़िया जरूर फेंक देगा, पर साथ-साथ उसकी आँखों से आँसू भी गिरेंगे। आपको तो वह

इतनी भक्ति करता है ताकि जरा-सा फुसलाते ही ईसाई होने को राजी हो जाये तो आश्चर्य नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता।"

भारती ने कहा, "दुनिया में कहा कुछ भी नहीं जा सकता, न नौकर के बारे में और न मालिकों के बारे में।" उसने हँसी छुपाने के लिए मुँह नीचा कर लिया।

अपूर्व का चेहरा लाल हो उठा। बोला, "लेकिन दुनिया में इतना तो कहा जा सकता है कि नौकर और मालिक की बुद्धि में अन्तर होता है?"

"यह ठीक है, इसीलिए उनके राजी होने में देर हो सकती है, पर मालिक को देर न लगेगी।" कहते-कहते उसकी दृष्टि दबी हुई हँसी के वेग से चंचल हो उठी। अपूर्व इस मजाक को समझकर प्रसन्न होकर बोला, "सच, हँसी नहीं, क्या आप मेरे धर्म छोड़ने की कल्पना कर सकती हैं?"

भारती ने कहा, "हाँ, कर सकती हूँ।"

"सच, कर सकती हैं?"

"शत-प्रतिशत कर सकती हूँ।"

अपूर्व ने कहा, "पर मैं तो यह जान जाने पर भी नहीं सोच सकता।"

भारती ने कहा, "जान जाना क्या चीज है, सो तो आप जानते नहीं। तिवारी जानता है। लेकिन इस विषय पर बहस करने से क्या होगा? आप जैसे अँधेरे में भटकने वालों को उजाले में लाने से बढ़कर और भी बहुत-से आवश्यक काम मुझे करने हैं। अब आप सो जाइये जरा।"

अपूर्व ने कहा, "दिन में नहीं सोता, पर आपको आवश्यक काम क्या करना है?"

भारती ने कहा, "आपकी बेगार करना ही क्या मेरे लिए एकमात्र आवश्यक काम है? मुझे भी थोड़ा-बहुत रांध-रूंधकर खाना पड़ता है। होते नहीं तो चलिए मेरे साथ, नीचे चलकर बैठिएगा। मेरे हाथ का जब किसी-न-किसी दिन खाना ही है, तो उससे बिल्कुल अपरिचित रहना ठीक नहीं।"

अपूर्व ने कहा, "मैं मर सकता हूँ पर आपके हाथ का नहीं खा सकता।"

भारती ने कहा, "पर मैं जीवित रहकर खाने की बात कर रही हूँ।" और वह हँसती हुई नीचे उतर गई।

अपूर्व ने उसे सुनाते हुए कहा, "मैं अब घर जाता हूँ, तिवारी बेचारा

चिन्ता कर रहा होगा।"

कुछ देर तक वह उत्तर के लिए कान लगाये रहा, अन्त में पीठ टेककर लेट गया। भारती ने शायद सुना नहीं, या सुनकर भी उत्तर नहीं दिया। परन्तु यही तो सबसे बड़ी समस्या नहीं है, बड़ी समस्या यह है कि उसे जल्दी घर जाना चाहिए। किसी भी बहाने से अब देरी करना अच्छा नहीं लगता। उसकी जाने की इच्छा जितनी ही अधिक होने लगी, उतना ही आलस बढ़ता गया। अन्त में उस आरामकुरसी पर मुँह को हाथ से ढककर पसर गया।

१३

बहुत समय बीत गया।

अपूर्व आँखें मलता बैठ गया। दीवार की घड़ी की ओर देखकर चौंका, "अरे, तीन-चार घण्टे से कम न सोया हूँगा। मुझे जगा क्यों नहीं दिया? —वाह, सिर के नीचे यह तकिया कब रख दिया? इसके होते हुए भी क्या किसी की नींद खुल सकती है!"

भारती ने कहा, "नींद खुलनी होती तो तभी खुल जाती। इसे न रख देती तो व्यर्थ में दर्द और हो जाता। जाइए, मुँह-हाथ धो आइये, सरकार महाशय जलपान की तश्तरी लिए खड़े हैं—उन्हें बहुत काम है, जरा जल्दी छुट्टी दे दीजिए।"

सरकार दरवाजे के बाहर खड़ा ही था, मुँह बढ़ाकर उसने भी जल्दी का संकेत किया।

अपूर्व ने मुँह-हाथ धो आने के बाद जलपान किया और सुपारी-इलायची खाते-खाते प्रसन्न मन से कहा, "अब मुझे छुट्टी दीजिए, मैं घर जाऊँ।"

भारती ने सिर हिलाकर कहा, "यह नहीं हो सकता। तिवारी को सूचना भिजवा दी है, कल ऑफिस से लौटते समय ही घर पहुँचेंगे। और यह भी सूचना मँगा ली है कि आपका तिवारी स्वस्थ, मस्त, अलमस्त घर की रखवाली कर रहा है—आप जरा भी चिन्ता न कीजिए।"

"लेकिन क्यों?"

भारती ने कहा, "क्योंकि इस समय आप हमारे अभिभावक हैं। आज सुमित्रा दीदी अस्वस्थ हैं, नवतारा गई है मन्मथ बाबू को लेकर उस पार और आपको मेरे साथ होना होगा। आपके लिए सभानेत्री की यह आज्ञा है। वहाँ धोती लाकर रख दी है, पहनिए और चलिए।"

"कहाँ जाना होगा?"

"मजदूरों की बस्ती में। यानी, बड़े-बड़े कारखानों के करोड़पति मालिकों ने अपने मजदूरों के लिए जो पंक्तिबद्ध नरक-कुण्ड बनवा रखे हैं, उनको देखने आज छुट्टी के दिन जाना है।"

अपूर्व ने पूछा, "किसलिए?"

"अधिकार-समिति का काम क्या घर बैठे होगा?" फिर जरा हँसकर बोली, "अपूर्व बाबू! आप इस समिति के विशेष सदस्य हैं, खास मौके पर गए बिना तो आप सब बातें समझ न सकेंगे।"

"चलिए।" अपूर्व ऑफिस की पोशाक बदलकर पाँचेक मिनट में तैयार हो गया।

अलमारी खोलकर कोई चीज छिपाकर जेब में रखते भारती को देख अपूर्व ने पूछा, "यह आपने क्या ले लिया?"

"पिस्तौल।"

"पिस्तौल? पिस्तौल क्यों?"

"आत्मरक्षा के लिए।"

"इसका लायसेंस है?"

"ना।"

अपूर्व ने कहा, "यदि पुलिस ने पकड़ लिया, तो आत्मरक्षा दोनों की ही हो जाएगी। कितने साल की होगी, पता है?"

"नहीं होगी। चलिए।"

अपूर्व ने दीर्घ साँस छोड़ते हुए कहा, "दुर्गा! श्रीहरि! — चलिए।"

बड़ी सड़क से उत्तर की ओर बर्मी और चीनियों की बस्ती पार करके बाजार के किनारे से लगभग मील-भर रास्ता तय करके दोनों एक बड़े कारखाने के सामने पहुँचे और बन्द फाटक की छोटी-सी खिड़की में से होकर

भीतर चले गए। दाहिनी ओर 'कॉरुगेटेड लोहे' के (टिन की चद्दरों के) गोदामों की कतार है और उसके दूसरी तरफ कारीगर और मजदूरों के रहने के लिए चीड़ के तख्तों और पुरानी टीन की बनी हुई पंक्तिदार कोठरियां हैं। सामने की ओर एक कतार में पानी के नल हैं और पीछे की ओर टीन के पाखाने। शुरू-शुरू में शायद उनमें किवाड़ थे, पर अब फटे टाट झूल रहे हैं। यही भारतीयों की 'कुली लाइन' है। इसी में पंजाबी, मद्रासी, बर्मी, बंगाली, मराठी, गुजराती, बिहारी, ब्रजवासी, हिन्दू, मुसलमान स्त्री और पुरुष मिलकर लगभग एक हजार प्राणी दिन-पर-दिन, महीने-पर-महीने और वर्ष-पर-वर्ष बिताते चले आ रहे हैं।

भारती ने कहा, "आज काम का दिन नहीं है, छुट्टी है, नहीं तो इन पानी के नलों पर ही खून-खराबी होती दिखाई दे जाती।"

अपूर्व ने गर्दन हिलाते हुए कहा, "छुट्टी के दिन की भीड़ देखकर उसका अनुमान लगाया जा सकता है।"

इतनी जनता के सामने एक मद्रासी स्त्री टाट का परदा उठाकर पाखाने में घुस रही थी—परदे की हालत देखकर अपूर्व का चेहरा लाल हो उठा, बोला, "अधिकार-समिति का काम ही करना हो तो और कहीं चलिए, यहाँ तो मैं खड़ा भी नहीं रह सकता।"

भारती स्वयं भी अनुभव कर रही थी। उत्तर में केवल जरा हँस दी। —मनुष्य के दर्जे से उतारकर जिन्हें पशु बना डाला गया है, उनके लिए इन सब झंझटों की क्या आवश्यकता?

दोनों चलकर एक बंगाली मिस्त्री के वासे में पहुँचे। अधेड़ उम्र है, कारखाने में पीतल-ढलाई का काम करता है। शराब पीकर काठ के फर्श पर पड़ा-पड़ा किसी को बुरी-बुरी गालियाँ दे रहा है।

भारती ने पुकारा, "मानिक, किस पर नाराज हो रहे हो? सुशीला कहाँ है? आज दो दिन से वह पढ़ने क्यों नहीं आती?"

मानिक किसी प्रकार हाथ-पैरों के सहारे से उठकर बैठ गया और ध्यान से देखा। पहचानने के बाद बोला, "दीदी है? आओ, बैठो। सुशीला तुम्हारे स्कूल में कैसे जाए, बताओ? खाना पकाना, चौका-बासन करना, लड़के को सँभालना—सभी तो उसको करना पड़ता है—बहनजी, छाती

फटी जाती है। जदुआ गाने को बन्द न कर दिया तो मैं कायथ की पैदाइश नहीं। बड़े साहब को ऐसी दरख्वास्त दूँगा कि साले की नौकरी ही खत्म समझिए।"

भारती ने हँसते हुए कहा, "कहो तो सुमित्रा दीदी से कहकर मैं ही तुम्हारी दरख्वास्त लिखवा दूँ! लेकिन कल हम लोगों की सभा है, फैक्टरी के मैदान में, यह याद है न?"

तभी एक दस-ग्यारह साल की लड़की वहाँ आ पहुँची। उसने बायें धोती के छोर में से एक बोतल निकालकर सावधानी से रखते हुए कहा, "बाबा, घोड़ा मार्का शराब नहीं मिली, टोपी मार्का ले आई हूँ। चार पैसे बाकी रह गए हैं।" रमिया शराब पीके मतवाला होकर क्या कह रहा था, बताऊँ?"

पिता ने रमिया को एक भद्दी गाली दी।

भारती ने कहा, "ऐसे स्थान पर तुम अब मत जाया करो। अच्छा, तुम्हारी माँ कहाँ है सुशीला?"

"माँ? माँ तो परसों जद्दू चाचा के साथ चली गई, लाइन से बाहर किराये पर घर लेकर रहती है।"

लड़की और कुछ कहना चाहती थी, इतने में बाप गरज उठा, "जानता हूँ! ब्याहता स्त्री है, कोई बाजार की वेश्या नहीं!" और अनिश्चित काँपते हुए हाथों से स्क्रू के अभाव में टूटी करछुली की नोक से वह बोतल का डाट खोलने में लग गया।

अचानक भारती ने पीछे से अपने आँचल में खिंचाव महसूस करके मुड़कर देखा तो अपूर्व का चेहरा बिल्कुल सफेद फक पाया। कभी उसने भारती को छुआ नहीं था, मगर अभी उसे इसका कुछ होश ही न रहा। बोला, "चलिए यहाँ से।"

"जरा ठहरिए।"

"ना, एक मिनट भी नहीं।" इतना कहकर वह एक प्रकार जबर्दस्ती ही उसे बाहर ले गया। घर के भीतर मानिक बोतल और करछुली लिए वीरता के अहंकार में गरजता रहा, "चाहे कतल करके फाँसी पर ही क्यों न चढ़ना पड़े, मैं दासू गुण्डे का लड़का हूँ, जेल और फाँसी-वाँसी की मैं चिन्ता

नहीं करता।"

अपूर्व बाहर आकर आग के समान जल उठा, "हरामजादा, बदमाश, शराबी, पाजी कहीं का! इसे राक्षसों का नरक-कुण्ड बना रखा है! यहाँ पैर रखने में आपको घृणा नहीं होती!"

भारती ने उसके मुंह की ओर देखकर धीरे से कहा, "ना, क्योंकि यह नरक-कुण्ड इनका बनाया हुआ नहीं है। ये तो केवल दूसरों के कार्य का प्रायश्चित्त कर रहे हैं।"

अपूर्व ने कहा, "न, इन लोगों ने नहीं बनाया, मैंने बनाया है। लड़की की बात सुनी? उसकी माँ जैसे कहीं तीर्थयात्रा करने गई हो। निर्लज्ज, बेहया, नीच! फिर कभी यहाँ आप आईं तो अच्छा न होगा, कहे देता हूँ।"

भारती ने जरा हँसते हुए कहा, "मैं तो म्लेच्छ ईसाई हूँ, यहाँ आने से मुझे क्या दोष है?"

अपूर्व ने क्रोध में कहा, "दोष नहीं? ईसाइयों के लिए क्या अच्छी-बुरी बात नहीं? अपने समाज में उन्हें क्या कोई जवाबदेही नहीं करनी पड़ती?"

भारती ने उत्तर दिया, "कौन है मेरा जो जवाबदेही करनी पड़ेगी? किसका सिर फिरेगा मेरे लिए, आप बताइये?"

अपूर्व को सहसा कोई उत्तर नहीं सूझा। बोला, "यह सब आपकी चालाकी है, आप घर चलिए।"

"मुझे और भी कई स्थानों पर जाना है। आपको अच्छा न लगे तो आप चले जाइए।"

"चले जाइए कहते ही क्या मैं आपको यहाँ छोड़कर चला जा सकता हूँ?"

"फिर साथ में रहिए। मनुष्य पर मनुष्य कितना अत्याचार कर रहा है, इस बात को आँखें खोलकर देखना सीखिए। केवल छुआछूत बचाकर आपने सोचा होगा कि स्वयं साधु बनके रहेंगे और अकेले ही पुण्य सचय करके स्वर्ग जाएँगे, क्यों? ऐसा ध्यान भी न कीजिएगा।" कहते-कहते भारती का चेहरा कठोर और गले का स्वर तीक्ष्ण हो उठा। इस मूर्ति और स्वर से अपूर्व काफी परिचित था।

भारती ने कहा, "उस लड़की की माँ और जदुनन्दन ने जो अपराध

किया है, यह क्या केवल उन्हीं को दण्ड देने से समाप्त हो जाएगा ? क्या आप उनके कोई नहीं हैं ? यह कदापि नहीं हो सकता। डॉक्टर बाबू को न जानने तक मैं भी ठीक ऐसा ही सोचती थी, परन्तु आज मैं निश्चित जानती हूँ कि इस नरक-कुण्ड में जितना पाप इकट्ठा होगा, उसका भार आपको भी स्वर्ग के दरवाजे से बाहर घसीट लाएगा और इस नरक-कुण्ड में दबा देगा। मजाल क्या है कि आप इस बुराई का ऋण चुकाये बिना छुटकारा पा जाएँ। हम सब अपनी ही गरज से आते हैं अपूर्व बाबू, इस बात का अनुभव करना ही हमारी अधिकार-समिति की सबसे बड़ी साधना है। चलें ?"

अपूर्व निरीह और निस्पृह की भाँति बोला, "चलिए।"

भारती की बात न तो वह समझ ही सका और न उस पर उसे विश्वास ही हुआ।

कुछ दूरी पर एक साखू का पेड़ था। भारती ने उँगली से दिखाते हुए कहा, "सामने कई घर बंगालियों के हैं—चलेंगे ?"

अपूर्व ने पूछा, "बंगालियों के सिवा अन्य देशवासियों में आप लोग काम नहीं करतीं ?"

भारती ने कहा, "करती हूँ। सभी की हमें आवश्यकता है, मगर सुमित्रा बहन के सिवा और कोई तो उन सबकी भाषा जानता नहीं। वे स्वस्थ होतीं तो यह काम उन्हीं का है, मेरा नहीं।"

"वे भारत की सभी भाषाएँ जानती हैं ?"

"हाँ।"

"और डॉक्टर बाबू ?"

भारती ने हँसकर कहा, "डॉक्टर बाबू के विषय में आपको बड़ी जिज्ञासा है ! इस बात पर आप विश्वास क्यों नहीं कर सकते कि संसार में जो कुछ जाना जा सकता है, वे सब जानते हैं, और जो कुछ किया जा सकता है, वे सब करते हैं। किसी ने उनका 'सव्यसाची' नाम रखा था, हम लोग नहीं जानतीं, मगर इतना कह सकती हूँ कि उनके लिए संसार में शायद ही कोई बात असाध्य और अज्ञात हो।" यह कहती हुई वह अपने मन से आगे चलने लगी। परन्तु उसके पीछे अपूर्व सहसा ठिठककर खड़ा हो गया और

एक गहरी साँस लेता हुआ किसी गहरे विचार में पड़ गया।

अचानक यह बात उसके हृदय में घुमड़ उठी कि इस अभागे पराधीन देश में इतने बड़े महान् प्राणों का कोई मूल्य नहीं। चाहे जिसके हाथ से किसी भी क्षण ये कुत्ते की मौत मर सकते हैं। संसार के नियम में इतना बड़ा निष्ठुर अन्याय क्या और हो सकता है? भगवान् मंगलमय! यही दिन सच हो, तो यह किसके और किस पाप का दण्ड है?

दोनों एक घर में घुसे।

भारती ने पुकारा, "पाँचकौड़ी, कैसी तबीयत है आज?"

अँधेरे कोने में से उत्तर आया, "आज जरा अच्छा हूँ।" और एक बूढ़ा-सा आदमी दाहिना हाथ ऊँचा किये सामने आ खड़ा हुआ। उसके शरीर पर कई स्थान पर लेप लगे हुए थे, "बेटी, लड़की को तो खून के दस्त हो रहे हैं, शायद जीयेगी नहीं। लड़के को भी कल से जोर का बुखार है, अचेत पड़ा है। हाथ मे एक पैसा तक नहीं कि दवा या साबूदाना मँगवाकर खिलाता।" यह कहते उसकी आँखों में आँसू भर आये।

अपूर्व के मुँह से निकल पड़ा, "पैसे क्यों नही हैं?"

कुछ देर तक इस अपरिचित आदमी की तरफ देखने के बाद उसने कहा, "पुली की साँकल से इस दाहिने हाथ में जख्म हो गया है, महीने-भर से काम-धन्धा कुछ कर नहीं सकता, पैसे कहाँ से आवें बाबू साहब?"

अपूर्व ने पूछा, "कारखाने के मैनेजर कुछ प्रबन्ध नहीं करते?"

पाँचकौड़ी ने बायाँ हाथ कमर पर रखते हुए कहा, "हाय-हाय! रोज के मजूर के लिए कौन प्रबन्ध करता है? ऊपर से कह रहा है कि काम नहीं कर सकते तो घर खाली कर दो—जब अच्छे हो जाओ तब आना, काम मिल जाएगा। ऐसी दशा में कहाँ जाऊँ, आप ही बतलाइये बाबू साहब? छोटे साहब के हाथ-पाँव जोड़कर अधिक-से-अधिक हफ्ते-भर और रह सकूँगा। बीस साल से काम कर रहा हूँ बाबूजी, ये लोग ऐसे स्वार्थी हैं!"

अपूर्व के शरीर में आग लग गई। उसकी ऐसी इच्छा होने लगी कि मैनेजर को यदि पा जाए, तो वह उसे यहाँ लाकर दिखावे कि देखो, अच्छे दिनों में जिन लोगों ने लाखों रुपये पैदा कराये हैं, आज बुरे दिनों में उनको कितने दुःख सहने पड़ रहे हैं।

कलकत्ते में अपूर्व के मकान के पास बैलगाड़ियों का एक अड्डा था, इस समय उसे उसकी याद आ गई—एक जोड़ी बैल, जो जिन्दगी-भर गाड़ी खींच-खींचकर अन्त में बूढ़े हो गए थे, उस गाड़ीवान ने कसाई के हाथ बेच दिये। इस हृदयहीनता को दूर करने का दूसरा कोई उपाय नहीं, लोग कुछ करते नहीं, और कोई करना भी चाहे तो सब उसे पागल बताकर हँसी में उड़ा देते हैं। उस मार्ग से जब कभी वह निकलता है, इस बात का ध्यान करके उसकी आँखों में आँसू भर आते हैं। बैलों के लिए नहीं, धन की इस प्यास के लिए जो आदमी को इतना बर्बर, निष्ठुर बनाकर प्रतिदिन पतन की ओर ले जा रही है।

सहसा भारती की बात याद करके वह मन-ही-मन कहने लगा, 'ठीक ही तो है', 'कौन कहाँ क्या कर रहा है', 'न मालूम', 'मैं तो नहीं करता', 'ऐसा ही हुआ करता है', 'सदा से यही होता आया है', आदि कहने से ही तो इतने बड़े पापों की जवाबदेही से छुटकारा नहीं मिल सकता। बैल और घोड़े—ये तो कारण-मात्र हैं। यह अभागा पाँचकौड़ी भी एक कारण है। जो अपनी हत्या से अपने को बचा नहीं सकते, अपने कष्टों से जो कमजोर हैं, जो निरुपाय लाचार हैं, जिन्हें आदमी होकर भी हम अपनी सज्जाहीन वंचना और क्रूर हृदयवृत्ति से धीरे-धीरे मार रहे हैं—सबल का यह जो आत्महत्या का अहोरात्रव्यापी उत्सव चल रहा है, इसकी बत्ती कब बुझेगी? इस सत्यानाशी मतवालेपन का अन्त किस प्रकार होगा? मरण के पहले क्या उनका ?

कोठरी के एक किनारे ज्ञान नहीं जागेगा। चिथड़ों पर दोनों बच्चे मुरदे के समान पड़े हुए थे।

भारती पास जाकर उनके शरीर पर हाथ धरकर परीक्षा करने लगी।

अपूर्व मारे भय के वहाँ न जा सका, परन्तु दरिद्र और पीड़ित दोनों बच्चों का मूक दुःख उसके हृदय पर हथौड़े की तरह चोट करने लगा। वह वहीं खड़ा-खड़ा उच्छ्वसित आवेग के साथ मन-ही-मन कहने लगा, 'लोग कहते हैं, यही दुनिया है। इसी तरह तो दुनिया के सब काम सदा से होते आये हैं!—मगर यह क्या कोई उपाय है? मनुष्य क्या केवल अपने पुराने ... लेकर ही अचल बना रहेगा? किसी नई बात की क्या वह कल्पना

नहीं करेगा? उन्नति करना क्या वह भूल चुका है? जो अतीत हैं, जो मर चुके हैं, केवल उन्हीं की इच्छा, उन्हीं का विधान मनुष्य के सम्पूर्ण भविष्य, सम्पूर्ण जीवन और उन्नति करने के समस्त द्वारों को बन्द करके हमेशा उस पर अपना प्रभुत्व करता रहेगा?'

"चलें?"

अपूर्व ने चौंककर देखा, भारती है। पाँचकौड़ी चुपचाप उदास खड़ा था, भारती उससे स्निग्ध स्वर में कह रही थी, "डरो नहीं, सब अच्छे हो जाएँगे। कल सवेरे ही मैं डॉक्टर, दवा-दारू सब भेज दूँगी—"

अपूर्व उसकी बात समाप्त होने से पहले ही जेब में हाथ डालकर रुपया निकाल रहा था कि भारती ने हाथ बढ़ाकर इशारे से उसे रोक दिया। पाँचकौड़ी की निगाह दूसरी ओर थी, उसने यह नहीं देखा, परन्तु अपूर्व इसका कारण न समझ सका।

भारती ने फिर अपनी जेब में से चार आने पैसे निकालकर उसके हाथ में देते हुए कहा, "बच्चों के लिए चार पैसे की मिसरी, चार पैसे का साबूदाना और बाकी दो आने का चावल लाकर तुम इस वक्त का काम चला देना। कल सवेरे तुम्हारा प्रबन्ध कर दिया जाएगा। अब हम लोग जाते हैं।" यह कहकर भारती अपूर्व को साथ लेकर वहाँ से निकलकर सड़क पर आ गई।

अपूर्व ने रास्ते में क्षुब्ध होकर कहा, "आप बड़ी विचित्र हैं। मुझे भी नहीं देने दिया और स्वयं भी नहीं दिया।"

भारती ने कहा, "दे तो आई!"

"इसे 'दे आना' कहते हैं? उसकी इस बुरी अवस्था में पाई-पैसों का हिसाब करके चार आने देना तो उसका अपमान करना है!"

भारती ने पूछा, "आप कितना दे रहे थे?"

अपूर्व ने कुछ तय नहीं किया था, सम्भवत: जो हाथ में पड़ता वही दे देता, परन्तु अभी उसने सोचकर कहा, "कम-से-कम पाँचेक रुपये।"

भारती ने दाँतों तले जीभ दबाकर कहा, "अरे बाप रे! आप तो सब मिट्टी ही कर देते। बाप तो शराब पीकर रात-भर बेहोश पड़ा रहता और बच्चे दोनों समाप्त हो जाते!"

"शराब पीता ?"

"पीता नहीं ? हाथ में रुपये आ जाने पर शराब न पीये, ऐसे असाधारण व्यक्ति इस संसार में कितने हैं ?"

क्षण-भर अभिभूत की भाँति मौन रहकर अपूर्व बोला, "आपको तो सब बातों में हँसी सूझती है। बीमार बच्चों के इलाज के रुपयों को बाप शराब पी जायेगा, क्या यह भी सच हो सकता है ?"

भारती ने कहा, "सच न हो तो आप जिस देवता की शपथ खाने को कहेंगे—माँ मनसा, ओला बीबी—" और वह सहसा हँस पड़ी, किन्तु उसी पल अपने को सम्हालकर बोली, "नहीं तो दाता का हाथ दबाकर दुखी को कुछ पाने से रोक देती, सच कहिए, क्या मैं इतनी ओछी हूँ ?"

अपूर्व ने पूछा, "इन बच्चों की माँ नहीं है ?"

"ना।"

"कहीं कोई अपना कुटुम्बी या सम्बन्धी भी न होगा ?"

भारती ने कहा, "हो भी, तो काम नहीं आने का। दस-बारह साल पहले पाँचकौड़ी एक बार अपने देश गया और वहाँ से एक पड़ोसी की विधवा को उड़ाकर ले आया था। लड़की-लड़के उसी के हैं। दो साल हुए, वह गले में फाँसी लगाकर मर गई—यही पाँचकौड़ी की संक्षिप्त कहानी है।"

एक दीर्घ निःश्वास लेकर अपूर्व ने कहा, "सचमुच ही नरक-कुण्ड है।"

भारती ने अत्यन्त स्वाभाविक स्वर में सिर हिलाते हुए कहा, "इसमें रत्ती-भर भी संदेह नहीं। पर कठिनाई यह है कि ये सब अपने ही भाई-बहन हैं। खून का सम्बन्ध अस्वीकार करने से ही रिहाई नहीं मिल सकती अपूर्व बाबू, ऊपर बैठे हुए जो विचारक सबकुछ देख रहे हैं, वे एक-एक कौड़ी का हिसाब ले लेंगे, तब छोड़ेंगे !"

अपूर्व ने गम्भीर होकर कहा, "अब मालूम होता है, बिल्कुल असम्भव नहीं।" क्षण-भर पहले इसी पाँचकौड़ी के घर में खड़े-खड़े उसने जो-जो बातें सोची थीं, वे सब बिजली के समान एकाएक फिर उसके मन में दौड़ने लगीं।

"हम सबके आदमी हैं, तो हम पर भी दायित्व तो है ही।"

भारती अनुमोदन करते हुए बोली, "आरम्भ में मुझे भी दिखाई न देता था, क्रोधित होकर लड़ा करती थी, पर अब स्पष्ट दिखाई देने लगा है अपूर्व बाबू कि इन सब अज्ञानी, दुःखी, दुर्बल-चित्त भाई-बहनों के माथे इस अमाप पाप का बोझ कौन दिन-रात लाद रहा है !"

एक उड़िया मिस्त्री पास की कोठरी में रहता है। उसकी बगल वाली कोठरी में बीच-बीच में जोर की हँसी और शोर-गुल सुनाई दे रहा था। पाँचकौड़ी की कोठरी में से भी वह सुनाई पड़ता था। दोनों उसी कोठरी में जा पहुँचे।

भारती को सब जानते थे। उसका सबने एक साथ ही स्वागत किया। एक आदमी झट से उठकर इन दोनों के बैठने के लिए एक स्टूल और एक बेंत का मोढ़ा उठा लाया।

लकड़ी के फर्श पर बैठे हुए छह-सात मर्द और आठ-दस औरतें मिलकर शराब पी रही थीं। एक टूटा-सा हारमोनियम और एक बायाँ तबला बीच में पड़ा था। नाना प्रकार की छोटी-बड़ी रंग-बिरंगी रीती बोतलें चारों ओर लुढ़क रही थीं, एक बूढ़ी-सी औरत अधिक नशा हो जाने के कारण एक ओर इस प्रकार पड़ी हुई थी कि उसे नंगी भी कहा जा सकता था। माठ से लेकर पच्चीस वर्ष तक के सभी उम्र के स्त्री-पुरुष शामिल थे। आज रविवार था, छुट्टी का दिन ठहरा। प्याज-लहसुन की तरकारी की और साथ-साथ सस्ती जर्मन शराब की असह्य दुर्गन्ध अपूर्व की नाक में जाते ही उसका जी मिचलाने लगा।

एक कम आयु की औरत के हाथ में शराब का गिलास था—शायद वह नितरी थी—उसने बायें हाथ से अपनी नाक दबाकर बड़ी मुश्किल से शराब का गिलास अपने मुँह में उड़ेल लिया और तख्तों की संध में से लगी बार-बार थूकने।

एक मर्द ने जाकर झटपट उसके मुँह में तरकारी ठूँस दी। एक भारतीय स्त्री को अपनी आँखों के सामने शराब पीते देख अपूर्व एकदम हक्का-बक्का-सा हो गया। परन्तु उसने कनखियों से भारती के चेहरे की ओर दृष्टि की तो देखा कि इतने बड़े भयानक वीभत्स दृश्य से भी उसके चेहरे पर किसी प्रकार विकृति का चिह्न तक नहीं।—यह सब वह सह गई। मगर कुछ देर

बाद घर-मालिक की फरमाइश से दुनियों ने जब गाना शुरू किया, 'कलिया मसल गई' और उसकी बगल वाला आदमी हारमोनियम खींचकर यों ही उसकी एक चाबी दबाकर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा, तब इतनी ज्यादती भारती से शायद सही नहीं गई। वह उदास होकर कह उठी, "मिस्त्री साहब, कल हम लोगों की सभा है, भूले न होंगे? सबको पहुंचना ही चाहिए।"

"अवश्य, अवश्य दीदी!" कहता हुआ कालीचरन एक गिलास शराब गटक गया।

भारती ने कहा, "बचपन में पढ़ा है न, एक-एक मूंज बटकर रस्सा बनाया जाता है। सबके एक हुए बिना तुम लोग कभी कुछ नहीं कर सकते। केवल तुम्ही लोगों की भलाई के लिए सुमित्रा दीदी कितनी मेहनत कर रही हैं।"

इस बात पर सबने सहमति जाहिर की।

भारती कहने लगी, "तुम लोगों के बिना क्या इतना बड़ा कारखाना एक रोज भी चल सकता है? तुम्हीं लोग तो सच्चे मालिक हो, यह तो सीधी-सी बात है कालीचरण, इतना भी तुम लोग न समझोगे तो कैसे काम चलेगा?"

सब कोई बोल उठे, "ठीक बात है, ठीक बात है। हम लोगों के बिना सब व्यर्थ—चारों ओर ही अन्धकार है।"

भारती ने कहा, "फिर भी तुम लोगों को कितना कष्ट है, ज़रा सोचकर तो देखो! जब-तब बिना दोष के तुम लोगों को लात-जूता मारकर निकाल दिया जाता है। इसी बगल की कोठरी में देखा—काम करते-करते पांचकौड़ी का हाथ टूट गया, जिससे आज वह भूखों मर रहा है, उसके बच्चे एक बूंद दवा को भी तरस रहे हैं, खाने को पथ्य नहीं मिलता, बेचारे भूखों मर रहे हैं। बड़ा साहब कोठरी से भी निकाल देना चाहता है। ये लोग जो करोड़ों रुपये कमा रहे हैं, सो किसकी बदौलत? और तुम लोगों को क्या मिलता है उसमें से?—उस दिन श्यामलाल को छोटे साहब ने धक्का देकर गिरा दिया, वह आज भी अस्पताल में पड़ा सड़ रहा है—यह सब तुम लोग क्यों सहन करते हो? एक बार साथ खड़े होकर कहो, 'यह अत्याचार अब नहीं होंगे', फिर देखें कैसे वे तुम्हारे बदन पर हाथ उठाते हैं? सिर्फ एक बार—बार अपनी सच्ची शक्ति को बताओ। कालीचरन!"

एक मतवाला अब तक सुन रहा था। बोला, "बाबा, हम कर क्या नहीं सकते? ऐसा एक पेच ढीला छोड़ दे सकते हैं कि धड़-धड़ धड़ाम!--बस! आधा कारखाना ही हवा हो जाय!"

भारती भयभीत हो गई। बोली, "ना-ना, दुलाल, ऐसा करने की आवश्यकता नहीं। ऐसा मत करना। उससे तुम्हीं लोगों की हानि है। शायद बहुत-से आदमी मारे जाएँ--शायद--ना-ना, ऐसी बात सपने में भी न सोचना। यह बड़ा पाप है!"

दुलाल झूमता हुआ बोला, "नहीं जी--सो क्या मैं समझता नहीं! मैं तो एक बात की बात कह रहा हूँ कि हम लोग क्या कर सकते हैं!"

भारती कहने लगी, "तुम लोगों को सत्य मार्ग पर, सच्चे रास्ते पर खड़े होना चाहिए। उसी से तुम्हें सबकुछ मिल जाएगा। उन लोगों पर जो तुम्हारे रुपये लेने हैं--उन्हीं को पाई-पाई लेना है।"

औरत-मर्द सब मिलकर चिल्लाने लगे।

भारती ने कहा, "शाम हो रही है, अभी और एक स्थान पर जाना है, इसलिए जा रहे हैं, मगर कल की बात तुम लोग बिलकुल नहीं भूलना।" इतना कहकर वह उठ खड़ी हुई।

कालीचरन के घर की यह बेहूदी धींगामस्ती अपूर्व को बहुत ही बुरी मालूम हुई, परन्तु अन्त में चलते-चलते जो बातें हुईं, उनसे तो उसके क्रोध का ठिकाना ही न रहा। उसने बाहर आकर क्रोध के साथ कहा, "ये सब बातें तुमने इन लोगों से क्यों कहीं?"

भारती ने जरा आश्चर्य के साथ पूछा, "कौन-सी बातें?"

अपूर्व ने उसी प्रकार क्रोध से कहा, "ये लोग नालायक, निकम्मे, शराबी ठहरे। दुलाल था या कौन--उसने क्या कहा, सुना? मान लो, यह बात कहीं साहब के कान तक पहुँच गई तो?"

"साहब के कान तक पहुँचेगी कैसे?"

"अरे, ये ही लोग कह देंगे। इन सबको क्या तुमने युधिष्ठिर समझ रखा है? शराब के नशे में कब क्या कर डालें, कोई ठीक है! तब तुम्हारे ही ऊपर दोष आयेगा! हो सकता है कि वह [illegible]

"यह तो झूठ है!"

अपूर्व अधीर होकर कहने लगा, "झूठ! अरे, अंग्रेजी राज्य में झूठी बात पर क्या कभी किसी को सज़ा नहीं मिलती? राज्य ही तो झूठी बात पर खड़ा हुआ है!"

भारती ने कहा, "तो मुझे भी सज़ा हो जाएगी।"

अपूर्व ने कहा, "तुमने कह दिया, सज़ा हो जाएगी। ना-ना, यह सब नहीं होगा। यहाँ तुम्हारा आना हरगिज़ नहीं हो सकता—हरगिज़ नहीं!"

कुछ दूर आगे एक आदमी के मिलने की आवश्यकता थी, पर दरवाज़े पर ताला लगा देखकर दोनों उसी मार्ग से वापस लौट पड़े।

कालीचरन के घर के सामने आकर देखा, 'पनिया भरन गई' गाना हो गया है, और उसके बदले बकवास शुरू है। एक औरत नशे में चूर होकर अपने पति के शोक में रो रही है, कोई लाभ नहीं—यही फिर मेरा सबकुछ हो जायगा। तू मन्नत मानकर हर पूनो को सत्यनारायण की कथा करना। कई आदमी इस बात पर झगड़ा कर रहे हैं कि ये ईसाई औरतें कारखाने में हड़ताल कराना चाहती हैं, हड़ताल होने से हमारी तबाही का ठिकाना न होगा—इन लोगों को अब इस लाइन में नहीं आने देना चाहिए।

कालीचरन मिस्त्री समझाकर कह रहा था, "मैं कोई बेवकूफ नहीं हूँ, इन लोगों का सिर्फ रंग-ढंग देख रहा हूँ।"

एक अत्यन्त होशियार औरत ने सलाह दी—"बच्चा साहब को अभी से होशियार कर देना चाहिए।"

वहाँ से भारती को बरबस खींच ले जाकर अपूर्व ने तीक्ष्ण आवाज़ में कहा, "और करेंगी इन लोगों की भलाई?—नमकहराम हैं, हरामज़ादे! पाजी! बदमाश! उफ्—बगल की कोठरी में दो अनाथ बच्चे मर रहे हैं, कोई उधर आँख उठाकर देखता तक नहीं! नरक और कहाँ होगा!"

भारती ने उसके मुँह की ओर ताककर कहा, "अचानक ही क्या हो गया आपको?"

अपूर्व ने कहा, "मुझे कुछ नहीं हुआ, मैं जानता था। मगर तुमने सुना [illegible], बताओ?"

भारती ने कहा, "नई कोई बात नहीं, ऐसी बातें तो हम नित्य ही सुना [illegible]"

अपूर्व गरजकर बोला, 'ऐसी नादानी ? इतनी कृतघ्नता ? इन्हें चाहती हो तुम अपने दल में मिलाना ? इनकी ही भलाई करना चाहती हो क्या ?"

भारती के स्वर में किसी प्रकार उत्तेजना नहीं आई, बल्कि वह जरा मलीन हँसी हँसकर बोली, "ये लोग कौन हैं अपूर्व बाबू ? ये लोग भी तो हम ही हैं। इस छोटी-सी बात को ज्यों ही आप भूल जाते हैं त्योंही गड़बड़ी में पड़ जाते हैं। 'भलाई करना' यदि संसार में कोई शब्द हो, और उसकी यदि कहीं आवश्यकता हो तो यही पर है। अपूर्व बाबू ! भलाई डॉक्टर साहब की तो की नहीं जा सकती ?"

अपूर्व ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

दोनों जने चुपचाप फाटक से बाहर आकर फिर उसी बर्मी मुहल्ले के भीतर से बड़ी सड़क पर आ गये।

संध्या बीत चुकी थी, गृहस्थों के घर बत्तियाँ जल रही थीं। सड़क के दोनों किनारे रात-दुकानें लग चुकी थीं और उनमें बिक्री हो रही थी। उसके बीच में होकर भारती जरा-सा घूँघट मारकर जल्दी-जल्दी चलने लगी। बस्ती समाप्त होकर जब मैदान शुरू हुआ तो सड़क के मोड़ पर भारती ने पीछे की ओर देखकर अपूर्व से कहा, "यदि आप जाना चाहें तो यह सड़क गई है दाहिनी ओर सीधी शहर को।"

अपूर्व अनमना-सा बोला, "क्या कहा आपने ?"

भारती ने कहा, "अब आपका मिजाज ठीक हुआ है। ठीक सम्बोधन के शब्द याद आ गये ?"

"इसके मानी ?"

"इसके मानी, क्रोध में अब तक 'आप' और 'तुम' का भेद भूल गये थे। अब चेत आया आपको।"

अपूर्व ने अत्यन्त लज्जित होकर स्वीकार करते हुए कहा, "आप अप्रसन्न तो नहीं हुईं ?"

भारती हँस पड़ी। बोली, "यदि हो भी जाऊँ तो क्या हानि है ? चलें।"

अपूर्व ने फिर कोई आपत्ति नहीं की। आज उसके मन में बहुत-सी आग धक्-धक् जल रही थी। उन शराबियों की बातों को वह किसी

प्रकार भूल ही नहीं रहा था।

सहसा चलते-चलते कटु स्वर में बोल उठा, "यह सब सुमित्रा का काम है, आपको यहां सरदारी करने जाने की क्या आवश्यकता है? कौन जाने कहां कोई कब क्या कर बैठे।"

भारती ने कहा, "कुछ नहीं होगा।"

अपूर्व ने कहा, "वाह जी, होने दीजिए! असल बात यह है कि सरदारी करना आपका स्वभाव है। मगर इसके लिए और भी बहुत स्थान हैं।"

"एक दिखा न दीजिए!"

"मुझे क्या पड़ी है!"

यहां पर मरम्मत के लिए सड़क खुद रही थी। जाते समय दिन में कोई कठिनाई नहीं हुई, मगर अब दोनों ओर पेड़ों की छाया से और भी अधिक अँधेरा हो जाने से मार्ग दुर्गम हो गया था। भारती ने अपना हाथ बढ़ाकर अपूर्व का बायां हाथ जोर से पकड़ लिया। बोली, "स्वभाव तो मेरा बाहर नहीं अपूर्व बाबू, कोई काम तो चाहिए ही। लेकिन, आप जैसे अनाड़ी पर यदि सरदारी पा जाऊं तो और सब काम छोड़-छाड़ दूं।"

"आपके साथ बातों में नहीं जीत सकता।" वह सावधानीपूर्वक चलने लगा।

१४

दूसरा दिन!

तीसरा पहर!

सुमित्रा की अध्यक्षता में फयार मैदान में जो सभा हुई, उसमें उपस्थिति कम थी। यहां तक कि जिन वक्ताओं ने व्याख्यान देने का वचन दिया था, बहुत-से नहीं आ सके। कितने ही कारणों से सभा का काम चालू करने में देर हो गई और प्रकाश का प्रबन्ध न होने से शाम होते ही वह भंग भी कर देनी पड़ी।

सुमित्रा के व्याख्यान के सिवा शायद उस सभा में कहने योग्य कुछ भी न

हो सका। परन्तु इसमें अधिकार-समिति के इस प्रथम प्रयास को व्यर्थ नहीं कहा जा सकता। मजदूरों में चारों ओर एक-दूसरे के द्वारा बात फैल गई, साथ ही कारखाने के मालिकों के कानों तक पहुँचने में भी देर न लगी।

जैसे भी हो, चारों ओर यह खबर उड़ गई कि कोई एक बंगाली स्त्री सारी दुनिया घूम-घामकर अन्त में बर्मा आ पहुँची है—जैसा उसका रूप है, वैसी ही शक्ति। किसकी शक्ति है जो उस रोके! कैसे वह साहबों के कान पकड़कर मजदूरों के लिए सब तरह के आराम वसूल कर लेगी और उनकी मजदूरी के पैसे दूने करवा देगी। यह सब उसने अपने ही मुँह से आम सभा में सबको कह सुनाया है। इसलिए जो लोग सूचना न मिलने से उस दिन सभा में नहीं पहुँच पाये हैं, वे आगामी शनिवार को फयार मैदान में अवश्य पहुँचें।

बीस-पच्चीस कोस के क्षेत्र में जितने भी कारखाने थे, उन सबमें यह बात दावानल की तरह फैल गई।

उस दिन सुमित्रा को कुछ ही आदमियों ने आँखों से देखा होगा, किन्तु उसके रूप और शक्ति की ख्याति फैलकर—यहाँ तक कि क्रूर होकर जब लोगों के कानों तक पहुँची तो अशिक्षित मजदूरों में सहसा मानो एक प्रकार का जागरण-सा हो उठा।

संसार में जो हमेशा से अत्याचार से दबे हुए हैं, पीड़ित हैं, दुर्बल हैं, और इसीलिए मनुष्य के स्वाभाविक अधिकार से बलवानों द्वारा वंचित कर दिये गए हैं—अपने पर विश्वास करने का दुनिया में कोई कारण जिन्हें ढूँढ़े नहीं मिलता—देवता और दैव के प्रति उन्हीं का विश्वास सबसे अधिक होता है। अतः सुमित्रा के विषय में फैली हुई अफवाह उन्हें असंगत नहीं मालूम हुई—एक दिन की नागा करके फयार मैदान में जाना ही होगा। उनकी बात और उपदेश में ऐसा कोई पारस-पत्थर हो जिससे मजदूरों का दुर्भाग्य रातोंरात सौभाग्य की दीप्ति से चमक उठे, ऐसी दुर्लभ वस्तु को प्राप्त करना ही चाहिए।

शाम की उस दिन की सभा में वक्ताओं के अभाव में अपूर्व जैसे अनाड़ी को साग्रह-अनुरोध दो-चार शब्द कहने पड़े थे। उसे सभा में बोलने का अभ्यास नहीं था, जो बोला भी था वह बिल्कुल व्यर्थ था और उसके

लिए वह मन-ही-मन बहुत अधिक लज्जित भी हुआ था।

आज जब उसे सहसा सूचना मिली कि उन लोगों के उस दिन के व्याख्यान व्यर्थ नहीं गए, बल्कि यहाँ तक फल हुआ कि उनकी आगामी सभा में कारखानों का काम तक बन्द करके मजदूरों ने उपस्थित होने का दृढ़ संकल्प कर लिया है, तो बड़ाई और आत्म-प्रसाद के आनन्द से उसकी छाती भीतर से मानो फूली न समाई।

उस दिन अपने वक्तव्य को साफ-साफ नहीं कह सका था, मगर उसका भय जाता रहा था। बहुत-से आदमियों के बीच में खड़े होकर जनता को सम्बोधन करके बोलने में जो एक प्रकार का नशा है, उसका उसे स्वाद मिल चुका था। आज ऑफिस में आते ही सुमित्रा की चिट्ठी में अनेक प्रशंसा-वाक्यों के साथ आगामी सभा मे भी दुबारा व्याख्यान देने के लिए जो निमंत्रण मिला, उससे वह मारे उत्तेजना के चंचल हो उठा और ऑफिस के काम में मन न लगा सका। मन-ही-मन वह इस बात की तैयारी करने लगा कि किस प्रकार प्रभावशाली ढंग से व्याख्यान प्रस्तुत किया जा सकता है।

दोपहर को टिफिन के समय उसने सहसा रामदास से सारी बातें कह दीं।

एक दिन उसी के लिए रामदास ने भारती का अपमान किया था, तब से उसके साथ मेरा जरा भी सम्बन्ध है, यह कहने में उसे शर्म आती थी। जिस दिन अदालत में जुर्माना हुआ था, उसे अब तक कई दिन हो चुके थे। इस बीच वह उद्दण्ड-बर्बर साहब मर चुका है, उसकी बंगालिन स्त्री मर चुकी है और उसकी वह क्रिश्चियन लड़की भी मकान छोड़कर अन्यत्र कहीं चली गई है—केवल इतना ही रामदास को ज्ञात था।

इसी अरसे में उस मकान को छोड़कर गई हुई लड़की के साथ घनिष्ठता से उसके मित्र के जीवन में कितने गहरे दुःख का इतिहास तैयार होता चला आ रहा था, उसे इस बात का कोई पता नहीं था।

आज जब प्रसन्नता की अधिकता में अपूर्व ने मुँह से सभी बातें निकाल दीं, तो रामदास उसके मुँह की ओर देखकर चुप मारे बैठा रहा।

भारती, सुमित्रा, डॉक्टर, नवतारा, यहाँ तक कि उस शराबी तक का ... करके अब तक वह अपनी अधिकार-समिति के कार्य और ...

वर्णन करके उस दिन भी कुली-लाइन में घूमने की बात एक-एक करके कहता रहा, तब तक रामदास ने एक भी प्रश्न नहीं किया।

इस बात का ध्यान करके कि किसी दिन देश के लिए इस आदमी ने जेल की सजा भुगती है, बेंतों की मार सही है, और भी न जाने कितने अत्याचार सहे हैं, अपूर्व रामदास पर श्रद्धा रखता आया है। ये सब बातें रामदास के मुँह से सिर्फ एक दिन के सिवा और किसी दिन उसके सुनने में नहीं आईं, फिर भी उन्हें अपनी कल्पना से बड़ा करके, ऑफिस में बड़ा होता हुआ भी अपूर्व हमेशा ही अपने को रामदास से छोटा समझता आया है।

रामदास उसका मित्र है—मित्र के प्रति उसका विद्वेष नहीं था, फिर भी बड़े और छोटे का भाव वह अपने मन से किसी तरह दूर नहीं कर पाता था। इस तरह इन दो मित्रों की घनिष्ठता के बीच भी व्यवधान की प्राचीर खड़ी हो गई थी।

अब सुमित्रा का पत्र रामदास की आँखों के सामने रखकर अधिकार-समिति के विशिष्ट सदस्य और देश के काम में नियोजित सेवक के रूप में अपने को व्यक्त करके अपने मित्र के समकक्ष क्षण-भर में सिर से हीनता का बोझ उतार बैठा।

पत्र अंग्रेजी में लिखा हुआ था।

तलवरकर ने उसे दो बार चुपचाप आद्योपान्त पढ़ा और मुँह उठाकर कहा, "बाबूजी, ये सब बातें आपने मुझसे एक दिन भी नहीं बतायीं?"

अपूर्व ने कहा, "कहने से भी आप शामिल हो सकते थे?"

तलवरकर ने कहा, "यह बात आप क्यों पूछ रहे हैं? आपने शामिल होने के लिए बुलाया ही कहाँ?"

अपूर्व के कानों में उसके स्वर में अभिमान की ध्वनि थी जो स्पष्ट रूप में जा खटकी। उसने कुछ देर चुप रहकर कहा, "इसका तात्पर्य है रामदास बाबू, आप तो जानते ही हैं, इन सब कामों में कितनी जबर्दस्त आशंका है। आपने विवाह किया है, आपके लड़की है, स्त्री है, आप गृहस्थी हैं—इसी से मैंने आपको इस आँधी-तूफान में सम्मिलित करना ठीक नहीं जाना।"

तलवरकर ने आश्चर्य के साथ कहा, "गृहस्थों को क्या देश की सेवा करने का अधिकार नहीं है? जन्मभूमि क्या सिर्फ आप ही लोगों की है, हम

चोरों की नहीं ?"

अपूर्व ने लज्जित होकर कहा, "मैंने ऐसा सोच नहीं किया तलवलकर, मैंने सिर्फ यही बात कही है कि आप विवाहित हैं, गृहस्थ हैं, आपके सिर पर काफी जिम्मेदारी है, इससे इस विदेश में इतनी बड़ी विपत्ति में पड़ना आपके लिए ठीक नहीं है।"

तलवलकर ने कहा, "कदाचित् !—ऐसा हो सकता है। मगर अपूर्व बाबू, पराधीन देश की सेवा करने का नाम ही तो विपत्ति है। इसका और कोई नाम नहीं, इस बात को मैं हमेशा से जानता हूँ। हिन्दुओं में विवाह करना धर्म है, पर मातृभूमि की सेवा करना उससे भी बड़ा धर्म है। एक धर्म दूसरे धर्म में बाधा पहुँचायेगा, यह अगर एक दिन के लिए भी समझता बाबूजी, तो मैं ब्याह ही नहीं करता।"

अपूर्व ने उसकी ओर देखकर कोई विरोध नहीं किया, वह चुप ही रहा। पर इस युक्ति का उसके मन ने समर्थन नहीं किया। किसी दिन अपने देश के काम में इस आदमी ने बहुत कष्ट सहे हैं और आज भी उसका वह तेज बिल्कुल बुझ नहीं गया है। जरा-सा प्रसंग पाते ही वह भीतर से भभक उठा है, इस बात का ध्यान करके अपूर्व मारे श्रद्धा के विगलित हो उठा। इससे ज्यादा सचमुच ही उसने और कोई आशा नहीं की। बुलाते ही वह अपने कुटुम्ब की ममता छोड़कर, उनके भरण-पोषण के मार्ग को कण्टकाकीर्ण करके, अधिकार-समिति का सदस्य बनने के लिए दौड़ा आयेगा। इन कई दिनों में ही उसकी स्वदेश-सेवा के अधिकारी की महत्त्वाकांक्षा इतनी ज्यादा ऊँची हो गई थी। सहसा इस प्रसंग को बन्द करके उसने आगामी सभा का कारण और उद्देश्य की व्याख्या करते-करते सरल स्वर से यह भी व्यक्त कर दिया कि मैंने अपने जीवन में सिर्फ एक दिन के सिवा और कभी व्याख्यान नहीं दिया।

सुमित्रा के निमन्त्रण की उपेक्षा तो मैं नहीं कर सकता, परन्तु एक ही बात बहुतों को सुनाने योग्य भाषा या अनुभव दोनों में से कुछ भी मुझमें नहीं है।

तलवलकर ने पूछा, "तब क्या करेंगे ?"

अपूर्व ने कहा, "व्याख्यान देने लायक अनुभव के नाम तो मुझे सिर्फ

एक ही दिन कारखाना देखने का अवसर मिला है। यहाँ के अधिकांश कुली-मजदूर पशुओं का-सा जीवन व्यतीत करते हैं, मगर क्यों और किसलिए, यह कुछ नहीं समझता।"

रामदास ने हँसते हुए कहा, "फिर भी आपको बोलना ही पड़ेगा।"

अपूर्व चुप रहा, परन्तु उसका मुँह देखकर साफ मालूम हुआ कि इतने बड़े मान को छोड़ देना उसके लिए बहुत कठिन है।

तब रामदास ने स्वयं ही कहा, "पर मैं इन लोगों के विषय में कुछ-कुछ जानता हूँ।"

"आपने कैसे जाना?"

"अपूर्व बाबू! मैं बहुत दिन इन लोगों में रहा हूँ। यदि आप एक बार मेरी नौकरी के सर्टिफिकेटों को देखेंगे, तो मालूम हो जाएगा कि मैंने कल-कारखानों में ही अधिक दिन बिताये हैं। और यदि आज्ञा दें, तो मैं इनके दुख की बहुत-सी कहानियाँ आपको सुना सकता हूँ। वास्तव में इन लोगों को बिना देखे तो देश के घाव के वास्तविक दर्द की जगह ही छूट जायेगी बाबूजी।"

अपूर्व ने लज्जा के साथ कहा, "सुमित्रा भी ठीक यही बात कहती हैं।"

रामदास ने कहा, "बिना कहे कोई चारा भी तो नहीं। इसी से वे अधिकार-समिति की संचालिका हैं। बाबूजी, आत्मत्याग का स्रोत तो कहीं है, देश-सेवा की बुनियाद उसी पर है, वहाँ तक न पहुँचने से आपका सारा प्रयत्न, सभी इच्छाएं मरुभूमि के समान दो ही दिन में सूख जायेंगी।"

ये बातें अपूर्व ने कुछ नई नहीं सुनीं। रामदास और कुछ कहना चाहता था पर अचानक परदा हटाकर साहब के भीतर आ जाने से दोनों चौंककर उठ खड़े हुए।

साहब ने अपूर्व से कहा, "मैं जाता हूँ। आपकी टेबल पर एक पत्र रख आया हूँ, कल ही उसका उत्तर देना आवश्यक है।"

वह उसी समय बाहर चला गया। दोनों ने घड़ी की ओर देखा तो घड़ी चार बजा रही थी।

१५

आज कुछ जल्दी ही ऑफिस की छुट्टी करके दोनों प्यार मैदान के लिए निकल पड़े।

पाँच बजे सभा शुरू होने की बात है, उसमें अब देर नहीं है। इधर कोई सवारी नहीं मिलती, अतः जरा तेजी से चले बिना ठीक समय पर पहुँचने में सन्देह है। मार्ग में अपूर्व ने कोई बातचीत नहीं की।

उसके जीवन का आज विशेष दिन है।

आशंका और आनन्द के कारण उसके मन में तूफान-सा उठ रहा था। कारीगरों और कुली-मजदूरों के विषय में उसने कुछ तो एक पुस्तक से और कुछ रामदास की बातों से अपने व्याख्यान का मैटर संग्रह कर लिया था, उसी को मन ही मन सजाता और दुहराता हुआ वह आगे चलने लगा।

सन् १८६३ ई० में बम्बई प्रान्त में कहीं पहले-पहल रूई का कारखाना खुला था। उसके बाद बढ़ते-बढ़ते आज कारखानों की संख्या कितनी हो गई है। तब कुली-मजदूरों की कैसी शोचनीय अवस्था थी—किस तरह उन्हें रात-दिन परिश्रम करना पड़ता था; और इस विषय में विलायत के रुई के कारखाने के मालिकों के साथ भारतीय मिल-मालिकों का पहले-पहल झगड़े का सूत्रपात हुआ और मिल-कानून किस सन् की किस तारीख को कैसी-कैसी बाधाएँ पार करता हुआ पास होकर पहले-पहल इस देश में लागू हुआ, उसमें क्या-क्या बातें थीं और अब वह कानून परिवर्तित होकर किस रूप में चल रहा है।

मजदूरों को संघ-बद्ध करने की कल्पना कब और किसने की, उसका फल क्या हुआ, विलायत और भारत के मजदूरों में अनीति और दुर्नीति की तुलनात्मक आलोचना करने से क्या फल निकलता है और उससे संसार में हानि-लाभ का पक्ष क्या निश्चित किया गया है, आदि-आदि।

सुबह-भाषा में से कहीं कोई मसला छूट न जाय, इस डर से वह बार-बार अपने को सावधान करता रहा। उसकी स्मरण-शक्ति तेज थी, बहुत-से इम्तहान देने से उसे अपने पर इतना भरोसा हो गया था। व्याख्यान दे-

देते बीच में सहसा वह कुछ भूल नहीं सकता, अतः उसके मुँह से जब अति जारम्भित वाक्यधारा कभी ऊँचे, कभी गम्भीर और कभी हुँकार शब्द से गरजती हुई समाप्त होगी, तब असंख्य श्रोताओं की तालियाँ शायद रोके न रुकेंगी।

सुमित्रा की प्रसन्न दृष्टि उसे स्पष्ट दिखाई देने लगी, और भारती?—इतने थोड़े-से समय में इतना ज्ञान और अनुभव मैंने कैसे प्राप्त कर लिया, इससे आनन्दपूर्ण आश्चर्य से उसका चेहरा उज्ज्वल और आँखों की दृष्टि सजल होकर एकमात्र उसकी ओर देखती रहेगी। इस दृश्य को अपनी कल्पना से देखकर अपूर्व की नसों में जोर से खून दौड़ने लगा। उसके साथ जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हुए चलना आज तलवरकर को भी कठिन मालूम होने लगा।

मैदान में पहुँचकर देखा कि वहाँ तिल रखने को भी स्थान नहीं। इतने आदमी इकट्ठे हुए हैं कि जिसका शुमार नहीं। उस दिन के वक्ता के नाते जिन लोगों ने अपूर्व को पहचान लिया, उन लोगों ने अपूर्व के लिए रास्ता छोड़ दिया; और जिन लोगों ने नहीं पहचाना, वे भी देखा-देखी हटकर खड़े हो गये।

भीड़ के बीचोबीच मंच था। डॉक्टर साहब अभी तक लौटे नहीं, इसीलिए उनके अलावा समिति के और सब सदस्य उपस्थित थे। मित्र को साथ लेकर अपूर्व किसी प्रकार भीड़ पार करके मंच तक पहुँच गया।

मंच पर एक बेंच अभी तक खाली थी। आँखों से इशारा करके सुमित्रा ने उन दोनों को उसी पर बैठने के लिए प्रार्थना की। मंच के सामने की ओर खड़ा होकर एक पंजाबी अत्यन्त ओजस्वी भाषण दे रहा था, शायद वह किसी कारखाने की नौकरी से निकाला हुआ मिस्त्री या और कोई कर्मचारी था।

अपूर्व के आ जाने से क्षण-भर वह रुक-सा गया, फिर दूने तेज से चिल्लाकर बोलने लगा। अच्छे वक्ता से जनता युक्ति-तर्क नहीं चाहती—जो बुरा है, वह क्या बुरा है, वह जानने की उसे कोई खास आवश्यकता नहीं होती। वह तो केवल जो बुरा है, वह कितना बुरा है, असंख्य विशेषणों से उसी को सुनकर प्रसन्न हो जाती है।

पंजाबी मिस्त्री के प्रचण्ड व्याख्यान में शायद यही गुण खासी तौर से मौजूद था, इसी से श्रोतागण काफी चंचल हो उठे थे, यह बात उनके चेहरों से साफ मालूम हो रही थी।

अचानक एक भयंकर विघ्न सा उपस्थित हुआ। मैदान के किनारे से असंख्य दबे हुए कण्ठों से भयभीत कोलाहल उठ खड़ा हुआ और दूसरे क्षण देखा गया कि बहुत-से लोग धक्कम-धक्का करके भागने का प्रयत्न कर रहे हैं।

उन्हीं को दो भागों में विभक्त करके दलते-रौंदते हुए बड़े-बड़े घोड़ों पर सवार बीस-पच्चीस गोरे पुलिस-कर्मचारी तेजी से आगे बढ़ते आ रहे हैं। उनके एक हाथ में लगाम, दूसरे हाथ में चाबुक और कमर में पिस्तौल झूल रही है। उनके कन्धों पर लोहे की जालियाँ चमक रही हैं और गुलाबी चेहरे क्रोध और अस्तमान सूर्य की किरणों से सिन्दूर के समान लाल हो उठे हैं। जो व्यक्ति व्याख्यान दे रहा था उसका वज्रकण्ठ सहसा कब चुप हो गया और मंच की भीड़ से वह पल-भर में कैसे कहाँ गायब हो गया, चमत्कार-सा लगा।

गोरों के सरदार ने मंच के बिल्कुल पास आकर कठोर आवाज में कहा, "मीटिंग बन्द करनी होगी।"

सुमित्रा अभी बिल्कुल स्वस्थ नहीं हो पाई थी। उसके उदास चेहरे पर पीली छाया भी पड़ गई मगर फिर भी वह उठकर बोली, "क्यों?"

"आज्ञा है।"

"किसकी आज्ञा?"

"सरकार की।"

"किसलिए?"

"मजदूरों को हड़ताल के लिए उकसाना मना है।"

सुमित्रा ने कहा, "व्यर्थ उकसाकर तमाशा देखने का हमारे पास समय नहीं है। योरोप आदि देशों के समीप इनको संघ-बद्ध होने की आवश्यकता समझा देना ही मीटिंग का उद्देश्य है।"

साहब ने चौंककर कहा, "संघ-बद्ध करना? फार्म के विरुद्ध? यह तो जबरदस्त गैरकानूनी बात है। इससे शान्ति भंग हो सकती है।"

सुमित्रा ने कहा, "अवश्य हो सकती है। जिस देश में सरकार के मानी ही हैं—बड़े-बड़े व्यवसायी, और सारे देश का खून चूसने के लिए ही जिस देश में ऐसा विराट यंत्र खड़ा किया…"

सुमित्रा पूर्ववत् गंभीर रही। वह उसके मुंह की ओर एकटक देखकर ज़रा मुस्करा दी। बोली, "साहब, मैं बीमार हूं और बहुत ही कमजोर हूं। नहीं तो, दूसरी बार ही क्यों, यह बात सौ बार चिल्लाकर इन आदमियों को सुना देती। मगर आज मुझमें शक्ति नहीं।" यह कहकर वह फिर ज़रा हँस दी।

इस रोग-पीड़ित रमणी की सहज-शान्त हँसी के सामने साहब शायद मन-ही-मन लज्जित हो गया। बोला, "आलराइट! आपको सावधान कर दिया है।" फिर घड़ी देखकर बोला, "मीटिंग बन्द करने की मेरे पास आज्ञा है, तोड़ देने की नहीं। दो-चार बातें कह के इन्हें शान्ति के साथ जाने के लिए कह दीजिए। ऐसा न होने पाये भविष्य में।"

आजकल लगभग बिना खाये ही सुमित्रा के दिन कट रहे थे। सबके मना करने पर भी वह आज कुछ-कुछ ज्वर में ही सभा में चली आई, पर अब परिश्रम और दुःख ने मानो उसे नीचे से ऊपर तक कँपा डाला। चौकी की पीठ पर सिर रखकर उसने अस्फुट स्वर में अपूर्व को बुलाकर कहा, "अपूर्व बाबू, केवल दस मिनट का समय है—शायद उतना भी न हो। जोर से चिल्लाकर सबको कह दीजिए, संघ बने बिना तुम लोगों के उद्धार का कोई मार्ग नहीं। आज कारखानों के मालिकों ने हम लोगों का जो अपमान किया है, यदि आदमी हैं तो इसका बदला लें।" कहते-कहते उसका कमजोर गला रुँध-सा गया। परन्तु सभानेत्री की यह आज्ञा सुनकर अपूर्व का चेहरा बिल्कुल पीला पड़ गया। विह्वल नेत्रों से सुमित्रा की ओर देखकर वह बोला, "उत्तेजित करना क्या गैरकानूनी नहीं होगा?"

सुमित्रा ने विस्मित स्वर में कहा, "पिस्तौल के जोर से सभा तोड़ देना क्या कानून ठीक है? वृथा रक्तपात मैं नहीं चाहती, पर यह बात आप अपनी पूरी शक्ति लगाकर सुना दीजिए कि आज का अपमान मजदूर भाई कभी भी न भूलें।"

अधिकार-समिति के जो पाँच मुख्य सदस्य मंच पर बैठे हुए थे, उनका

चेहरा देखने से मालूम होता था कि वे साधारण और तुच्छ व्यक्ति हैं। या तो कारीगर होंगे या ऐसे ही कोई और। अपूर्व नया होने पर भी समिति का शिक्षित और विशिष्ट सदस्य था। अतएव इतनी बड़ी जनता को सम्बोधन करके कुछ कहने का भार उसी पर आ पड़ा।

अपूर्व ने सूखे कंठ से कहा, "मैं तो हिन्दी अच्छी प्रकार जानता भी नहीं।"

सुमित्रा से बोला भी नहीं जाता था, फिर भी उसने कहा, "जो कुछ भी जानते हो उसी से दो-चार शब्द कह दीजिए अपूर्व बाबू, समय नष्ट न कीजिए।"

अपूर्व सबके मुंह की तरफ देखने लगा। भारती मुंह फेरे हुए थी। उन की राय तो नहीं मालूम हो सकी, पर गोरे सरदार के चेहरे का भाव मालूम हो गया। बहुत ही निकट से अत्यन्त स्पष्ट और अत्यन्त कठिन भाव से उनके साथ अपूर्व की चार आँखें हो गई। कुछ कहने को अपूर्व उठकर खड़ा हुआ, उसके होंठ भी हिलने लगे, परन्तु उन दोनों होंठों के भीतर से हिन्दी, बंगला, अंग्रेजी किसी भी भाषा में कुछ भी नहीं निकला। उसके बदले पीले मुख से जो कुछ निकला, वह और चाहे जैसा हो, पर अधिकार-समिति के सदस्यों के लिए ठीक नहीं था।

तलवरकर उठके खड़ा हो गया और सुमित्रा की ओर ताक करके बोला, "मैं इन बाबूजी का मित्र हूँ और हिन्दी जानता हूँ। यदि आज्ञा हो तो मैं ही इनका वक्तव्य जोर के साथ सुना दूँ?"

भारती ने मुँह फेरकर देखा।

सुमित्रा विस्मित तीक्ष्ण दृष्टि से देखती हुई बैठी रही और इन दोनों नारियों की उन्नत दृष्टि के सामने लज्जित, किंकर्तव्यविमूढ़, कातरदीन अपूर्व स्तब्ध होकर सिर नीचा करके जड़-मूर्ति के समान बैठ गया।

रामदास घूमकर खड़ा हुआ। अपने दाहिने-बायें और सामने उत्तेजित, विक्षुब्ध, भयभीत और चकित जन-समूह को सम्बोधित करके खूब जोर-जोर से बोलने लगा, "भाइयो, मुझे बहुत-सी बातें कहनी थीं, पर इन दोनों ने अपनी शक्ति से हमारा मुँह बन्द कर दिया है।" यह कहते हुए उसने तर्जनी से सामने की सुमित्रा की ओर इशारा किया और फिर कहना शुरू

दिया, "इन कुत्तों को जिन लोगों ने हमारे पीछे छोड़ दिया है, तुम लोगों के पीछे लगा दिया है, वे तुम लोगों के कारखानों के मालिक हैं। वे हरगिज यह बात नहीं चाहते कि कोई तुम लोगों को तुम्हारे दुःखों और दुर्दशाओं की बात समझाए। तुम लोग उन लोगों के कारखानों को चलाने वाले और बोझ ढोने वाले जानवर हो। इसलिए वे अपनी सारी शक्ति और सारी मठ्ठा लगाकर इस सत्य को तुम लोगों से हमेशा के लिए छिपाये रखना चाहते हैं कि तुम लोग भी उन्हीं की तरह आदमी हो, तुम लोगों को भी उन्हीं की तरह भरपेट खाने और जी भरकर आनन्द करने का जन्मसिद्ध अधिकार भगवान् से मिला है। केवल एक बार यदि तुम लोगों की नींद खुल जाए, केवल एक बार अगर तुम लोग इस सत्य को समझ जाओ कि हम लोग भी आदमी हैं—चाहे जितने भी दुखी हों, गरीब हों, अशिक्षित हों, फिर भी हम आदमी ही हैं, हमें अपने मनुष्यता के अधिकार से किसी भी बहाने से कोई भी वंचित नहीं रख सकता, तो ये गिनती के मिल-मालिक तुम्हारे आगे हैं क्या चीज ? इस सत्य को क्या तुम लोग नहीं समझोगे ? इसमें देश-विदेश नहीं, जात-पाँत नहीं, धर्म नहीं, साम्प्रदायिकता नहीं—हिन्दू नहीं, मुसलमान नहीं—जैन, बौद्ध, सिक्ख कुछ भी बखेड़ा नहीं—हैं सिर्फ धन में मस्त मिल-मालिक और उनके कारखानों में काम करने वाले मजदूर। तुम्हारी शक्ति से वे डरते हैं, तुम्हारी शिक्षा की शक्ति को वे अत्यन्त संशय की दृष्टि से देखते हैं, तुम लोगों में जानने की इच्छा पैदा होने से उनकी छाती का खून सूखने लगता है। असमर्थ, कमजोर, मूर्ख, दुर्नीति में फँसे हुए तुम्हीं लोग तो उनके विलास-व्यसनों की एकमात्र नींव हो, बुनियाद हो। इसलिए तुम लोगों के जीवित रहने के लिए कम-से-कम जितने की आवश्यकता है, उससे अधिक तिल भर भी वे अपनी इच्छा से देना नहीं चाहते—इस बात को समझना क्या तुम्हारे लिए बहुत ही अधिक कठिन है ? और, इस बात को मुक्त कंठ से व्यक्त करने के अपराध में क्या आज इन गोरों के हाथ से हमारा अपमानित होना ही हमारे हाथ आयेगा ? गरीबों की इस जीवित रहने की लड़ाई में तुम लोग क्या अपनी सारी शक्ति के साथ शामिल नहीं हो सकते ?"

गोरे सरदार ने इस देश में रहकर जो कुछ थोड़ी-बहुत हिन्दी सीखी

थी, उसमें इस व्याख्यान का मतलब वह लगभग कुछ भी नहीं समझा, मगर उपस्थित श्रोताओं के चेहरों और आँखों में उत्तेजना के चिह्न देखकर वह यों ही उत्तेजित हो उठा। उसने अपनी रिस्टवाच की ओर वक्ता का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा, "अब केवल पाँच मिनट समय है, आप समाप्त कीजिए।"

तलवलकर ने कहा, "केवल पाँच मिनट! उससे अधिक एक सेकण्ड भी नहीं!—तो भी इन अमूल्य मिनटों को मैं व्यर्थ नहीं जाने दूँगा। मेरे प्यारे शोषित भाइयो, तुम लोगों से मेरी विनती है, तुम लोग हमारे प्रति जरा भी अविश्वास न करना। शिक्षित होने से, सभ्य घराने के होने से, कारखानों में मजदूरी का काम न करने के कारण हम लोगों को सन्देह की दृष्टि से देखकर तुम लोग अपना अनिष्ट अपने-आप न कर बैठना। तुम लोगों की नींद छुड़ाने के लिए सारे देश में पहली शंखध्वनि हम लोगों ने ही की है। आज शायद इस बात को तुम न समझो, मगर यह सच जानना कि अधिकार-समिति से बढ़कर तुम्हारा सच्चा हितैषी देश में और कोई नहीं है।"

उसका गला सूखकर कठोर होता जाता था, फिर भी वह जी-जान से चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था, "मैं बहुत दिनों से तुम लोगों में काम करता आया हूँ। शायद तुम लोग मुझे नहीं जानते, पर मैं तुम लोगों को जानता हूँ। जिन्हें तुम अपना मालिक समझते हो, मैं भी किसी दिन उन्हीं में से एक था। वे किसी भी प्रकार तुम लोगों को आदमी न होने देंगे। केवल जानवरों के समान रखकर ही वे तुम्हारा मनुष्यत्व का अधिकार रोके रह सकते हैं और किसी भी तरह नहीं—इस बात को बगैर समझे अब तुम्हारा काम नहीं चल सकता। उन लोगों के मुँह से तुम हमेशा से यही सुनते आये हो कि तुम लोग बुरे आदमी हो, उच्छृंखल हो, लम्पट हो। इसी से, जब कभी तुम लोगों ने अपने अधिकार की बात उनसे कही है, तभी उन लोगों ने तुम्हारे सब दुःख-कष्टों की जड़ में तुम्हारे ही असंयत चरित्र को दोष देकर तुम्हारी उन्नति में बाधा खड़ी की है। केवल इसी असत्य को वे हरदम तुम्हें समझाते आ रहे हैं कि बगैर अच्छे हुए कभी किसी की उन्नति [illegible]ी सकती। मगर आज मैं तुम लोगों को बिना किसी संकोच के और

विद्युत गति दिल में बता देना चाहता हूँ कि इन लोगों की इस दुर्दशा के लिए उत्तरदायी नहीं है, बल्कि तुम्हारी यह हीन अवस्था ही तुम लोगों के चरित्र के लिए उत्तरदायी है। उनके इस मूठ का आज तुम्हें बिना किसी डर के विरोध करना होगा। जोरदार शब्दों में आज तुम्हें इस बात की घोषणा करनी होगी कि केवल रुपया ही सबकुछ नहीं है।" कहते-कहते उसका सूखा हुआ गला अत्यन्त तेज हो उठा। वह कहने लगा, "बिना परिश्रम के दुनिया में कोई भी चीज पैदा नहीं होती—लिहाजा हम सब मजदूर ठीक तुम्हीं लोगों के समान मालिक हैं—हम लोग भी तुम्हारे ही समान सब चीजों और सब कारखानों के अधिकारी हैं।"

इतने में किसी एक पंजाबी ने गोरे सरदार के कान में कुछ कहा, और उसे सुनते ही उस सरदार की आँखें जलते अंगारों के समान चमक उठी। उसने कड़ककर कहा, "स्टॉप। यह नहीं चल सकता। इससे शान्ति भंग होगी।"

अपूर्व चौंक पड़ा और रामदास के कुरते का छोर खींचने लगा, बोला, "बस, बस करो रामदास। इस नि.सहाय मित्रहीन विदेश में तुम्हारी स्त्री है, छोटी लड़की है—बस करो!"

रामदास ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। जोर-जोर से चिल्लाता हुआ कहता ही गया, "ये लोग अन्याय करने वाले हैं! ये लोग कायर हैं! सच को ये लोग किसी भी तरह तुम्हारे कानों तक पहुँचने नहीं देना चाहते! मगर ये लोग नहीं जानते कि सत्य को किसी भी तरह गला घोटकर हत्या नहीं की जा सकती। सत्य चिरंजीवी है, वह अमर है।"

गोरा सरदार इसका मतलब नहीं समझा। परन्तु अचानक हजारों आदमियों के शरीर से टकराती हुई कड़ी गर्मी की भभक मानो उसके चेहरे पर आ लगी। वह गरज उठा, "यह नहीं चल सकता! यह राजद्रोह है!"

पलक मारते ही पाँच-छह गोरों ने घोड़ों पर से कूदकर रामदास को घसीटकर नीचे उतार लिया।

देखते-देखते उसका लम्बा शरीर तो घुड़सवारों के बीच जाकर गिर गया, मगर तीक्ष्ण तीव्र कंठ-स्वर किसी भी तरह दबाये नहीं दबा।

उस विक्षुब्ध विपुल जनता में एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक ध्वनित

होने लगा, "भाइयो, शायद फिर कभी तुम लोग मुझे न देख पाओगे, मगर मनुष्य होकर पैदा होने की अपनी इज्जत यदि तुम लोगों ने मालिकों के चरणों में न सौंप दी हो, तो इतना बड़ा अत्याचार—इतना बड़ा अपमान तुम लोग हरगिज मत सहना।"

परन्तु उसकी बात समाप्त होने के पहले ही मानो दक्ष-यज्ञ शुरू हो गया। घोड़े दौड़ने लगे, चाबुक चलने लगे और अपमानित, अभिभूत, त्रस्त मजदूरों का दल एकाएक ऐसा भाग खड़ा हुआ कि कौन किसके ऊपर गिर पड़ा, कौन किसके पांव तले कुचला गया, कोई ठीक-ठिकाना न रहा।

थोड़े-से दबे और खुंदे हुए घायल मजदूरों के सिवा सारा का सारा मैदान साफ हो गया। किसी प्रकार लंगड़ाते और कराहते हुए जो लोग अभी तक चले जा रहे थे, उन्हीं की ओर एकटक देखती हुई सुमित्रा स्तब्ध होकर बैठी रही और उनके पास ही बैठा रहा अपूर्व। इसके सिवा वहीं एक और भी नारी चुपचाप सिर झुकाये किंकर्तव्यविमूढ़ की तरह स्थिर बैठी रही।

जो आदमी गाड़ी लाने गया था, दस मिनट बाद उसके लौटने पर सुमित्रा भारती का हाथ पकड़कर धीरे-धीरे गाड़ी पर जाकर बैठ गई। उसके बिना बोले उसकी चिन्ताधारा में व्याघात करने के लिए कभी कोई उसमें व्यर्थ का प्रश्न नहीं करता। खासकर आज, जबकि उसकी तबीयत खराब है और वह थकी हुई परेशान है, उससे कोई कुछ न बोला।

भारती ने लौटकर अपूर्व से कहा, "चलिए।"

अपूर्व कुछ देर तक न जाने क्या सोचता रहा, फिर मुँह उठाकर देखा, बोला, "कहाँ चलने के लिए कहती हैं मुझसे?"

भारती ने कहा, "मेरे घर पर।"

अपूर्व थोड़ी देर चुप रहा।

अन्त में धीरे से बोला, "आप लोगों को तो मालूम है, मैं समिति के अयोग्य हूँ। वहाँ अब तो मेरे लिए स्थान नहीं हो सकता।"

भारती ने पूछा, "तो कहाँ जायेंगे? अपने घर?"

"घर? हाँ, एक बार जाना होगा।" इतना कहते-कहते अपूर्व की आँखें भर आईं। वह किसी प्रकार आँसुओं को रोकता हुआ बोला, "मगर इस

परदेश में और एक जगह कैसे जाऊँगा, कुछ समझ में नहीं आया भारती।"

सुमित्रा ने गाड़ी में से क्षीण स्वर में पुकारा, "तुम लोग जाओ।"

भारती ने फिर कहा, "चलिए।"

अपूर्व ने गर्दन हिलाते हुए कहा, "अधिकार-पमिति मे अब मेरे लिए स्थान नहीं है।"

सहसा भारती ने उसका हाथ पकड़ लेना चाहा, पर तुरन्त ही अपने को सँभाल लिया और अपूर्व के मुँह पर अपनी दोनों आँखों की सम्पूर्ण दृष्टि जमाकर चुपके से कहा, "अधिकार-समिति में स्थान न हो तो न सही, पर और एक अधिकार से आपको स्थान छुड़ा सके, संसार मे ऐसी कोई भी शक्ति नहीं है अपूर्व बाबू !"

गाड़ी में से सुमित्रा ने फिर असहिष्णु कंठ से पूछा, "तुम लोगों के आने में देर होगी क्या भारती ?"

भारती ने हाथ हिलाकर गाड़ीवान से इशारा करते हुए कहा, "आप जाइए, हम लोग पैदल ही चले आवेंगे।"

अपूर्व सहसा मार्ग में चलते-चलते कहने लगा, "तुम मेरे साथ चलो भारती।"

भारती ने कहा, "अच्छा।"

अपूर्व ने कहा, "तलवरकर की स्त्री के पास मैं कैसे जाऊँगा, जाकर उनसे क्या कहूँगा, क्या उनका प्रबन्ध करूँगा—कुछ भी मेरी समझ में नहीं आता। रामदास को यहाँ अपने साथ लाने की मूर्खता मुझसे क्यों हुई ?"

भारती मौन रही।

अपूर्व कहने लगा, "इस परदेश में अचानक कैसा सत्यानाश हो गया ! मुझे तो कुछ सूझ ही नहीं रहा है !"

भारती ने कोई राय प्रकट नहीं की।

दोनों कुछ देर तक चुपचाप चलते रहे, उसके बाद अपूर्व उपायहीन दुश्चिन्ता मे व्याकुल होकर सहसा कह उठा, "मेरा क्या दोष है ? बार-बार सावधान कर देने पर भी कोई गले में फाँसी लगाकर लटक जाय, तो मैं उसे कैसे बचा सकता हूँ ? मैंने क्या उससे कहा था कि तुम व्याख्यान दो ? स्त्री है, लड़की है, घर-गृहस्थी है—इस बात का जिसे होश ही नहीं, वह

नहीं मरेगा तो क्या मैं मरूँगा? अवश्य ही अब दो साल की सजा उसे होगी।"

भारती ने कहा, "आप क्या अभी उनकी स्त्री के पास नहीं जायेंगे?"

अपूर्व ने उसके मुँह की ओर देखकर कहा, "जाना ही होगा। मगर साहब को कल क्या उत्तर दूँगा? मैं तुमसे पहले से ही कह देता हूँ भारती कि साहब ने एक भी बात उलटी-सीधी कह दी तो मैं नौकरी छोड़ दूँगा।"

"छोड़कर क्या करोगे?"

"घर चला जाऊँगा। इस देश में क्या आदमी को रहना चाहिए?"

भारती ने कहा, "उनको छुड़ाने का प्रयत्न भी नहीं करेंगे?"

अपूर्व ठिठककर खड़ा हो गया, "चलो न, किसी अच्छे बैरिस्टर के पास चलें भारती, मेरे पास करीब हजार रुपये होंगे—इतने से काम नहीं होगा? अपनी घड़ी-वड़ी बेच-बाचकर और भी पाँच सौ रुपये हो सकते हैं। चलो न, चलें।"

भारती ने कहा, "मगर अपूर्व बाबू, पहले उनकी स्त्री के पास जाना आवश्यक है, मेरे साथ अब मत चलिए, यहीं से गाड़ी करके सीधे स्टेशन चले जाइए। उन्हें क्या चाहिए, घर में क्या कमी है, कम-से-कम एक बार सुध लेना तो आवश्यक है।"

अपूर्व ने सिर हिलाकर अपना मन्तव्य प्रकट किया, "हाँ, आवश्यक है।" किन्तु फिर भी वह उसके साथ ही चलने लगा।

भारती ने कहा, "अब तो मैं अकेली ही जा सकती हूँ, आप स्टेशन जाइए।"

अपूर्व को उत्तर देने में संकोच हो रहा था, मगर कुछ ही देर के लिए। उसके बाद ही उसने कहा, "मैं अकेला नहीं जा सकूँगा।"

भारती ने कहा, "तो घर जाकर तिवारी को साथ लेते जाइए।"

"ना, तुम चलो साथ।"

"मुझे तो आवश्यक काम है।"

"फिर भी चलो।"

"मगर मुझे आप इतना अधिक क्यों लपेट रहे हैं अपूर्व बाबू!"

... चुप रहा।

भारती उसके चेहरे की तरफ देखकर हँस दी। बोली, "अच्छा, चलिए
साथ। पहले मैं अपना काम कर डालूँ, तब चलूँ।"

भारती मार्ग में चलते-चलते अचानक कह उठी, "जिन्होंने आपको
ढी करके परदेश भेजा है वे नहीं पहचानतीं, भले ही वे आपकी माँ हों।
वारी देख आ रहा है, मैं स्वयं जाकर प्रबन्ध करके उसके साथ आपको
रवाना कर आऊँगी।"

अपूर्व मौन रहा।

भारती ने कहा, "क्यों, कुछ उत्तर नहीं दिया।"

अपूर्व ने कहा, "उत्तर देने को कुछ है ही नहीं। माँ जीती न होतीं तो
संन्यासी हो जाता।"

भारती ने आश्चर्य के साथ कहा, "संन्यासी? लेकिन माँ तो अभी
तो हैं।"

अपूर्व ने कहा, "हाँ, देश में छोटे-से गाँव में हम लोगों का छोटा-सा
मान है, माँ को मैं वहीं ले जाऊँगा।"

"फिर?"

"मेरे पास जो एक हजार रुपये हैं, उनसे एक छोटी-सी मोदी की दुकान
ल लूँगा। उसी में हम दोनों का काम चल जायगा।"

भारती ने कहा, "चल तो सकता है मगर अचानक इसकी आवश्यकता
क्यों आ पड़ी?"

अपूर्व ने कहा, "आज मैं अपने को पहचान गया हूँ। केवल माँ के
अलावा संसार में और कहीं भी मेरा मूल्य नहीं। भगवान् करे, इससे अधिक
किसी से कुछ चाहूँ भी नहीं।"

भारती ने पल-भर उसके चेहरे की ओर देखा, फिर पूछा, "माँ शायद
आपको बहुत प्यार करती हैं?"

अपूर्व ने कहा, "हाँ। हमेशा माँ का जीवन दुःख ही दुःख में कटा है। अब
तो मुझे इस बात का भय लगता है कि कहीं उनका यह दुःख और भी न बढ़
जाय। मेरे सम्पूर्ण अस्तित्व पर माँ हावी हैं। इससे मुझे एक क्षण भी छुट-
कारा नहीं मिलता, इससे मैं डरपोक हूँ, इसी से मैं सबकी अवज्ञा का पात्र
हूँ।" कहते-कहते अचानक उसके मुँह से एक दीर्घ निःश्वास निकल पड़ा।

भारती मौन रही। बहु केवल अपना हाथ धीरे से अपूर्व के हाथ में देकर थपथपाने लगी।

संध्या का अन्धकार गहरा होता जा रहा था।

अपूर्व ने दुखी आवाज से पूछा, "रामदास के परिवार का क्या प्रबन्ध करोगी भारती? केवल उस नौकरानी के सिवा इस देश में उनके देश का आदमी शायद कोई नहीं है, और होगा भी तो क्या उनका भार लेगा?"

भारती स्वयं भी कुछ सोचकर तय न कर पाई थी, फिर भी उसने साहस बँधाने के लिए कहा, "चलिए, पहले जाकर देखें। प्रबन्ध भी कुछ न कुछ हो ही जायगा।"

अपूर्व समझ गया—यह व्यर्थ बात है। उसके मन को कोई शान्ति नहीं मिली, बोला, "तुम्हें शायद वहाँ रहना पड़ेगा?"

"मगर मैं तो ईसाई हूँ, मैं उनके क्या काम आऊँगी।"

"यह तो सही है।" यह बात अपूर्व को नये तौर से चुभी।

दोनों जब पहुँचे, तब शाम बीते बहुत देर हो चुकी थी। रात के वक्त कैसे क्या करना होगा, मन ही मन चिन्ता करके दोनों के भय और उद्वेग की सीमा न रही। नीचे का कमरा खुला था। भीतर कदम रखते ही भारती ने देखा। उधर खुली खिड़की के पास आरामकुर्सी पर कोई लेटा हुआ है। उसके मुँह उठाकर इधर देखते ही भारती पहचान गई और मारे खुशी के लगी शोर मचाने, "डॉक्टर बाबू, आप कब आ गये? सुमित्रा दीदी से भेंट हुई?"

"ना।"

अपूर्व ने कहा, "बड़ी पीड़ादायक दुर्घटना हो गई है डॉक्टर बाबू! हमारे एकाउण्टेण्ट रामदास तलवरकर को पुलिस पकड़ ले गई है।"

भारती ने कहा, "इनसिन में उनका घर है। वहाँ उनकी पत्नी है, बेटी है—उन लोगों को अभी कुछ भी नहीं मालूम।"

अपूर्व ने कहा, "डॉक्टर बाबू, इतनी दूर इस अँधेरी रात में कैसी भयानक विपत्ति आ पड़ी?"

डॉक्टर उबासी लेकर सीधे होकर बैठ गये और हँस दिये। फिर बोले, "भारती, मैं बहुत थका हूँ, क्या मुझे चाय बनाकर पिला

सकती हो ?"

भारती ने कहा, "क्यों नहीं, लेकिन हम दोनों को अभी बाहर जाना होगा डॉक्टर बाबू !"

"कहाँ ?"

"इनसिन—तलवरकर के घर ।"

"कोई आवश्यकता नहीं ।"

अपूर्व ने आश्चर्य से उनके मुँह की तरफ देखकर कहा, "आवश्यकता नहीं, डॉक्टर बाबू ? ऐसे संकट के समय उनके घर पर प्रबन्ध करना—कम-से-कम सुध लेना तो हमारा कर्त्तव्य है ।"

डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, "इसमें सन्देह नहीं । लेकिन यह भार मुझ पर है—आप लोग बहुत करेंगे तो इस अँधेरी रात में इनसिन की गलियों में चक्कर काट आ सकते हैं, पर अन्त में होगा यही कि घर ढूँढ़े न मिलेगा ।" वे फिर हँस दिये और बोले, "इससे अच्छा यह है कि आप बैठें और भारती चाय बनाकर ले आये—मगर आप शायद न पीयेंगे ? अच्छी बात है । होटल का महाराज पवित्रता के साथ कुछ खाने को बनाये लाता है, आप खा-पीकर विश्राम कीजिए ।"

भारती निश्चिन्त और प्रसन्नचित्त से चाय बनाने ऊपर जाने लगी, मगर अपूर्व को किसी भी प्रकार विश्वास नहीं हुआ । डॉक्टर की सभी बातें उसे पहेली-सी और बहुत बुरी मालूम हुईं । उसने दुखी होकर भारती को लक्ष्य करके कहा, "ऐसी रात में कष्ट उठाने से तुम तो बच गईं, लेकिन मेरा उत्तरदायित्व बहुत अधिक है । चाहे जितनी भी रात हो, मुझे वहाँ जाना चाहिए ।"

भारती यह सुनकर ठिठककर खड़ी हो गई, लेकिन उसी समय डॉक्टर की आँखों की ओर देखकर फिर प्रसन्नता के साथ चली गई ।

डॉक्टर बाबू ने एक मोमबत्ती निकाली । उसे जलाया और जेब में से कई चिट्ठियाँ निकालकर वे उनका उत्तर लिखने बैठ गये । दसेक मिनट ठहरकर अपूर्व झुँझला उठा ।

उसने पूछा, "चिट्ठियाँ क्या बहुत ही आवश्यक हैं ?"

डॉक्टर ने बिना मुँह उठाये ही कहा, "हाँ ।"

अपूर्व ने कहा, "उन लोगों का कोई प्रबन्ध हो जाना भी कम आवश्यक नहीं है। आप क्या उनके घर किसी को भेजेंगे?"

डॉक्टर ने कहा, "इतनी रात में? कल सवेरे के पहले शायद वहाँ जाने के लिए कोई आदमी नहीं मिल सकता।"

अपूर्व ने कहा, "तो फिर आपको चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं। सवेरे तो मैं स्वयं ही चला जाऊँगा। आप भारती को मना नहीं करते तो हम लोग आज भी आ सकते थे और मेरा विचार है कि वही अच्छा होता।"

डॉक्टर के चिट्ठी लिखने में कोई रुकावट नहीं आई क्योंकि उन्हें मुँह उठाने का भी अवकाश नहीं था। केवल इतना कहा, "आवश्यकता नहीं थी।"

अपूर्व ने अपने भीतर गुस्से को भरसक दबाते हुए कहा, "इस क्षेत्र में आवश्यकता की धारणा आपकी और मेरी एक-सी नहीं है। वे मेरे मित्र हैं।"

भारती चाय का सामान लेकर नीचे उतर आई और दो प्याला चाय बनाकर पास बैठ गई। डॉक्टर का चिट्ठी लिखना और चाय पीना दोनों काम एक साथ चलने लगे।

दो-तीन मिनट चुपचाप कट जाने के बाद भारती अचानक उठकर कहने लगी, "आप सदैव ही व्यस्त रहते हैं। दो घड़ी आपके पास बैठकर कुछ बातें सुनें, इतना भी समय आप हम लोगों को नहीं देते।"

भारती के ये उलाहने-भरे शब्द डॉक्टर के कानों में जाकर पड़े। उन्होंने चाय के प्याले से मुँह हटाकर हँसते हुए कहा, "क्या करूँ बहन, अभी रात के दो बजे की गाड़ी से ही मुझे फिर जाना है।"

भारती यह सुनकर चौंक पड़ी और अपूर्व के मन का सन्देह अपने मित्र के सम्बन्ध में और भी गहरा हो गया।

भारती ने पूछा, "एक रात के लिए भी क्या आपको आराम करने का अवकाश नहीं मिलेगा, डॉक्टर बाबू?"

डॉक्टर ने प्याले की चाय समाप्त करके कहा, "मुझे केवल एक ही दिन अवकाश मिलेगा भारती, लेकिन वह दिन अभी आया नहीं है।"

भारती समझ नहीं पाई, उसने पूछा, "कब आयेगा?"

डॉक्टर चुप रहा।

अपूर्व के मन में केवल एक ही बात उथल-पुथल मचा रही थी। उसने उसी का सूत्र पकड़कर कहा, "समिति का सदस्य न होने पर भी रामदास सजा भुगतने जा रहा है, यह क्या ठीक है ?"

डॉक्टर ने कहा, "हो सकता है कि सजा न भी हो।"

अपूर्व ने कहा, "न हो, यह उसका भाग्य है। पर यदि हो तो सारा दोष मेरा है। मैं ही उसे साथ ले गया था।"

डॉक्टर केवल मुस्कराकर चुप हो गये।

अपूर्व कहने लगा, "जिस आदमी ने देश के लिए दो साल की सजा भुगती है, असंख्य बेंतों के दाग जिसकी पीठ से अब भी नहीं मिटे हैं, इस परदेश में जिसके बाल-बच्चे केवल उसी के सहारे जीवित हैं, उसका इतना बड़ा साहस असाधारण है। इसकी तुलना नहीं हो सकती।"

अपूर्व में अपने मित्र के प्रति सच्चे वाक्यों ने एक प्रकार भीतरी चोट की, पर यह बिल्कुल व्यर्थ हुई। डॉक्टर का मुँह उज्ज्वल हो उठा, बोले—"इसमें क्या सन्देह है अपूर्व बाबू ! पराधीनता की आग जिसके हृदय को अहोरात्र जलाती रहती है, उसके लिए इसके सिवा और कोई गति ही नहीं। साहब की दुकान की बड़ी नौकरी या इसलिए का स्त्री-पुत्र परिवार कोई भी इसे रोक नहीं सकता—उसके लिए तो यही एक रास्ता है।"

अपूर्व की दुश्चिन्ता और संशय से ज्ञान ढक न जाता तो उससे इतनी बड़ी गलती हरगिज नहीं होती। डॉक्टर की बात को व्यंग्य समझकर सहसा वह पागल-सा हो उठा और बोला, "आप उनके महत्त्व को न समझें तो न सही, पर साहब की दुकान की नौकरी तलवरकर जैसे मनुष्य को छोटा नहीं बना सकती। मुझ पर आप जितना करना चाहें, कर सकते हैं, रामदास आपसे किसी भी अंश में छोटा नहीं, यह आप निश्चित समझिए।"

डॉक्टर ने आश्चर्यचकित होकर कहा, "उन्हें तो मैंने छोटा बताया नहीं अपूर्व बाबू !"

अपूर्व ने कहा, "बता ही रहे हैं। उनका और मेरा आप मजाक कर रहे हैं। लेकिन मैं जानता हूँ, जन्मभूमि उनके लिए प्राणों से भी प्यारी है। वे निर्भीक हैं, धीर-वीर हैं। आपके समान छिपे-छिपे नहीं फिरते और न

पुलिस के भय से लंगड़ा-लंगड़ाकर चलते हैं। आप डरपोक हैं।"

भारती आश्चर्य से दंग हो रही थी, पर अब उससे नहीं रहा गया। उसने तीव्र स्वर में कहा, "आप किनसे क्या कह रहे हैं अपूर्व बाबू! अचानक आप पागल तो नहीं हो गये?"

अपूर्व ने कहा, "ना, पागल नहीं हुआ। ये चाहे जो भी हों पर सव्यसाची के पाँवों की धूल के समान भी नहीं, इस बात को मैं मुक्त कंठ से कहूँगा। उनका तेज, उनकी वाग्मिता, निर्भीकता से ये मन-ही-मन ईर्ष्या करते हैं, इसी से तुम्हें और मुझे छल से रोक लिया।"

भारती उठके खड़ी हो गई और अपने को अत्यन्त कठिनाई से संयत करके सहज स्वर में बोली, "अपूर्व बाबू! आपको मैं अपमानित नहीं कर सकती, पर इस समय आप यहाँ से चले जाइए। आपको लोगों ने गलत समझा था। भय के मारे जिसे हिताहित का ज्ञान नहीं रहता, उसके उन्माद के लिए यहाँ स्थान नहीं है। आपकी बात सच है, अधिकार-समिति में आपके लिए स्थान नहीं होगा। भविष्य में फिर कभी किसी भी बहाने मेरे पास आने का प्रयत्न न कीजियेगा।"

अपूर्व चुपचाप उठ खड़ा हुआ, पर डॉक्टर ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, "और जरा बैठिए अपूर्व बाबू, ऐसे अँधेरे में अकेले मत जाइए। स्टेशन जाते समय रास्ते में मैं आपको घर पहुँचाता जाऊँगा।"

अपूर्व को होश ठिकाने आ रहा था, वह नीचे को सिर झुकाकर बैठ गया।

डॉक्टर बचे हुए बिस्कुट जेब में रखने लगे। यह देख भारती ने पूछा, "यह क्या कर रहे है आप?"

"रसद इकट्ठी कर रहा हूँ बहन!"

"सचमुच आज ही रात को चले जायँगे?"

"नहीं तो अपूर्व बाबू को क्या यों ही रोक रखा है? तुम सब मिलकर इस प्रकार अविश्वास करने लगे तो मैं जीऊँगा कैसे, बताओ तो?" कहते हुए उन्होंने कृत्रिम क्रोध प्रकट किया। भारती ने अभिमान-भरे स्वर में कहा, "ना, आज आप नहीं जा सकते, आप बहुत थके हुए हैं। इसके अलावा सुमित्रा दीदी बीमार हैं—आप बार-बार न जाने कहाँ चले जाया करते हैं।

न तो कोई बात सुनाते हैं और न उपदेश देते हैं। समिति को मैं अकेली कैसे चलाऊँ, बताइए तो? मैं भी अब जहाँ इच्छा होगी, चली जाऊँगी।"

भारती के हाथ में लिखी हुई चिट्ठियाँ देते हुए डॉक्टर ने हँसकर कहा, "इसमें एक तुम्हारी है, एक सुमित्रा की है और तीसरी अधिकार-समिति की है। मेरा उपदेश समझो, आदेश समझो—जो समझो, सबकुछ इसी में मिलेगा।"

चिट्ठियाँ हाथ में लेकर भारती ने उदासी से कहा, "अब बाहर क्या आप अधिक दिनों के लिए जा रहे हैं?"

"देवा न जानन्ति!" कहकर डॉक्टर हँस दिये।

भारती ने कहा, "हम लोगों के लिए बड़ी कठिनाई है—न तो चेहरे से, न बातों से, किसी भी तरह आपके मन की बात नहीं समझी जा सकती। साफ-साफ बताइए, कब तक लौटेंगे?"

"कह तो दिया, देवा न जानन्ति—"

"ना, ऐसा नहीं होगा, सच-मच बताइए, कब लौटेंगे?"

"इतनी जल्दबाजी क्यों है, बताओ तो?"

भारती ने कहा, "पता नहीं इस बार कैसा एक भय-सा लग रहा है। मालूम होता है मानो सब टूट-फूटकर चकनाचूर हो जायगा।" कहते-कहते सहसा उसकी आँखें भर आईं।

उसके माथे पर हाथ रखकर डॉक्टर ने हँसी के ढंग पर कहा, "नहीं होगा बहन, नहीं होगा—सब ठीक हो जायगा।" और फिर वे सहसा खिलखिलाकर हँस पड़े। बोले, "लेकिन इस आदमी से इस प्रकार झूठ-मूठ की लड़ाई करोगी तो कहे देता हूँ कि सचमुच ही रोना पड़ेगा। अपूर्व बाबू अप्रसन्न जरूर होते हैं, पर जिससे प्रेम कर बैठते हैं, उससे प्रेम करना भी जानते हैं। मनुष्य में जो हृदय नाम की चीज है, वह हम लोगों के संसर्ग में सूखकर अभी तक लकड़ी नहीं हो पाई है। खिले हुए कमल के समान वह ज्यों-की-त्यों ताजा बनी हुई है।"

भारती कुछ उत्तर देना चाहती थी कि अपूर्व के सहसा मुँह उठाते ही वह चुप हो गयी।

इसी समय दरवाजे के सामने एक घोड़ा-गाड़ी आ खड़ी हुई और

उसके बाद ही दो आदमी भीतर आ पहुँचे। एक ऊपर से नीचे तक ए
साहबी पोशाक पहने था जो शायद सिवा डॉक्टर के और सबके लि
अपरिचित था, और दूसरा था रामदास तलवरकर।

अपूर्व का चेहरा चमक उठा। परन्तु वह शोर मचाकर मित्र के साथ
के लिए आगे न बढ़ सका। रामदास ने आगे बढ़कर डॉक्टर के पाँव छुए।

अपूर्व को यह अद्भुत लगा। मगर डॉक्टर के मुँह की ओर देखता हु
वह चुप ही बना रहा।

अंगरेजी पोशाक पहने हुए आदमी ने अंगरेजी में ही बात की
"जमानत के लिए इतनी देर हो गई। केस शायद सरकार चलाएगी नहीं।

डॉक्टर ने मुस्कराकर कहा, "इसका मतलब यह है कि सरकार के
आज तक तुमने पहचाना नहीं मेरे किसान !"

इस बात से रामदास ने हँसते हुए सहमत होकर कहा, "मैदान से क
तक आपको बराबर साथ-साथ जाते देखा था, फिर अचानक आप कहाँ
लापता हो गये, यह मालूम ही नहीं हुआ।"

डॉक्टर ने हँसकर कहा, "लापता होने का एक बड़ा कारण था
था रामदास बाबू, और अब रात ही रात में यहाँ से भी लापता हो जा
पड़ेगा।"

रामदास ने कहा, "उस दिन रेलवे स्टेशन पर मैंने आपको पहचान
लिया था।"

डॉक्टर ने गर्दन हिलाते हुए कहा, "पता है, मगर सीधे घर न जाक
इतनी रात में यहाँ क्यों आये ?"

रामदास ने कहा, "आपके पैर छूने। पूना की सेन्ट्रल जेल से
पहुँचने के बाद ही आप चले आये। तब समय नहीं मिला। मीरदास बोथ
का क्या हुआ, मालूम है ? वह तो आपके ही साथ था !"

डॉक्टर ने सिर हिलाकर कहा, "हाँ, बैरक की दीवार लाँघ न सक
इसलिए सिंगापुर में उसे फाँसी हो गई।"

अपूर्व को यह सब बातें अद्भुत दुःस्वप्न के समान लगीं।
उससे रहा नहीं गया। अचानक पूछ बैठा, "डॉक्टर बाबू, तो क
आपको भी फाँसी होगी ?"

डॉक्टर उसके मुँह की ओर देखकर जरा हँस दिये। उस हँसी से अपूर्व के सिर के बाल खड़े हो गये।

रामदास ने उत्सुक होकर कहा, "फिर ?"

डॉक्टर ने कहा, "फिर क्या, बैंकाक के रास्ते पहाड़ लाँघकर टेवॉय आ पहुँचा। भाग्य अच्छा था, इसलिए अचानक जंगल में एक हाथी का बच्चा भी भगवान् ने जुटा दिया। उसके साथ रहने से बड़ी सहूलियत हो गई। अन्त में हाथी का बच्चा बेचकर देशी जहाज पर नारियल के बोरों के साथ अपना भी चालान कराके तीन महीने में एकदम आराकान पहुँचकर इस पार चला आया। वे दिन बड़े मजे में कटे थे रामदास बाबू !—आज अचानक थाने में एक परम मित्र के साथ मिलाप हो गया। वी० ए० येलिया उनका नाम है, बड़ा प्रेम करते हैं मुझसे। बहुत दिनों के बाद ढूँढ़ते-ढूँढ़ते एकदम सिंगापुर से बर्मा आ पहुँचे हैं। हाव-भाव से मालूम हुआ कि पता लगा लिया है मगर भीड़ में उतनी निगाह नहीं कर पाये, नहीं तो···"

अचानक हँसते-हँसते अपूर्व के चेहरे की तरफ देखकर एकाएक चौंक पड़े, बोले, "यह क्या अपूर्व बाबू ? क्या हो गया आपको ?"

अपूर्व दाँतों तले होंठ दबाकर अपने को सँभालने की कोशिश कर रहा था, डॉक्टर की बात समाप्त होने के पहले ही वह दोनों हाथों से अपना मुँह ढककर तेजी के साथ बाहर निकल गया।

१६

इससे सबको बहुत ही विस्मय हुआ। कमरे में उजाला अधिक नहीं था, मगर फिर भी उसके चेहरे का अस्वाभाविक भाव और आँसुओं से रुँधे हुए कंठ का असर किसी से छिपा न रहा। कुछ देर चुप रहकर बैरिस्टर कृष्ण अय्यर ने पूछा, "ये कौन थे डॉक्टर ? बहुत ही सेण्टिमेण्टल है।" अय्यर ने अपने अन्तिम शब्द पर जोर देते हुए स्पष्ट आरोप-सा किया—"ऐसा आदमी यहाँ क्यों ?"

डॉक्टर चुप रहे । तलवरकर ने चट से उत्तर दिया । बोले, "ये मिस्टर
मुखर्जी है—अपूर्व मुखर्जी । हम दोनों एक ही ऑफिस में काम करते हैं । ये
सुपीरियर ऑफिसर हैं ।" फिर जरा ठहरकर स्नेह और श्रद्धा के साथ कहने
लगे, "मगर हम दोनों अत्यन्त अन्तरंग हैं, मित्र हैं । और सेण्टिमेण्टल
डॉक्टर बाबू, मुखर्जी को रंगून में जो सर्वप्रथम अनुभव हुआ था, आप
शायद उनका किस्सा कहीं सुना ? वह एक…"

सहसा भारती पर दृष्टि पड़ जाने से वे लजाकर रुक गये । फिर बोले,
"खैर, जो भी हो, पहली भेंट से ही उनसे मेरी मित्रता हो गई—वास्तव में
वे मेरे परम मित्र हैं ।"

तलवरकर की आकुलता और खासकर उसके बार-बार परम मित्र
शब्द के प्रयोग से बैरिस्टर को फिर सेण्टिमेण्टलिज्म पर कटाक्ष करते
साहस नहीं हुआ, परन्तु उसका चेहरा संदिग्ध और खिन्न-सा ही बना रहा

डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, "भावुकता चीज ऐसी कोई बुरी नहीं
अय्यर और यह समझना भी ठीक नहीं कि सब तुम जैसे कड़े पत्थर हो जायें
तभी काम चलेगा ।"

कृष्ण अय्यर प्रसन्न नहीं हुए । बोले, "ऐसा मैं नहीं समझता, मग
इतना समझ लेने में भी शायद कोई दोष नहीं कि इस कमरे के अलावा उ
के लिए चलने-फिरने के लिए बहुत काफी जगह खुली पड़ी है ।"

तलवरकर मन-ही-मन नाराज हुए । वे बार-बार अपना परम मि
जिसे बता रहे हैं, उन्हीं के सामने अवांछित व्यक्ति सिद्ध करने की कोशि
करना—उन्होंने अपना ही अपमान समझा । कहा, "मिस्टर अय्यर
अपूर्व बाबू को मैं पहचानता हूँ । यह सच है कि हमारे मंत्र की दीक्षा मि
उन्हें ज्यादा दिन नहीं हुए हैं, परन्तु मित्र की बिना भरोसे की मुक्ति
थोड़ा-बहुत विचलित हो जाना, कोई भारी अपराध नहीं है । मैं आश
करता हूँ कि यहाँ भी उनके लिए जगह की कमी नहीं रहेगी ।"

आज कृष्ण अय्यर ने भीड़ में खड़े-खड़े अपूर्व की तरफ ताक लिया
था । वे चुप रहे । डॉक्टर ने अपनी स्वाभाविक शान्ति के साथ कहा, "जरूर
कमी नहीं रहेगी ।" इतना कहकर वे उपस्थित सभी के चेहरों की तरफ मन
कर मुस्कराते रहे, फिर मानो भारती को ही लक्ष्य करके सहसा गम्भी

होकर बोले, "मगर यह मित्रता संसार में कितनी क्षण-भंगुर चीज है भारती! आज जिसके विषय में कल्पना भी नहीं की जा सकती, कल उसके जरा-सा कारण मिलने पर चिर-विच्छेद हो जाता है। दुनिया में यह कोई अस्वाभाविक नहीं तलवरकर, इसके लिए भी तैयार रहना अच्छा है। मनुष्य बड़ा कमजोर है अय्यर, बड़ा ही निर्बल है। उसकी चोट सहने के लिए तब इन्हीं जज्बातों की आवश्यकता पड़ती है।"

इन सब बातों का कोई उत्तर नहीं और न इनका प्रतिवाद ही। दोनों चुप रहे, परन्तु भारती का चेहरा मलीन हो गया।

डॉक्टर पर इन सबकी अविचलित भक्ति है, और भारती इस बात को भली प्रकार जानती है कि बिना कारण कोई बात कहना डॉक्टर के स्वभाव के विरुद्ध है, परन्तु किस बात पर और किसलिए उन्होंने यह बात कही, और ठीक-ठीक उसका क्या मतलब हुआ, इस बात को समझ न सकने के कारण उसका मन आशंका से काँप-सा गया।

डॉक्टर ने सामने की घड़ी की तरफ देखकर कहा, "मेरा तो जाने का समय हुआ जा रहा है भारती, आज रात की ही गाड़ी से जा रहा हूँ!"

कहाँ और किसलिए—स्वयं अपने-आप बिना बताये ऐसा अनावश्यक कुतूहल प्रकट करने का इन लोगों में नियम नहीं है।

क्षण-भर उत्सुक दृष्टि से देखते रहने के बाद तलवरकर ने पूछा, "मेरे लिए आपकी क्या आज्ञा है?"

डॉक्टर ने हँसकर कहा, "आज्ञा तो है ही, मगर एक बात है, बर्मा में अगर स्थान न रहे तो कम-से-कम अपने देश में तो रहेगा ही। मजदूरों पर जरा दृष्टि रखना।"

तलवरकर ने गर्दन हिलाकर कहा, "अच्छा। फिर कब मिलन होगा?"

डॉक्टर ठहाका मारकर हँस दिये, बोले, "तुम नीलकान्त जोशी के शिष्य हो। यह तुमने कैसे प्रश्न कर दिया?"

डॉक्टर ने फिर कहा, "अब देर मत करो, जाओ—घर पहुँचते-पहुँचते प्राय: सवेरा हो जाएगा।—तो क्या वहाँ प्रैक्टिस करना तय कर लिया अय्यर?"

कृष्ण अय्यर ने सिर हिलाकर अपनी सम्मति बताई। किराये की गाड़ी

बाहर बाट देख रही थी। दोनों बाहर चलने लगे तो हलवरकर बोल उठे, "अँधेरे में अपूर्व बाबू कहाँ चले गये, एक बार देखा तक नहीं—"

इस बात के उत्तर में सब चुप रहे। कुछ ही देर बाद गाड़ी के शब्द से मालूम हुआ कि वे चले गये।

डॉक्टर ने कहा, "तुम क्या समझती हो, अपूर्व घर चला गया?"

भारती ने सिर हिलाकर कहा, "ना, यहीं आसपास में कहीं होंगे, जरा ढूँढा जाय तो मिल जायेंगे। मुझसे एक बार मिले बिना वे कभी नहीं जायेंगे।"

डॉक्टर ने हँसकर कहा, "तो दस-पन्द्रह मिनट में यह काम कर डालना आवश्यक है। मैं इससे अधिक समय नहीं दे सकता बहन।"

"ना, इतने में वे आ ही जायेंगे।" इतना कहकर भारती ने सिर्फ डॉक्टर की बात का ही उत्तर नहीं दिया, बल्कि अपने को भी विश्वास दे लिया।

अकेले इतने अँधेरे में वे कभी नहीं जा सकते, लिहाजा यहीं कहीं होंगे—इस विषय में जैसे वह निश्चित थी वैसे ही अपने इस अधिक भक्ति और श्रद्धाभाजन अतिमानव से विदा होने के पहले एक बार हृदय से क्षमा माँगने की आवश्यकता के विषय में निःसंशय थी। अनेक दिशाओं और अनेक कारणों से अपूर्व ने बहुत-से अपराध इकट्ठे कर लिये थे। समय रहते उन की सफाई कराये बिना भारती की जान कैसे बचे? परन्तु यह मूल्यवान समय व्यर्थ नष्ट हुआ जा रहा है। अपूर्व का पता ही नहीं। दरवाजे के बाहर से अँधेरे की तरफ भारती की चंचल दृष्टि तीक्ष्ण हो उठी और चौकन्ना चित्त बाहर से परिचित पैरों की आहट की प्रतीक्षा में अधीर हो उठा। उसकी इच्छा होने लगी कि यहीं कहीं पर होगा, जल्दी से जाकर ढूँढ़ लाए। मगर आज इतनी व्याकुलता प्रकट करते हुए अत्यन्त लज्जा अनुभव होने लगी।

डॉक्टर अपने स्ट्रैप से बँधे बोरिया-बिस्तर की तरफ देखकर जँभाई लेते हुए उठ खड़े हुए। भारती ने दीवार की घड़ी की ओर देखा तो मालूम हुआ कि अब पाँच-छह मिनट से ज्यादा समय नहीं है। उसने कहा, "आप पैदल ही जायेंगे?"

डॉक्टर ने सिर हिलाकर कहा, "ना। सम्भवतः दो बज के बीस मिनट पर बड़ी सड़क से एक घोड़ागाड़ी निकलेगी, चालू गाड़ी होगी—छह-सात आने में स्टेशन पहुँचा देगी।"

भारती ने कहा, "बिना पैसे भी पहुँचा देगी? जाने से पहले क्या सुमित्रा दीदी को देखने नहीं आयेंगे? सचमुच वे बीमार है।"

डॉक्टर ने हँसकर कहा, "मैंने तो नहीं कहा कि वे बीमार नहीं है, मगर डॉक्टर को दिखाये बिना बीमारी अच्छी कैसे होगी?"

भारती ने कहा, "यदि यही बात है तो दुनिया में आपसे बढ़कर डॉक्टर कौन होगा?"

डॉक्टर ने व्यंग्य-भरे स्वर में उत्तर दिया, "तब तो अच्छी हो चुकी! समय बीत गया उसका अभ्यास छूटे। यह विद्या तो घुल-पुँछकर साफ हो गई होगी। इसके अतिरिक्त इतना समय ही कहाँ है कि बैठा-बैठा इलाज करता रहूँ।"

भारती सहसा बोल उठी, "समय कहाँ! समय कहाँ! कोई मर भी जाय तो आपको समय नहीं मिलने का। किस अर्थ का है ऐसा देश का काम? देखिये डॉक्टर बाबू, ऐसा दिमाग नहीं है आपका कि सीखी हुई विद्या घुल-पुँछ जाय। यदि सचमुच ही कोई चीज घुल-पुँछ गई है तो वह है किसी पर आपका प्रेम!"

क्षण-भर डॉक्टर का हँसता हुआ चेहरा गम्भीर होकर फिर पूर्ववत् हो गया। परन्तु तीक्ष्ण-दृष्टि भारती उसी समय अपनी भूल समझ गई। यद्यपि उनकी घनिष्ठता बहुत दूर तक पहुँच गई है, मगर फिर भी इस दिशा में उँगली उठाने का अधिकार अब तक उसे नहीं प्राप्त है। वास्तव में सुमित्रा कौन है, डॉक्टर के साथ उसका क्या सम्बन्ध है और अब कैसे वह इस दल में आ गई—इस विषय में अब तक भारती कुछ नहीं जानती। इनके दल में व्यक्तिगत परिचय के सम्बन्ध में कुतूहली होना मना है, अतः अनुमान करने के अलावा ठीक तौर से कोई बात जानने का कोई उपाय ही नहीं। सिर्फ स्त्री होने के कारण ही उसे सुमित्रा के मन के भाव से कुछ-कुछ मालूम हो गया था, मगर अपने उस अनुमान के आधार पर अकस्मात् इतना बड़ा इशारा कर बैठने से उसे सिर्फ संकोच ही नहीं, डर भी मालूम हुआ। डर

डॉक्टर का नहीं, सुमित्रा का। यह बात किसी भी प्रकार उसके कान तक नहीं पहुँचनी चाहिए। सुमित्रा का और कोई परिचय मालूम न होने पर भी उस तीक्ष्ण बुद्धिशालिनी रमणी के परिचय से कोई भी अपरिचित नहीं था। उसके रूप, भाषण, सौन्दर्य, संयत-गम्भीर बातचीत, उसके अवंचन व्यवहार की गम्भीरता, इस दल में रहते हुए भी उसके प्रभुत्व को सब मन-ही-मन अनुभव करते थे। यहाँ तक कि उसकी बीमारी के बारे में भी अपने-आप किसी तरह की चर्चा छेड़ने का किसी का साहस न पड़ता था। परन्तु उस कठोरता को भेदकर उसकी अत्यन्त गुप्त कमजोरी उस दिन अपूर्व और भारती के सामने प्रकट हो पड़ी थी, जिस दिन एक आदमी को विदा करते समय सुमित्रा अपने को सँभाल न सकी थी और उसी दिन से मानो वह अपने को सबसे अलग बहुत दूर हटा ले गई है। उसकी वह हृदय की वेदना दूसरे की बिना माँगी सहानुभूति की चोट से एकाएक भड़क उठेगी, इस बात की याद आते ही भारती का क्षुब्ध मन भय से भर गया।

डॉक्टर ने आरामकुरसी पर लेटकर सामने टेबल पर पैर फैला दिये और उनके मुँह से अचानक ही निकल पड़ा "आह!"

भारती ने आश्चर्य के साथ कहा, "आप तो सो रहे हैं?"

डॉक्टर ने अप्रसन्न होकर कहा, "क्यों, मैं क्या घोड़ा हूँ जो जरा लेटते ही गठिया पकड़ लेगी? मुझे नींद आ रही है—तुम लोगों के समान मैं खड़े-खड़े नहीं सो सकता।"

भारती ने कहा, "खड़े-खड़े तो मैं भी नहीं सो सकती! मगर कोई आकर कहे कि आप दौड़ते-दौड़ते सो सकते हैं, तो मुझे उसमें भी आश्चर्य नहीं होगा। आपकी इस देह से संसार में क्या नहीं हो सकता, यह कोई नहीं जानता; लेकिन समय तो हो गया, अभी गये बिना गाड़ी नहीं मिलेगी।"

"चली जाने दो।"

"जाने दो कैसे?"

"उफ्—बड़ी जोर से नींद आ रही है, आँखें नहीं खोली जातीं।" कहकर डॉक्टर सोने लगे।

भारती प्रसन्नचित्त से सोचने लगी, केवल मेरी ही प्रार्थना से आज इनका जाना टल गया है। नहीं तो नींद तो दूर रही, बिजली पड़ने की दुहाई

देकर भी उनके संकल्प में बाधा नहीं पहुँचाई जा सकती।

भारती ने कहा, "सचमुच अगर नींद आ रही हो तो ऊपर चलकर सो रहिए न।"

डॉक्टर ने आँखें मींचे हुए ही पूछा, "फिर तुम क्या करोगी? अपूर्व की बाट देखते-देखते रात बिता दोगी?"

भारती ने कहा, "ना। बगल की कोठरी में बिछौना बिछाकर सो रहूँगी।"

डॉक्टर ने कहा, "अप्रसन्न होकर लेटा जा सकता है, पर सोया नहीं जा सकता। बिछौने पर पड़े-पड़े फड़फड़ाते रहने से बढ़कर और कोई दंड नहीं। इससे अच्छा है कि ढूँढ़ लाओ—मैं किसी से कहूँगा नहीं।"

भारती का चेहरा लाल हो उठा, पर उसका आचरण पकड़ में न आ सका, कारण डॉक्टर आँखें मींचे हुए थे। उनकी मिची हुई आँखों की ओर देखती हुई भारती कुछ देर मौन रही। फिर अपने को सँभालकर धीरे से बोली, "अच्छा डॉक्टर बाबू, यह बात आपने जानी कैसे कि बिस्तर पर पड़े-पड़े फड़फड़ाते रहने से बढ़कर और कोई दण्ड नहीं?"

"लोग कहा करते हैं, इसी से।"

"अपने अनुभव से कुछ नहीं जानते?"

डॉक्टर ने आँखें खोलकर कहा, "अरी भारती, हम जैसे अभागों को बिस्तर भी नसीब नहीं होते, फिर उन पर फड़फड़ाना कैसा! इतनी रईसी के लिए अवकाश कहाँ है?" और वे मुस्करा दिये।

भारती सहसा पूछ बैठी, "अच्छा डॉक्टर बाबू, लोग कहा करते हैं कि आपके भीतर क्रोध है ही नहीं, क्या सच है?"

डॉक्टर ने कहा, "ना-ना, लोग झूठमूठ मेरे विरुद्ध प्रचार करते हैं—वे मुझसे जलते हैं।"

भारती ने हँसकर कहा, "या फिर बहुत अधिक चाहते हैं, इसी से अफवाह उड़ाया करते हैं। वे तो यह भी कहते हैं कि आपमें न मान-अभिमान है, न दया-माया है, हृदय बिल्कुल पत्थर-सा हो गया है।"

डॉक्टर ने कहा, "यह अत्यन्त प्रेम की बात है। फिर?"

भारती ने कहा, "फिर उस पत्थर पर केवल एक चीज खुदी है 'जननी-

जन्मभूमि', जिसका आदि नहीं, अन्त नहीं, क्षय नहीं, व्यय नहीं—जिसकी सूरत हम लोगों को दिखाई नहीं देती, इसी से हम आपके आसपास रह सकती हैं, नहीं तो—" कहते-कहते वह अचानक रुक गई, फिर क्षण-भर बाद कहने लगी, "कैसे बतलाऊँ डॉक्टर बाबू, एक दिन जब मैं सुमित्रा दीदी के साथ बर्मा आयल कम्पनी के कारखाने के पास से जा रही थी, वहाँ नये बायलर की परीक्षा हो रही थी। बहुत-से आदमी खड़े-खड़े तमाशा देख रहे थे। अचानक उसका एक दरवाजा खुल जाने पर ऐसा मालूम हुआ जैसे उसके भीतर आग का तूफान उठ रहा हो। उसमें उस सारी धारा को इकट्ठा करके डाल दिया जाता तो मानो उसे भी वह जलाकर स्वाहा कर देता! सुना कि वह अकेला ही उस विशाल कारखाने को जला सकता है। लेकिन दरवाजा जैसे ही बन्द हुआ कि वह फिर जैसे का तैसा शान्त जड़-स्थिर हो गया—उसके भीतर की गर्मी बाहर रही ही नहीं। सुमित्रा दीदी ने सहसा एक गहरी साँस ले ली। मैंने विस्मय के साथ पूछा, 'क्या बात है दीदी ?'

"सुमित्रा दीदी ने कहा, 'इस बलवान यन्त्र की याद रखना भारती, इससे तुम अपने डॉक्टर बाबू को पहचान सकोगी। यही उनका वास्तविक स्वरूप है।' "

सहसा भारती डाक्टर के मुँह की ओर देखने लगी।

डॉक्टर ने अन्यमनस्क की तरह मुस्कराते हुए कहा, "सब कोई सच मुच ही मुझसे प्रेम करते हैं! पर मारे नींद के अब तो मेरी ही आँखें मिची आती हैं भारती, कोई उपाय करो। परन्तु इससे पहले अपूर्व कहाँ गया, देखोगी नहीं ?"

"लेकिन आप यह किसी से कह नहीं सकेंगे!"

"ना। लेकिन मुझसे शरमाने की शायद तुम आवश्यकता नहीं समझोगी।"

भारती ने सिर हिलाकर कहा, "ना। आदमी से ही आदमी को शर्म मालूम होती है।" और वह एक लालटेन हाथ में लिए बाहर चली गई।

दस-पन्द्रह मिनट बाद वापस आकर भारती ने कहा, "अपूर्व बाबू गये

डॉक्टर आश्चर्य के साथ उठकर बैठ गये और बोले, "ऐसे अँधेरे में? अकेले?"

"लगता तो ऐसा ही है।"

"विस्मय है।"

भारती ने कहा, "मेरे बिस्तर करे-कराये हैं, सो जाइये।"

"और तुम?"

"मैं जमीन पर कोई कम्बल बिछाकर पड़ी रहूँगी।"

डॉक्टर उठकर खड़े हो गए, "तो चलो, संकोच-लज्जा तो आदमी आदमी से करता है—मैं तो आखिर पत्थर ही ठहरा!"

ऊपर के कमरे में जाकर डॉक्टर खाट पर सो रहे। भारती ने मसहरी डालकर चारों ओर से उसे अच्छी प्रकार दबा दिया और अपने लिए पास ही जमीन पर बिस्तर बिछा लिया।

डॉक्टर ने उसके बिस्तर की ओर देखकर रुँधे गले से कहा, "सब मिलकर मेरी इस तरह लापरवाही करते हैं तो मेरे आत्मसम्मान को चोट पहुँचती है।"

भारती हँस दी। बोली, "हम सबों ने मिलकर आपको आदमी की श्रेणी से निकालकर पत्थर का देवता बना रखा है।"

"इसके मानी यह कि मुझसे कोई भय नहीं?"

भारती ने बिना किसी संकोच के उत्तर दिया, "रत्ती-भर भी नहीं। आपसे किसी का भी रंच-मात्र अकल्याण हो सकता है, इस बात की हम कल्पना ही नहीं कर सकती।"

इसके उत्तर में डॉक्टर ने हँसकर केवल इतना ही कहा, "अच्छी बात है, पता चल जाएगा।"

बिस्तर पर लेटते ही सहसा भारती पूछ उठी, "अच्छा, आपका नाम 'सव्यसाची' किसने रक्खा था डॉक्टर बाबू? यह तो आपका असली नाम नहीं मालूम होता।"

डॉक्टर हँसने लगे। बोले, "असल नाम चाहे जो हो, यह नकली नाम दिया है मेरे पाठशाला वाले पंडितजी ने। उनके यहाँ एक बहुत ऊँचा आम का पेड़ था, जिसके आम केवल मैं ही ढेले मारकर गिरा सकता था। एक

चार छत से कूदने पर मेरे दाहिने हाथ में चोट आ गई। डॉक्टर ने आकर उस पर बैण्डेज बाँधकर हाथ को गले से लटका दिया। इससे और सब तो दुखित हुए पर पण्डितजी को प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा, 'अब आम बचे रहेंगे और पकने पर दो-चार पेट में भी पहुँच सकेंगे।'"

भारती ने कहा, "आप बड़े उद्दंड थे?"

डॉक्टर ने कहा, "हाँ, बदनाम तो थोड़ा था ही। खैर, मगर दूसरे ही दिन बायें हाथ से फिर आम गिराकर खाने लगा। पंडितजी को किसी तरह खबर मिल गई और उन्होंने हाथोंहाथ पकड़ भी लिया। कुछ देर तक वे मेरी ओर अवाक् होकर देखते रहे, फिर बोले, 'कुसूर हो गया क्या बेटा सव्यसाची, आमों की आशा अब मैं नहीं रखता, दाहिना हाथ तो टूट गया, बायाँ टूट जाने पर पैरों की बारी आयेगी। रहने दो बेटा, अब कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं, थोड़े-बहुत कच्चे आम जो शेष बचे हैं, उन्हें मैं अभी आदमी से तुड़वाता हूँ।'"

भारती खिलखिलाकर हँस पड़ी, "तो पण्डितजी का बड़े दुःख से दिया हुआ नाम है यह!"

डॉक्टर खुद भी हँस दिये, बोले, "हाँ, बड़े दुःख से दिया हुआ नाम है। मगर तभी से मेरे असली नाम को लोग बिल्कुल भूल ही गये समझो।"

भारती ने कुछ देर स्थिर रहकर पूछा, "अच्छा, सब कोई जो कहा करते हैं कि देश और आपमें और आप और देश में कोई अन्तर ही नहीं—दोनों एक ही बात है—यह कैसे?"

डॉक्टर ने कहा, "भारती! बचपन का वह भी एक समय था। इस जीवन में न जाने कितना आया, कितना गया, पर वह दिन अक्षय ही बना रहा। हमारे गाँव के पास वैष्णवों का एक मठ था। एक दिन रात को डाकुओं ने उस पर धावा बोल दिया। शोर-गुल और रोने-पीटने के शोर से गाँव के लोग चारों ओर से इकट्ठे हो गए, लेकिन डाकुओं के पास एक बन्दूक थी। उन लोगों ने जब फायर करना शुरू किया तो फिर कोई आगे न बढ़ सका। मेरे एक चचेरे भाई थे—बड़े ही साहसी और परोपकारी—जाने के लिए छटपटाने लगे, लेकिन यदि गये तो निश्चय मारे जाएँगे, इस विचार से गाँवों के लोगों ने उन्हें पकड़ रखा। अपने को किसी तरह भी छुड़ा न सकने के कारण

वे वहाँ से असफलता से उछलने लगे और डाकुओं को गाली देने लगे, जिस का कोई फल नहीं हुआ। डाकुओं ने केवल एक बन्दूक के बल से दो-तीन सौ आदमियों के सामने महन्त को खूँटी से बाँधकर जला डाला। भारती, तब मैं बच्चा ही था, परन्तु उस महन्त का गिड़गिड़ाना, निहोरा और मरण-चीत्कार आज भी मेरे कानों में कभी-कभी गूँज उठता है। उफ्—कैसा भयानक हृदयविदारक आर्तनाद था वह !"

भारती ने साँस रोके हुए कहा, "फिर ?"

डॉक्टर ने कहा, "फिर महन्तजी की जीवन-भिक्षा का अन्तिम अनुनय सारे गाँव के सामने धीरे-धीरे विलीन हो गया। डाकुओं का सरदार जाते समय बड़े भैया से अपने पिता की शपथ खाकर कह गया कि 'आज तो हम सब थक गये हैं, मगर महीने-भर के भीतर आकर हम इसका बदला जरूर लेंगे।' भैया जिला मजिस्ट्रेट के पास जाकर रोने-धोने और कहने लगे, 'एक बन्दूक चाहिए।' मगर पुलिस ने कहा, 'नहीं मिल सकती।' दो साल पहले किसी अत्याचारी सब-इन्सपेक्टर के कान मल देने के अपराध में उन्हें दो महीने की सजा हो चुकी थी, उसी कसूर का विचार करके मजिस्ट्रेट ने कह दिया, 'हरगिज नहीं मिल सकती।' भैया ने कहा, 'साहब, तो हम लोग क्या मारे जाएँ ?' साहब ने हँसकर कह दिया, 'जिसे मरने का भय हो, वह घर-द्वार बेचकर हमारे जिले से चला जाय।' "

भारती मारे उत्तेजना के बिस्तर पर उठकर बैठ गई, बोली, "नहीं दी, इतना भयानक खतरा होने हुए भी नहीं दी ?"

डॉक्टर ने कहा, "ना। और केवल इतना ही नहीं, भैया ने जब व्याकुल होकर तीर-धनुष और बरछा बनवाया, तो पता लगते ही पुलिस वह भी उनसे छीन ले गई।"

"फिर क्या हुआ ?"

डॉक्टर ने कहा, "उसके बाद की घटना अत्यन्त संक्षिप्त है। उसी महीने के भीतर ही सरदार ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। अब की बार उसके पास शायद और भी एक बन्दूक आ गई थी। घर के और सब लोग भाग गये, लेकिन भैया को कोई वहाँ से हिला न सका। अन्त मे डाकुओं की गोली से ही उन्हें प्राण देने पड़े।"

भारती का चेहरा पीला पड़ गया, बोली, "क्या !"

डॉक्टर ने कहा, "हाँ। गोली लगने के चार एक घण्टे बाद तक होश में थे। गाँव-भर इकट्ठा होकर हो-हल्ला करने लगा। कोई डा को गालियाँ देने लगा और कोई मजिस्ट्रेट को, पर भैया चुपचाप पड़े रहे। गंवई-गाँव ठहरा, अस्पताल दस-बारह कोस दूर था। रात का वक्त- डॉक्टर बैण्डेज बाँधने आया, मगर भैया ने उसका हाथ हटा दिया औ कहा, 'रहने दो, मैं जीना नहीं चाहता।'" कहते-कहते उस पत्थर के देव का कण्ठ-स्वर सहसा काँप उठा। क्षण-भर चुप रहकर वे फिर कहने लगे "भैया मुझे बहुत प्यार करते थे। मुझे रोते देख उन्होंने एक बार मेरी ओर देखा। उसके बाद धीरे से कहा, 'कमजोर लड़कियों के समान इन भेड़-बकरियों के सुर में सुर मिलाकर तू मत रो भैया। मगर हाँ, राज्य के लोभ से जिन लोगों ने देश में मनुष्य कहलाने लायक कोई प्राणी बा नहीं छोड़ा, उन्हें तू जीवन-भर क्षमा मत करना।' बस, इतनी ही बा उन्होंने कही, इससे अधिक एक शब्द भी नहीं। घृणा के मारे एक-आ 'उफ्-आह' तक उनके मुँह से नहीं निकली और इस पराधीन देश को छोड़ वे सदैव के लिए विदा हो गये। सिर्फ मैं ही जानता हूँ भारती, कितना ब विशाल हृदय उस दिन विदा हो गया।"

भारती निस्पंद बैठी रही। किसी समय किसी गाँव में एक दुर्घट हो गई थी, उसकी एक साधारण कहानी ही तो है! डाकुओं के फेर फँसकर दो-चार साधारण आदमियों की जानें चली गईं। यही तो। संसा के बड़े-बड़े विरोध के कठोर दुःख के आगे यह है क्या चीज! फिर भी उ घटना ने इस पत्थर पर न जाने कितना गहरा प्रभाव छोड़ा है! दूसरा की दृष्टि से दुर्दशा के दुःख के इतिहास में इसका की यह बिल्कु बिल्कुल ही नामालूम है। इस देश में नित्य-प्रति न जाने कितने आदमी चोर-डकैतों के हाथ से मरण रहते हैं। मगर उस घटना में क्या केवल इतनी-सी ही बात थी? यह पत्थर क्या इतने से ही आघात से टूट सकता है?

खोचकर बाहर निकाल लाती है, उसी प्रकार उस पत्थर के चेहरे पर ही उसे मानो समूचा अज्ञात रहस्य पल-भर में दिखाई दे गया। उसने देखा, उन वेदना के इतिहास में मृत्यु कोई चीज ही नहीं, मौत ने उसे चोट नहीं पहुँचाई, उस पर तो मर्मभेदी आघात किया है, उन दोनों आदमियों की मृत्यु के भीतर छुपी हुई शृंखलित पददलित तमाम भारतीयों की उपाय-हीन क्षमता ने। अपने भाई की आसन्न हत्या रोकने के अधिकार से भी वह वंचित रहा। उसे अधिकार था केवल आँखें खोलकर देखते रहने का।

भारती को अचानक मालूम हुआ कि सारी जाति के इस दुःसह लाछन और ग्लानि ने मानो उस पत्थर चेहरे पर गाढ़ी कालिमा लगा दी है।

उसके हृदय के भीतर भारी उथल-पुथल मच गई। उसने कहा, "दादा!"

डॉक्टर ने आश्चर्य के साथ गर्दन उठाकर कहा, "मुझे बुला रही हो?"

भारती ने कहा, "अच्छा, अंग्रेजों के साथ क्या तुम्हारी कभी सन्धि नहीं हो सकती?"

"ना। मुझसे बढ़कर उनका शत्रु और कोई नहीं हो सकता।"

भारती मन-ही-मन दुखी हुई बोली, "तुम किसी से शत्रुता कर सकते हो—किसी का अकल्याण चाह सकते हो, इसकी तो मैं कल्पना ही नहीं कर सकती दादा!"

डॉक्टर कुछ देर चुपचाप भारती के मुँह की ओर देखते रहे, फिर मुस्कराते हुए बोले, "भारती, यह बात तुम्हारे मुँह से अच्छी लगती है, और इसके लिए मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ। तुम सुखी होओ।" यह कहकर वे फिर जरा हँस दिये। मगर यह बात भारती जानती थी कि इस हँसी का कोई मूल्य नहीं हो सकता। सम्भव है कि वह और ही कुछ हो—इसका अर्थ निश्चय करना व्यर्थ है इसीलिए वह चुप रही।

डॉक्टर धीरे-धीरे कहने लगे, "यह बात तुम हमेशा याद रखना भारती कि हमारा देश इनके हाथ में चला गया, केवल इसीलिए मैं इनका शत्रु नहीं हूँ—किसी दिन मुसलमानों के हाथ में भी यह देश चला गया था—परन्तु इसीलिए कि सम्पूर्ण मनुष्यता के इतने बड़े शत्रु शायद दुनिया में और कोई न होंगे। स्वार्थ के लिए धीरे-धीरे मनुष्य को अमानुष बना

दिनों का छोड़ा कोई 'चाउंग' है। प्राचीन काल में बौद्ध भी यहाँ रहा क
थे। जहाँ तक सम्भव है, आसपास कोई बस्ती नहीं है।

इतना बड़ा मकान। अँधेरा ही अँधेरा। आदमी नहीं, आदमी का चि
तक नहीं। दरवाजे-जंगले चोर चुरा ले गए हैं। सामने के घर में घुसे
चमगादड़ और चूहों की बदबू से भारती का दम घुटने लगा। उसी के
में होकर रास्ता है, न जाने कितने जहरीले साँप-बिच्छू वहाँ होंगे!

बड़े भारी हॉल के एक कोने में ऊपर जाने की सीढ़ी है। वह ल
की है। उसमें भी बीच-बीच में तख्ते नहीं। उसी से भारती हीरासिंह
हाथ पकड़े ऊपर चढ़ गई, और सामने का बरामदा पार होकर बड़ी
गाई में निश्चित स्थान पर पहुँची। कमरे में एक चटाई बिछी हुई थी। ए
तरफ दो मोमबत्तियाँ जल रही थीं, उन्हीं के पास सभानेत्री के आसन
सुमित्रा बैठी हुई थीं। दूसरी ओर डॉक्टर बैठे थे। उन्होंने स्नेह भरे स्
में बुलाकर कहा, "आओ भारती, मेरे पास आकर बैठो।"

भारती का हृदय अज्ञात आशंका से जोरों से धड़कने लगा।
एकदम मौन रही। वह जल्दी से डॉक्टर के पास बैठ गई।

भारती के कंधे पर अपना बायाँ हाथ रखकर डॉक्टर ने मानो
[illegible] में बराबर-सा दिया। हीरासिंह भीतर नहीं आया, दरवाजे
पास ही खड़ा रहा। भारती ने चारों ओर दृष्टि उठाकर देखा कि जो
वहाँ बैठे हैं, उनमें से पाँच छः जन। को वह बिल्कुल ही नहीं पहचानती
परिचितों में केवल चार ही जन यहाँ थे — डॉक्टर, सुमित्रा, [illegible]
और कृष्ण अय्यर। [illegible] आकृति पर भारती की
उसकी दृष्टि पड़ी। [illegible]
[illegible] था। बड़ी हँड़िया-सा माथा चेहरा और [illegible]
[illegible], छोटी-छोटी सहमी आँखें, जिनके ऊपर भौंह
[illegible] नहीं, [illegible] दाढ़ी-मूँछें, [illegible]
है, [illegible] ही मालूम हो आता है कि कोई [illegible]
[illegible] है। [illegible] आदमी को भारती ने [illegible]
[illegible] देखा था नहीं [illegible] के लिए [illegible]
[illegible]

सुमित्रा ने भारती की ओर लक्ष्य करके कहा, "भारती, मैं तुम्हारे मन का भाव जानती हूँ, इसलिए मेरी इच्छा नहीं थी कि तुम्हें यहाँ बुलाकर दुख दिया जाय, लेकिन डॉक्टर ने किसी की मानी ही नहीं। अपूर्व बाबू ने क्या किया है, जानती हो ?"

भारती के हृदय में एक ऐसी ही आशंका दिन-भर काँटे के समान चुभती रही है। उसका गला सूख गया और चेहरा सफेद पड़ गया। वह बिना कुछ बोले चुपचाप यों ही देखती रह गई।

सुमित्रा ने कहा, "रामदास को बोथा कम्पनी ने आज डिसमिस कर दिया है। अपूर्व की भी यही दशा होती, पर पुलिस कमिश्नर के सामने हमारी सब पोल खोल देने से उनकी नौकरी बच गई। मामूली वेतन तो था नहीं, शायद पाँच सौ होगा।"

रामदास ने गर्दन हिलाकर कहा, "हाँ।"

सुमित्रा ने कहा, "केवल इतना ही नहीं, 'अधिकार-समिति' एक विद्रोही गिरोह है और हम लोग छिपाकर पिस्तौल आदि रखा करते हैं, ये सब बातें भी उन्होंने बता दी हैं।—इसका क्या दंड होना चाहिए ?"

वह भयंकर आदमी गरज उठा, "डैथ (मृत्यु) !"

अब भारती ने आँखें उठाकर उसकी ओर देखा और वह एकटक देखती ही रह गई।

रामदास ने कहा, "डॉक्टर ही सव्यसाची है, यह खबर उन्हें लग चुकी है। अपूर्व बाबू ने यह भी बता दिया है कि होटल की अमुक कोठरी में उन्हें पकड़ा जा सकता है। यहाँ तक कि दो साल पहले मैं पॉलिटिकल अपराध में सजा भुगत चुका हूँ, यह भी कह दिया है।"

सुमित्रा ने कहा, "भारती, तुम जानती हो कि डॉक्टर पकड़े गये तो उसका फल क्या होगा ? फाँसी से यदि बच भी गये तो ट्रांसपोर्टेशन तो निश्चय ही होगा।—जेण्टलमैन, आप लोग इस अपराध का क्या दण्ड तय करते हैं ?"

सब एक साथ बोल उठे, "डैथ !"

"भारती, तुम्हें क्या कुछ कहना है ?"

भारती के मुँह से बात नहीं निकली। उसने केवल सिर हिलाकर

डॉक्टर ने पूछा, "और किसी के पास पिस्तौल या रिवॉल्वर है?"

"किसी के पास नहीं है।" यह बात सबने बता दी। तब सुमित्रा
पिस्तौल अपनी जेब में रखकर डॉक्टर ने जरा हँसकर कहा, "सुमित्रा, तुम
कहा कि हम लोगों ने डैथ सेण्टेन्स दिया, मगर भारती ने तो नहीं दिया!

सुमित्रा ने क्षण-भर भारती के मुँह की ओर देखकर दृढ़ स्वर से कह
"भारती नहीं दे सकती।"

डॉक्टर ने कहा, "देना चाहिए भी नहीं। क्यों, है न भारती?"

भारती के मुँह से बात नहीं निकली। इस कठोर प्रश्न के उत्तर
उसने केवल औंधी होकर डॉक्टर की गोद में अपना मुँह छिपा लिया।

डॉक्टर ने उसके मस्तक पर एक हाथ रखकर कहा, "अपूर्व बाबू ने
कर डाला है, वह तो मिट नहीं सकता—उसका फल हमें भोगना ही पड़े
— दण्ड देने पर भी और न देने पर भी। मगर मेरा कहना है कि इस
आवश्यकता नहीं—भारती पर इसका भार रहा कि निर्बल आदमी को
जरा बलवान बना डाले।—क्यों, क्या राय है सुमित्रा?"

सुमित्रा ने कहा, "ना।"

सब एक साथ बोल उठे, "ना।"

वह भोंडी शक्ल वाला आदमी सबसे अधिक उछला। उसने अपने दो
पंजे ऊपर उठाकर भारती की ओर इशारा करके कोई बात कह डाली,
साफ सुनाई नहीं दी।

सुमित्रा ने कठोर स्वर में कहा, "हम सबों की एक राय है। इतने
अन्याय को बढ़ावा देने से हम लोगों का सारा काम मिट्टी में मिल जायेगा।

डॉक्टर ने कहा, "मिल जाये तो इसका क्या उपाय है?"

सुमित्रा के साथ-ही-साथ पाँच-सात कंठ गरज उठे, "उपाय क्या है
देश के लिए—स्वाधीनता के लिए हम लोग और कोई बात नहीं मानेंगे
आपकी अकेले की बात से कुछ नहीं हो सकता।"

शान्त हो जाने पर डॉक्टर ने उत्तर दिया। अबकी बार उसका स्व
. . . . रूप से शान्त और नरम सुनाई दिया। उसमें उत्साह या उ
· की भाग तक नहीं थी। उन्होंने कहा, "सुमित्रा, विद्रोह को बढ़ावा
। पर तुम लोग जानते हो कि मेरे अकेले की राय तुम एक सौ आदमि

से भी अधिक कठोर है।" फिर उस बदनसीब आदमी को सम्बोधित करके कहा, "विरजू, अपनी दुर्बलता के कारण तुमने एक बार मुझे बदकिस्मती से दण्ड देने के लिए लाचार किया। अब दूसरी बार लाचार न करो।"

भारती ने सिर नहीं उठाया। अब तक वह ज्यों-की-त्यों पड़ी हुई थी और उसकी सारी देह थर-थर काँप रही थी। उसकी पीठ पर स्नेहपूर्ण हाथ फेरते हुए डॉक्टर ने उसी प्रकार स्वाभाविक स्वर में कहा "डरो मत भारती, मनुष्य को मैं अभय देता हूँ।"

भारती ने सिर नहीं उठाया, पूरा भरोसा उसे नहीं हुआ।

उसने डॉक्टर के दाहिने हाथ की लम्बी-लम्बी उँगलियाँ अपनी मुट्ठी में दबाकर धीरे से कहा, "मगर इन लोगों ने तो अभय नहीं दिया?"

डॉक्टर ने कहा, "आसानी से देंगे भी नहीं। मगर इस बात को ये समझते हैं कि मैंने जिसे अभय दे दिया, उसे छुआ नहीं जा सकता।" फिर जरा हँसकर कहा, "अच्छी प्रकार सोने को नहीं मिलता भारती, कभी-कभी आधा पेट खाकर दिन काट देना पड़ता है—फिर भी ये लोग जानते हैं कि इन दुबली-पतली उँगलियों के दबाव से आज भी विरजू के इतने बड़े-बड़े शेर के-से पंजे कुचले जा सकते हैं। क्यों विरजू, ठीक है न?"

घटगाँव का मंगोलियन चेहरा और भी काला पड़कर चुप रह गया।

डॉक्टर ने कहा, "लेकिन अपूर्व अब यहाँ रहे नहीं। देश चला जाय। अपूर्व देशद्रोही नहीं है, अपने देश को वह सम्पूर्ण हृदय से चाहता है, मगर अधिकांश···खैर, जाने दो। अपनी जाति की निन्दा नहीं करूँगा—लेकिन बड़ी कमजोर जाति है यह। अपूर्व को मजबूत बनाने का भार तुम्हें दे दिया भारती, पर मुझे आशा नहीं है। घर जाकर उसे आज की बात, तुम्हारी बात—कुछ भी भूलने में अधिक समय नहीं लगेगा। खैर, यह पीछे की बात है। इस समय हम सभानेत्री से अनुरोध कर सकते हैं कि आज की यह सभा भंग कर दी जाय।" यह कहकर उन्होंने सुमित्रा की ओर देखा।

सुमित्रा डॉक्टर से कभी 'तुम' और कभी 'आप' कहकर सम्मान के साथ बातचीत किया करती है, तब भी उसी प्रकार से बोली, "अधिकांश का मत जहाँ एक व्यक्ति के शारीरिक बल से पराजित हो जाता है, उसे और चाहे जो कहा जाय, सभा नहीं कहा जा सकता। मगर, आपको यदि

गया नाटक-अभिनय करना था, तो पहले ही बता दिया होता ?"

डॉक्टर ने कहा, "अभिनय न होता तो अच्छा होता, पर अकस्मात् विघ्न के कारण यदि नाटक हो गया सुमित्रा, तो इतना तो तुम लोगों को भी मानना पड़ेगा कि अभिनय अच्छा ही रहा।"

रामदास ने कहा, "मेरी तो धारणा ही नहीं थी कि ऐसा हो सकता है।"

डॉक्टर ने कहा, "नमस्कार, मित्रता जैसी चीज इतनी क्षण-भंगुर है, क्या इस बात की भी तुम्हें धारणा थी ? फिर भी ऐसा सारा संसार में कहीं हो जाता।"

कृष्ण अय्यर ने कहा, "हम लोगों की बर्मा की ऐक्टिविटी (क्रियाशीलता) जाती रही। अब यहाँ से भागना पड़ेगा।"

डॉक्टर ने कहा, "हाँ, भागना तो पड़ेगा ही। लेकिन समय के अनुसार स्थान छोड़ देना और ऐक्टिविटी छोड़ देना, दोनों एक बात नहीं अय्यर! यदि वहाँ ज्यादा समय तक बैठने की जगह न मिले, तो उसकी शिकायत करना हम लोगों के लिए शोभा नहीं देता।" कहकर वे भारती को इशारा करके उठ खड़े हुए, बोले, "हीरासिंह, अपूर्व बाबू को खोल दो। चलो भारती, तुम लोगों को सुरक्षित पहुँचा आऊँ।"

हीरासिंह आज्ञापालन करने के लिए आगे बढ़ा ही था कि सुमित्रा ने कठोर स्वर में कहा, "अभिनय के अन्तिम दृश्य में तालियाँ बजाने को जी चाहता है। पर वह कोई नई बात नहीं, बचपन में शायद किसी उपन्यास में पढ़ी थी। इसमें जरा-सी कमी रह गई। युगल-मिलन हम लोगों के सामने ही हो जाता तो अभिनय में कहीं कोई त्रुटि नहीं रह जाती। क्यों, ठीक है न भारती ?"

भारती मारे शर्म के मर-सी गई।

डॉक्टर ने कहा, "शरमाने की इसमें कोई बात नहीं भारती ! बल्कि, मैं चाहता हूँ कि अभिनय समाप्त करने के जो स्वामी हैं, वे किसी दिन [illegible] जरा भी कहीं कोई कमी न रखें।" फिर जेब में से सुमित्रा की [illegible] निकालकर—उसके पास रखते हुए बोले, "मैं इन्हें पहुँचाने जाता [illegible] कोई भय की बात नहीं, मेरे पास एक और है।" इसके बाद ब्रजेन्द्र

की ओर वनखियों से देखते हुए बोले, "तुम लोग जो मजाक में कहा करते हो कि मुझे उल्लू की तरह अँधेरे में दिखाई देता है, यह आज उसे कोई भूल न जाना!"

वे एक गूढ़ और भयंकर-सा इशारा करके भारती और अपूर्व को अपने साथ लेकर चलने को प्रस्तुत हो गये।

सुमित्रा अचानक खड़ी हो गई और बोली, "क्या फाँसी की रस्सी अपने ही हाथ अपने गले में डाले बिना काम नहीं चल सकता था?"

डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, "एक मामूली-सी रस्सी के भय से कैसे काम चलेगा सुमित्रा?"

किसी काम में पड़ने से रोकने के लिए इस आदमी को मौत का डर दिखाना इतनी बड़ी मूर्खता है कि इस बात का विचार करके सुमित्रा स्वयं लज्जित हो गई, पर उसी समय व्याकुल कण्ठ से बोल उठी, "वह सब तो तितर-बितर हो ही गया—पर अब भेंट कब होगी?"

डॉक्टर ने कहा, "आवश्यकता पड़ते ही हो जाएगी।"

"वह आवश्यकता क्या अभी आई नहीं?"

"आई होगी तो अवश्य होगी।"

वे अपूर्व और भारती को साथ लेकर होशियारी के साथ नीचे उतर गये।

जिस गाड़ी में भारती आई थी, वह अब तक खड़ी ही थी। गाड़ीवान को नींद से जगाकर उसी में तीनों जने बैठकर चल दिये।

बहुत देर के मौन को भग करके भारती ने पूछा, "दादा, हम लोग कहाँ जा रहे हैं?"

"अपूर्व के घर।" इतना कहकर डॉक्टर खिड़की में से मुँह निकालकर बाहर अँधकार की ओर, जितनी दूर दृष्टि जा सकती थी, देखकर स्थिर होकर बैठ गये। दो मील के करीब चुपचाप चलने के बाद गाड़ी ठहराकर डॉक्टर उतरने को प्रस्तुत हुए तो भारती ने आश्चर्य के साथ पूछा, "यहाँ क्यों?"

डॉक्टर ने कहा, "अब लौटूंगा। वे सब बैठे बाट देखते होंगे—कुछ निर्णय तो हो ही जाना चाहिए।"

"निर्णय !" भारती ने व्याकुल होकर उनका हाथ पकड़ के कहा, "यह नहीं, कदापि नहीं होगा। तुम मेरे साथ चलो।" पर बात मुँह से निकलने के बाद सुमित्रा के समान झिझककर रह गई। कारण, डॉक्टर के कुछ कहने के मानी ही है निश्चय करके कहना, और संसार में किसी का ऐसा कोई भय ही नहीं जो उन्हें रोक सकता हो। फिर भी भारती से हाथ नहीं छोड़ा गया, वह धीरे से बोली, "पर तुम्हारी मुझे बहुत आवश्यकता है दादा !"

"यह मुझे मालूम है। अपूर्व बाबू, आप क्या परसों के जहाज से घर नहीं जा सकेंगे ?"

अपूर्व ने कहा, "जा सकूंगा।"

भारती सहसा अत्यन्त चंचल हो उठी, बोली, "दादा, अभी मुझे एक बार घर जाना होगा।"

डॉक्टर ने सिर हिलाकर उत्तर दिया, "आवश्यकता नहीं। तुम्हारे कागजात, तुम्हारी समिति का रजिस्टर, तुम्हारा पिस्तौल, कारतूस—सब-कुछ अब तक नवतारा ने हटा दिया होगा। सुबह के समय थाना-तलाशी आयेगी—अतुल स्वयं सशरीर आयेगा—उसकी देशी शराब की बोतल और यह टूटा हुआ बेहाला—अपूर्व बाबू, आपका उस बेहाला पर कुछ दावा है न ?" इतना कहकर वे जरा हँस दिये, फिर भारती से बोले, "इसके सिवा और अधिक कुछ पुलिस के साहब के हाथ न पड़ेगा। कल नौ-दस बजे के करीब घर लौटकर रसोई-असोई बनाकर खा-पीकर तुम्हें जरा लेटने का अवकाश मिल जायगा। रात को दो-तीन बजे के करीब फिर मिलूँगा—कुछ खाने-पीने को रखना, अच्छा।"

भारती दंग रह गई। मन-ही-मन कहने लगी, इस तरह अत्यन्त सदय हुए बिना क्या कोई इस मरण-यज्ञ में कूद सकता है ? बोली, "तुम्हारी निगाह कभी चूकती नहीं, तुम इस-उसकी भलाई-बुराई की चिन्ता रखते हो। संसार में मेरा अपना कहने को कोई नहीं है, अपनी 'अधिकार-समिति' से मुझे बिदा मत कर देना दादा !"

अँधेरे में ही डॉक्टर ने बार-बार सिर हिलाकर कहा, "भगवान् के दान किसी को हटा देने का अधिकार किसी को भी नहीं है, पर इसकी धारा बदल लेनी होगी।"

भारती ने कहा, "तुम्हीं बदल देना।"

डॉक्टर ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। सहसा विचलित होकर कहा, "भारती, अब मेरे पास समय नहीं, मैं जा रहा हूँ।"

धीरे-धीरे वे विलीन हो गये।

१८

अपूर्व के घर का पता बताने की गरज से खिड़की में से मुँह निकालकर भारती ने गाड़ीवान से कहा, "गाड़ीवान, सुनो तीन नम्बर—"

उसकी बात समाप्त होने के पहले ही गाड़ीवान कह उठा, "आई नो (मैं जानता हूँ)।"

गाड़ी की सीट छोटी होने से दोनों जने सटकर बैठे थे। गाड़ीवान के मुँह से अंग्रेजी सुनकर अपूर्व की सारी देह काँप उठी और भारती ने उसका स्पष्ट अनुभव किया।

इसके बाद करीब घण्टे-भर तक गाड़ी घड़ड़-घड़ड़ चलती ही रही पर दोनों में कोई बातचीत नहीं हुई। तिमिराच्छन्न मौन रात्रि में गाड़ी के पहियों और सड़क के कंकड़ों के संघर्ष से जो कठोर शब्द होने लगा, उससे रह-रहकर अपूर्व के रोयें खड़े होने लगे और भय लगने लगा कि आसपास के लोगों की नींद खुले बिना नहीं रही होगी।

अपूर्व के दरवाजे के सामने गाड़ी आकर खड़ी हो गई। भारती ने भीतर से गाड़ी का दरवाजा खोलकर अपूर्व को उतरने के लिए इशारा किया और स्वयं भी उसके पीछे-पीछे उतर पड़ी। उसने मुलायम स्वर में गाड़ीवान से पूछा, "कितना भाड़ा हुआ?"

गाड़ीवान ने जरा हँसकर कहा, "नॉट ए सिंगल पाई (एक पाई भी नहीं)।" और दूसरे ही क्षण सिर हिलाकर, "गुडनाइट टू यू।" कहकर वह गाड़ी हाँकता हुआ सीधा चला गया।

भारती ने पूछा, "तिवारी है?"

"है।"

स्निग्ध स्वर में बोली, "ज़रा सोने का प्रयत्न कीजिए, मैं आपके माथे पर हाथ फेर देती हूँ।" यह कहकर वह धीरे-धीरे हाथ फेरने लगी।

अपूर्व ने रुँधे हुए गले से कहा, "कल जहाज जाता होता, तो मैं कल ही चला जाता।"

भारती ने कहा, "अच्छी बात है, कल नहीं तो परसों चले जाइएगा। एक दिन में आपकी कोई हानि नहीं होगी।"

क्षण-भर अपूर्व चुप रहकर कहने लगा, "बड़ों की—बड़े-बूढ़ों की बात नहीं मानने से ऐसा ही होता है। माँ ने मुझसे बार-बार मना किया था।"

"माँ शायद आपको यहाँ आने देना नहीं चाहती थीं?"

"ना, एकदम नहीं। सौ-सौ बार मना किया था, पर मैंने नहीं सुना। उसका फल यह हुआ कि कुछ-कुछ भयंकर लोगों की दृष्टि में अब से मैं हमेशा के लिए शत्रु बना रहूँगा। ख़ैर, वह तो जो होना होगा, एक बार भगवान् का नाम लेकर जहाज पर बैठ-भर जाऊँ।" सहसा उसने एक गहरी साँस ले ली, परन्तु साथ-ही-साथ उससे भी सौ गुनी गहरी साँस जो पास के दूसरे व्यक्ति के हृदय से निकली, उसे वह जान भी न पाया।—और एक भी दिन देर न हो, भगवान् का नाम लेकर जहाज पर बैठ-भर जाय, बस।

बर्मा आना उसका सम्पूर्ण रूप से निष्फल हुआ, घर जाकर इस देश के आदमियों की शत्रुता ही उसे हमेशा याद रहेगी, परन्तु सब दृष्टियों की ओट में किसी की कुण्ठित दृष्टि की प्रत्येक बूँद से अमृत झरता रहा है—उसकी शायद एक दिन भी उसे याद नहीं आयेगी!

अपूर्व कहने लगा, "इस मकान में पैर रखते ही तुम्हारे पिता से झगड़ा हुआ, अदालत में जुरमाना तक भर आया, जो इस जीवन में कभी नहीं हुआ था। उसी से मुझे होश हो जाना चाहिए था, पर नहीं हुआ।"

भारती चुप थी और चुप ही बनी रही।

अपूर्व स्वयं भी क्षण-भर चुप रहा, और फिर अपने दुर्भाग्य का सूत्र पकड़कर कहने लगा, "तिवारी ने मुझे बार-बार सावधान किया था, 'बाबू जी, इनकी अलग जात है, हमारी दूसरी जात है, ऐसा मत कीजिए।' पर भाग्य में जो लिखा था उसे कौन रोक सकता है, बताओ? ऐसी नौकरी आख़िर गई हो—पाँच सौ रुपये महीने इस उम्र में कितने आदमी पाते हैं?, इसके

दिया मैं लोगों के सामने यह हाथ दिखाऊँगा कैसे ?"

अपूर्व के सिर पर जो हाथ फेर रही थी, वह अचल-सा होने लगा, और इतने साधारण तुच्छ आदमी को मन-ही-मन प्यार करने लगने की शर्म के मारे वह अपने ही आगे हीन हो गई। इस बात को उसके दल के अधिकांश लोग जान गये हैं।

अपूर्व की जान बचाने के कारण उनके सामने वह अपराधिनी और सुमित्रा की दृष्टि में नीची हो गई है। फिर यह सोचकर मन-ही-मन गर्व का भी अनुभव किया कि इस तुच्छ आदमी की हत्या करने की नीचता से वह उनकी रक्षा कर सकी।

अपूर्व ने कहा, "वर्लक जल्दी नहीं जायगा। कुछ समझ में नहीं आता कि कोई पूछेगा तो उसे क्या उत्तर दूंगा।" परन्तु श्रोता की ओर से कोई अनुमोदन न पाकर वह खुद ही कहने लगा, "सब सोचेंगे कि मैं काम नहीं चला सका। इसी से तो लोग कहा करते हैं कि हिन्दुस्तानी लोग बी० ए०, एम० ए० पास अवश्य कर लेते हैं, पर बड़ा पद पाकर उसकी रक्षा नहीं कर सकते। मेरे कॉलिज के साथी मेरा अपमान करेंगे और मैं कुछ उत्तर न दे सकूँगा।"

"कुछ बना-बनाकर उत्तर दे दीजिएगा। अच्छा, अब सोइए।"—यह कहकर भारती उठकर खड़ी हो गई।

"और भी जरा हाथ फेर दो न भारती !"

"ना, मैं बहुत ही थकी हुई हूँ।"

"तो रहने दो, जाने दो। रात भी अब शेष नहीं है।"

भारती ने बगल की कोठरी में जाकर देखा कि बत्ती अब भी टिमटिमा रही है और तिवारी चद्दर ओढ़े सो रहा है। पास ही टूटी-सी एक डेक-चेयर पड़ी थी, वह उस पर जाकर बैठ गई।

अपूर्व के कमरे में अच्छी आरामकुरसी थी, पर उस तुच्छ आदमी को सामने रखकर एक ही कमरे में रात बिताने में आज उसे अत्यन्त लज्जा मालूम हुई। डेक-चेयर पर किसी प्रकार पीठ टेककर जब लेट गई, तब उसके मन में न जाने कैसी उथल-पुथल होने लगी। इसके पहले इसी कमरे में एकाधिक बार उसे चोट पहुँची है, पर आज की चोट के साथ उसकी

तुम्हारे काम में इतने स्वार्थ, इतने सन्देह और इतनी क्षुद्रता के लिए स्थान नहीं है।"

उसकी उत्तेजना देखकर डॉक्टर हँस दिये और वैसे ही सहज स्वभाव में माथा ठोककर बोले, "हाय रे नसीब ! देश के मानी क्या तुमने समझ रखा है कि लम्बी-चौड़ी जमीन, नद-नदी और पहाड़ ? एक अपूर्व को लेकर ही तुम्हें जीवन में धिक्कार पैदा हो गया और वैरागिन होने चल दीं ? यह नहीं जानतीं कि यहाँ सैकड़ों-हजारों अपूर्व और उनके बड़े भैया ही तो घूम-फिर रहे हैं ! अरे, पराधीन देश का सबसे बड़ा अभिशाप यह कृतघ्नता ही तो है ! जिनकी सेवा करोगी, वे ही तुम्हें सन्देह की दृष्टि से देखेंगे ! जिनकी जान बचाओगी, वे ही तुम्हें बेच देना चाहेंगे ! मूढ़ता और कृतघ्नता तुम्हें हर कदम पर सुई-सी चुभती रहेंगी। यहाँ न श्रद्धा है, न सहानुभूति है। कोई पास तक नहीं बुलायेगा, कोई सहायता देने नहीं आएगा, जहरीला साँप समझकर सब दूर हट जायेंगे। देश से प्रेम करने का यही तो हम लोगों के लिए इनाम है भारती, इससे अधिक कुछ दावा करना चाहो तो वह है परलोक। इतनी बड़ी भयंकर परीक्षा तुम किसलिए दोगी बहन ? बल्कि, मैं तो तुम्हें आशीष देता हूँ कि तुम अपूर्व के साथ सुख से रहो—मैं निश्चित जानता हूँ कि वह अपनी सारी सुविधाओं और सारे संस्कारों को नीचे दबाकर किसी-न-किसी दिन तुम्हारा महत्त्व अवश्य जानेगा।"

भारती की दोनों आँखें सहसा भर आईं। परन्तु कुछ देर तक नीचे की निगाह किये चुप रहने के बाद उसने प्रबलता से अपने को सँभालकर पूछा, "दादा ! मुझ पर विश्वास न करके तुम मुझे किसी प्रकार विदा करना चाहते हो।"

शायद डॉक्टर के मुंह पर उसके इस अत्यन्त सरल और निःसंकोच प्रश्न का कोई ऐसा ही सीधा-सा उत्तर नहीं आया। उन्होंने हँसकर कहा, "तुम ... ी चिड़िया का मोह क्या कोई आसानी से छोड़ सकता है ? मगर, अपनी आँखों से ही तो देख चुकी हो कि इसमें कितनी दुबका-चोरी, ईर्ष्या, कितना मर्मान्तक क्रोध भरा हुआ है ! तुम्हारी ओर देखने से मालूम होता है कि इन सब कामों के लिए तुम नहीं हो, तुम्हें इस काम खींच लाना अच्छा नहीं हुआ। तुमसे मुझे केवल एक दिन काम लेना है

उस दिन, जिस दिन मेरे लिए छुट्टी लेने का पैगाम आ पहुँचेगा।"

अब भारती के आँसू नहीं रुक सके। उसने उन्हें उसी समय हाथ से पोंछते हुए कहा, "इसमें तुम भी मत रहो दादा!"

उसकी बात सुनकर डॉक्टर हँस दिये। बोले, "भारती, तुमने फिर बड़ी मूर्खता की बात कह दी।"

भारती लज्जित नहीं हुई। बोली, "यह मालूम है, पर ये लोग बड़े भयंकर और निर्दयी हैं।"

"और मैं?"

"तुम भी बड़े निष्ठुर हो।"

"सुमित्रा के बारे में क्या राय है भारती?"

भारती का सिर इस प्रश्न को सुनकर नीचा हो गया। लज्जा के मारे वह कुछ उत्तर न दे सकी, पर उत्तर के लिए मन भी नहीं था।

कुछ देर के लिए दोनों ही चुप रहे। अधिक देर नहीं, मगर केवल इतने ही से मौन के अवकाश में इस अत्याश्चर्यमय मनुष्य के उससे भी अधिक आश्चर्यमय हृदय की रहस्य से ढकी गहराई में अचानक बिजली-सी दिव्य हो गई।

डॉक्टर ने इस बात को दूसरे ही क्षण दबा दिया।

सहसा बच्चे के समान सिर हिलाकर कोमल स्वर में कहा, "अपूर्व के विषय में तुमने बड़ा न्याय किया है भारती! इतना बड़ा घातक काण्ड उसके भीतर है, इस बात की उसे शायद कल्पना ही नहीं होगी। सच कहता हूँ तुमसे, इतना क्षुद्र वह बिलकुल नहीं। नौकरी करने विदेश आया है, घर में माँ है, भाई हैं, देश में बन्धु-बान्धव हैं, सांसारिक उन्नति करके दस-पाँच में एक बनेगा, यही उसकी आशा है। पढ़-लिखकर परीक्षा पास की है, शरीफ घर का लड़का है, पराधीनता की लज्जा वह अनुभव करता है। और हिन्दुस्तानी लड़कों के समान वह भी वास्तव में देश का कल्याण चाहता है। इसी से जब तुमने कहा कि अधिकार-समिति के सदस्य बनो, देश की सेवा करो, तब उसने भी कह दिया, बहुत अच्छा। इस बात को वह निःसन्देह जानता था कि तुम्हारी बात मानने से उसकी बुराई न होगी। इस विदेश में आपद-विपद में तुम्हीं उसकी एकमात्र सहारा थी। मगर तुम ही उसे अचानक

भारती ने अधीर होकर कहा, "फिर क्या हुआ ?"

"वह रोगी विचारवान् था। सबेरा होने के पहले ही उसने अपनी मौत ली। तब कहीं जोशी वहाँ से हिल सका।"

एक गहरी साँस लेकर डॉक्टर फिर कहने लगे, "सिंगापुर में जोशी को फाँसी हो गई। षड्यन्त्र के सिपाहियों के नाम बता देने से उसकी फाँसी क्षमा हो जाती। सरकार की ओर से बहुत प्रकार की कोशिशें भी हुईं, मगर जोशी ने एक बार जो गर्दन हिलाकर कहा, 'मैं नहीं जानता', तो फिर उसमें हेर-फेर हुआ ही नहीं। इसलिए राज्य के कानून के अनुसार उसे फाँसी दे दी गई। और मजा यह है कि जिन लोगों के लिए उसने प्राण दिये उन्हें वह अच्छी तरह पहचानता भी नहीं था।—अब भी ऐसे लड़के इस देश में पैदा होते हैं भारती, नहीं तो शेष जीवन तुम्हारे आँचल के नीचे छिप-छिपे बिता देने को मैं राजी हो जाता!"

भारती ने उत्तर में केवल एक गहरी उसाँस ली।

डॉक्टर ने कहा, "नरहत्या करना मेरा व्रत नहीं है बहन, तुमसे सच कहता हूँ, ऐसा मैं नहीं चाहता।"

"चाहते नहीं—यह ठीक है, पर आवश्यकता आ पड़ने पर?"

"आवश्यकता आ पड़ने पर? मगर, ब्रजेन्द्र की और सव्यसाची की आवश्यकता नहीं हो सकती भारती!"

भारती ने कहा, "यह मैं जानती हूँ। मैं तुम्हारी आवश्यकता की बात ही पूछ रही हूँ भैया!"

डॉक्टर प्रश्न सुनकर कुछ देर चुप रहे। ऐसा जान पड़ा जैसे उत्तर देने में उन्हें दुविधा हो रही हो। उसके बाद कुछ-कुछ अनमने से होकर धीरे से बोले, "कौन जानता है, कब मेरा वह परम आवश्यकता का दिन आयेगा। मगर जाने दो—भारती, यह तुम मत जानना चाहो। उसका रूप तुमसे

मैं भी नहीं सहा जाएगा बहन!"

इस इशारे को समझकर मन-ही-मन सिहर उठी, बोली, "इसके और कोई रास्ता नहीं?"

।"

से सपाट उत्तर सुनकर भारती हतबुद्धि-सी हो गई, पर

भयंकर 'ना' को वह वास्तव में सह नहीं सकी। व्याकुल होकर कहने लगी, "इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग ही न हो, ऐसा हो नहीं सकता दादा!"

डॉक्टर मुस्कराते हुए बोले, "रास्ता है क्यों नहीं! अपने को बहलाने के बहुत-से मार्ग खुले पड़े हैं भारती, मगर सत्य तक पहुँचने के लिए और कोई मार्ग नहीं।"

भारती इसे स्वीकार न कर सकी। शान्त, मृदु कण्ठ से बोली, "दादा, तुम अपार ज्ञानी हो, इस एकमात्र लक्ष्य को स्थिर रखकर दुनिया घूम आये हो, तुम्हारे अनुभवों का अन्त नहीं। तुम जैसा महान् आदमी मैंने पहले कभी देखा नहीं। मैं तो केवल तुम्हारी सेवा करके ही अपना जीवन बिता सकती हूँ। तुम्हारे साथ बहस शोभा नहीं देती, मगर कहो कि मेरा दोष क्षमा कर दोगे?"

डॉक्टर हँस दिए, बोले, "कैसी मुश्किल है! दोष क्यों समझूँगा तुम्हारा?"

भारती उसी तरह स्निग्ध विनय के साथ कहने लगी, "मैं ईसाई हूँ—बचपन से ही अंग्रेजों को अपना हितैषी समझकर इतनी बड़ी हुई हूँ। आज एकाएक मन में उनके प्रति घृणा भर देने में मुझे बड़ा कष्ट होता है और तुम्हारे सिवा यह बात मैं और किसी के सामने कह नहीं सकती— फिर भी तुम लोगों के सामने मैं भी भारतवर्ष की हूँ— हिन्दुस्तान की ही लड़की हूँ। मुझ पर तुम अविश्वास मत करो।"

डॉक्टर को उसकी बात सुनकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने स्नेह के साथ अपना दाहिना हाथ उसके सिर पर रखकर कहा, "ऐसी आशंका क्यों करती हो भारती? तुम तो जानती हो, तुम पर मेरा कितना स्नेह है, कितना विश्वास है!"

भारती ने कहा, "जानती हूँ, और तुम भी क्या मेरी तरफ से ठीक यही बात नहीं जानते दादा? भय तुम्हें जरा भी नहीं है—भय तुम्हें दिखाया भी नहीं जा सकता, सिर्फ इसीलिए तुमसे कह नहीं सकती कि इस मकान में अब तुम मत आया करो। मगर मैं यह भी जानती हूँ, आज रात के बाद फिर कभी···ना-ना, यह नहीं, शायद बहुत दिनों तक भेंट न हो। उस दिन जब तुमने सारी अंग्रेज जाति के विरुद्ध शिकायत की तब प्रतिवाद

मैंने नहीं किया, बल्कि ईश्वर से मैंने यही प्रार्थना की थी कि इतना बड़ा जबरदस्त विद्वेष कहीं तुम्हारे हृदय के सम्पूर्ण सत्य को ढक न दे। दादा, फिर भी मैं तुम्हीं लोगों की हूँ।"

डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, "हाँ, मैं जानता हूँ, तुम हमारी ही हो।"

"तो इस रास्ते को छोड़ दो।"

डॉक्टर चौंक पड़े, "कौन-सा रास्ता?"

"क्रान्तिकारियों का यह निर्दय रास्ता।"

"क्यों छोड़ने को कहती हो?"

भारती ने कहा, "तुम्हें मरने नहीं दे सकती। सुमित्रा चाहें तो मर सकती है, पर मैं नहीं। भारत की स्वतन्त्रता हम चाहती हैं—बिना किसी कपट के, बिना संकोच के—मुक्त कण्ठ से चाहती हैं। दुर्बल, पीड़ित, क्षुधित भारतवासियों के लिए अन्न-वस्त्र चाहिए। भगवान् के इतने बड़े सत्य पर पहुँचने के लिए इस निष्ठुर रास्ते के सिवा और कोई मार्ग खुला ही नहीं है, यह मैं किसी तरह भी नहीं सोच सकती। संसार घूमकर तुम केवल यही खबर जान पाए हो—सृष्टि के आरम्भ के दिन से स्वाधीनता के सैकड़ों-हजारों तीर्थयात्रियों के चलते रहने से इसी मार्ग का चिह्न शायद तुम्हारी दृष्टि में स्पष्ट दिखाई दे रहा है, परन्तु विश्व मानव की एकाग्र शुभ बुद्धि—उसकी उन्नत बुद्धि की धारा क्या ऐसी खत्म हो गई है कि वह इस रक्त-रेखा के सिवाय और किसी रास्ते की टोह आगे कभी लगा ही नहीं सकेगी? ऐसा विधान किसी भी दशा में सत्य नहीं हो सकता। भैया, मनुष्यता की इतनी बड़ी परिपूर्णता तुम्हारे अलावा मैंने और कहीं भी नहीं देखी है—निष्ठुरता के इस बार-बार चले हुए मार्ग से तुम अब मत चलो। वह द्वार शायद आज भी बन्द होगा। उसे तुम लोगों के लिए खोल दो जिस में हम लोग इस संसार में सभी से प्रेम करते हुए उस मार्ग का अनुसरण करते रहें।

"कोई उत्तर नहीं दिये जा रहे दादा?"

डॉक्टर ने उत्तर में केवल इतना कहा, "भगवान् तुम्हारा भला करें!" यह कहकर वे धीरे-धीरे बाहर चले गये।

२०

शत्रुपक्ष के जहाज रोकने के लिए नदी के किनारे शहर के अंत में एक छोटा-सा मिट्टी का किला है। वहाँ सिपाही-सन्तरी अधिक नहीं रहते, सिर्फ ड्यूटी बजाने के लिए कुछ गोरे गोलन्दाज बैरक में रहा करते हैं।

इन निर्विघ्न शान्ति के दिनों में वहाँ विशेष कड़ाई नहीं थी। जाने की मनाही है, इसलिए कोई अन्यमनस्क यात्री यदि उस लाइन में पहुँच जाता है तो उसे भगा देते हैं, बस इतना ही। इसी के एक किनारे पेड़-पौधों के बीच पत्थर का एक घाट-सा बना है—शायद किसी उच्च राज्य-कर्मचारी के उपयोग में बना होगा, मगर अभी उसका काम भी नहीं, आवश्यकता भी नहीं।

कभी-कभी भारती अकेली आकर यहाँ बैठा करती है। यह बात नहीं कि किले की रक्षा का भार जिन पर था, उन लोगों ने उसे देखा न हो, पर शायद स्त्री होने से और शरीफ घर की स्त्री होने से उन लोगों ने कोई आपत्ति नहीं की थी।

अभी-अभी सूर्यास्त हुआ है, पर अँधेरा होने में अभी देर थी। नदी के कुछ भाग पर और उस पार के पेड़ों पर सूर्य की अन्तिम स्वर्णाभा फैल रही थी। पक्षियों के झुंड-के-झुंड इधर-उधर उड़ रहे थे—कौओं की काली देह पर, बगुलों के सफेद पंखों पर, घुग्घुओं के शरीर पर आकाश का रंगीन प्रकाश ऐसा मालूम हो रहा था जैसे वे किसी अनजान देश के नए जीव हों।

भारती उनकी अबाध स्वच्छन्द गति को एकटक देख रही थी। मालूम नहीं, इनके घोंसले कहाँ हैं, मगर उस अलक्ष्य आकर्षण को वे छोड़ नहीं सकते। इस बात का विचार करके भारती की आँखों में सहसा आँसू भर आए। उन्हें हाथ से पोंछकर उसने दूर की ओर देखा।

उस पार पेड़ों की पंक्तियों की सुनहरी आभा मन्द पड़ती आ रही है और पेड़ों की लम्बी छाया पड़ती रहने से नदी का पानी काला होता जा रहा है। उसी में से अँधेरा मानो अपनी लम्बी जीभ निकालकर सामने के सारे उजाले को चुपचाप चाटता जा रहा है।

सहसा नदी की दाहिनी ओर के मुहाने से एक छोटी-सी सैंपेन नाव सामने आकर लग गई। नाव में मल्लाह के अलावा और कोई नहीं था। मल्लाह चटगाँव का मुसलमान जान पड़ा।

क्षण-भर भारती के चेहरे की ओर देखकर उसने अपनी दुर्बोध चटगाँवी भाषा में कहा, "अम्मा, उस पार जाओगी? एक आने में ही पार कर दूँगा।"

भारती ने हाथ हिलाकर कहा, "ना, मैं उस पार नहीं जाऊँगी।"

मल्लाह बोला, "अच्छा, दो ही पैसे देना, चलो।"

भारती ने कहा, "ना बाबा, तुम जाओ। मेरा घर इसी पार है, उस पार जाने की मुझे आवश्यकता नहीं।"

मल्लाह गया नहीं, जरा हँसकर बोला, "पैसा न हो तो मत देना, चलो तो सही, तुम्हें जरा घुमा लाऊँ।" इतना कहकर वह घाट से नाव लगाने लगा।

भारती भयभीत हो गई। पेड़-पौधों से घिरा हुआ अँधेरा और सुनसान स्थान था। बहुत दिन से रह रही थी, इसीलिए वह इन लोगों की भाषा बोल न सकने पर भी समझ लेती थी कि चटगाँव के ये मुसलमान मल्लाह बड़े शैतान होते हैं। वह चटपट उठके खड़ी हो गई और क्रोध-भरे स्वर में बोली, "तुम जाओ यहाँ से, नहीं तो बुलाती हूँ मैं पुलिस को।"

उसकी ऊँची आवाज और तीक्ष्ण दृष्टि से शायद चटगाँवी मुसलमान डर गया और जहाँ-का-तहाँ रुक गया।

भारती ने उसकी ओर ध्यान से देखा। उसकी उम्र तो होगी लगभग पचास की, पर अभी तक शौक नहीं गया। बेलबूटेदार लुँगी पहने हुए जो तेल से अत्यन्त मैली-चिकनी हो रही है—शायद किसी पुराने कपड़े बेचने वाले की दुकान से ली हुई है। सिर पर बेलदार टोपी है, सामने की ओर झुकी हुई। उसकी तरफ रोष-भरी आँखों से देखते-देखते कुछ ही क्षण बाद भारती हँस पड़ी, बोली, "भैया, चेहरा तो खैर तुमने बदला ही है, गले की आवाज तक बदलकर ठीक मुसलमानों कर डाली है।"

मल्लाह ने कहा, "जाऊँ, या पुलिस बुलाओगी?"

भारती ने कहा, "पुलिस बुलाकर तुम्हें पकड़वा देना ही ठीक है। अपूर्व की इच्छा को फिर अपूर्ण क्यों रखा जाए?"

मल्लाह ने कहा, "उन्हीं की बात बताता हूँ, आओ। ज्वार अब अधिक देर नहीं रहेगा, अभी दो कोस जाना है।"

भारती के बैठ जाने पर डॉक्टर ने नाव छोड़ दी और वे पक्के मल्लाह की तरह ही उसे तेजी से ले जाने लगे, मानो दोनों हाथों के डाँड चलाना ही उनका पेशा हो। बोले, "लामा-जहाज चला गया, देखा ?"

भारती ने कहा, "हाँ।"

डॉक्टर ने कहा, "अपूर्व इसी प्रकार फर्स्ट क्लास डेक पर खड़े थे, दिखाई दिये ?"

भारती ने गर्दन हिलाकर कहा, "ना।"

डॉक्टर ने कहा, "उनके घर या ऑफिस में तो मैं जा नहीं सकता था, इसलिए जेटी के एक किनारे शैम्पेन बाँधकर उस पर खड़ा हो गया था। हाथ उठाकर सलाम करते ही···"

भारती ने दुःखी होकर कहा, "किसके लिए, किसके लिए इतना बड़ा भयानक काम तुम करते गये दादा ? क्या जान तुम्हारे लिए बिल्कुल ही हँसी-खेल है ?"

डॉक्टर ने सिर हिलाकर कहा, "ना, एकदम ना। और पूछती हो कि क्या. किसलिए ? ठीक उसी लिए जिस लिए कि तुम यहाँ चुपचाप अकेली बैठी हो बहन !"

भारती अपनी उठती हुई रुलाई को रोक न सकी, रो दी और बोली, "कभी नहीं। यहाँ मैं आज ही नहीं आई हूँ। अक्सर आया करती हूँ और किसी के लिए नहीं आई। वे तुम्हें पहचान सके ?"

डॉक्टर ने हँसकर कहा, "ना, बिल्कुल ना। वह विधा मुझे खूब अच्छी तरह आती है—इन दाढ़ी-मूँछों को तोड़ लेना आसान नहीं, पर मेरी बड़ी तबीयत हुई कि अपूर्व बाबू मुझे पहचान लें। मगर इतने व्यस्त थे कि उन्हें देखने का अवकाश भी नहीं हुआ।"

भारती चुपचाप देखती रही और उसके अत्यन्त उत्सुक मन की ओर देखकर क्षण-भर के लिए डॉक्टर भी चुप ही रहे।

भारती ने पूछा, "फिर क्या हुआ ?"

डॉक्टर ने कहा, "विशेष कुछ नहीं।"

भारती ने प्रयत्न करके जरा हँसकर कहा, "विशेष कुछ तो नहीं हुआ, यह मेरा सौभाग्य है। पहचान लेने, पकड़ा देते, और उस अपमान से बचने के लिए मुझे आत्महत्या करनी पड़ती। नौकरी गई, सो गई, जान तो बच गई!" उसने उस पार दूर तक दृष्टि फैलाकर गहरी साँस ले ली।

डॉक्टर चुपचाप नाव खेते हुए जाने लगे। कुछ देर चुप रहने के बाद भारती सहसा पूछ उठी, "क्या सोच रहे हो दादा?"

"बताओ?"

"तुम सोच रहे हो कि भारती लड़की होकर भी मनुष्य को मुझसे बहुत अधिक पहचान सकती है। अपने प्राण बचाने के लिए कोई भी शिक्षित प्राणी इतनी बड़ी क्षुद्रता कर सकता है—लज्जा नहीं, कृतज्ञता नहीं, ममता-माया नहीं—सूचना नहीं दी, समाचार लेने का प्रयत्न भी नहीं किया—डर के मारे एकदम पशु के समान भागकर चले गये। इस बात की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था, मगर भारती निःसन्देह जान गई थी। ठीक यही न? सच कहना!"

डॉक्टर गर्दन फेरकर बिना कुछ उत्तर दिए डाँड खेते हुए जाने लगे। चुपचाप।

"मेरी ओर एक बार देखो न दादा!"

डॉक्टर के मुँह फेरते ही भारती के दोनों होंठ थर-थर काँपने लगे। बोली, "मनुष्य होकर मनुष्यता की कोई बात ही नहीं—यह कैसे हो सकता है दादा?" उसने दाँतों से जबरदस्ती होंठों का काँपना तो रोक लिया किन्तु आँखों से झरते हुए आँसुओं को वह न रोक सकी।

डॉक्टर ने उसकी बात का समर्थन नहीं किया। प्रतिवाद भी नहीं किया, सान्त्वना की एक बात भी नहीं की। केवल एक क्षण-भर के लिए ऐसा मालूम हुआ जैसे उनकी सुरमा लगी आँखों का प्रकाश कुछ मद्धिम पड़ गया हो।

इरावती की यह शाखा-नदी अधिक गहरी और चौड़ी नहीं है, इसलिए इसमें साधारणतः स्टीमर या बड़ी नाव नहीं चला करती। मल्लाहों की छोटी-छोटी मछली पकड़ने की नावें ही बीच-बीच में किनारे पर बँधी दिखाई दीं, पर उनमें कोई आदमी नहीं था।

सिर के ऊपर आकाश में तारे दिखाई देने लगे है, नदी का पाट काला पड़ गया है, निर्जनता और परिपूर्ण निस्तब्धता में डॉक्टर के हाथ से सावधानी से चलते हुए डाँडों के हल्के शब्द के सिवा और कहीं भी कोई शब्द सुनाई नहीं देता। दोनों किनारों के पेड़ों की पंक्तियाँ सामने एक होकर मिल गई हैं। उसी के घने फैले हुए शाखा-पत्तों के अँधकार में अपनी सजल दृष्टि को स्थिर किए भारती मौन बैठी थी। उनकी डोंगी किस ओर कहाँ जा रही थी, भारती को कुछ पता नहीं, और जानने योग्य उत्सुक सचेतन अवस्था भी उसके मन की नहीं थी।

सहसा नाव जब एक बड़े भारी पेड़ की ओट में वृक्षलता आदि से छिपे हुए नाले में घुमने लगी, तब उसने चौंककर पूछा, "मुझे कहाँ ले जा रहे हो?"

डॉक्टर ने कहा, "अपने घर पर।"

"वहाँ और कौन है?"

"कोई नहीं।"

"मुझे कब वापस पहुँचा दोगे?"

"पहुँचा दूँगा। आज रात को न पहुँचा सका तो कल सवेरे चली जाना।"

भारती इसका कोई उत्तर दिए बिना उसी प्रकार सिर हिलाती हुई बोली, "वहीं पहुँचा दो।"

"मगर मुझे तुमसे बहुत-सी बातें जो कहनी है भारती!"

भारती इसका कोई उत्तर दिए बिना उसी प्रकार सिर हिलाती हुई बोली, "ना, तुम मुझे वापस पहुँचा आओ।"

"मगर किसलिए भारती? मुझ पर विश्वास नहीं होता है क्या?"

भारती नीचे दृष्टि किए चुप बैठी रही।

डॉक्टर कहने लगे, "ऐसी कितनी ही रातें तुमने अपूर्व के साथ अकेले बिताई हैं, वह क्या मुझसे भी अधिक विश्वासपात्र है?"

भारती उसी प्रकार चुपकी बैठी रही, 'हाँ' या 'ना' कुछ भी नहीं बोली।

नाले की यह जगह जैसी अँधकारमय थी वैसी ही कम चौड़ी। बीच-बीच में दोनों किनारे के पेड़ों की डालियाँ देह से आ-आकर छूने लगीं।

ऊपर मानो है भार का हिसाब हो गया था जिससे इतनी उतरा जा रहा था।

डॉक्टर ने लालटेन निकालकर जलाई और बीच में रख दी। फिर भारती के माथे को छूते हुए कहा, "आज मुझे जिस स्थान पर निर्भय होकर जा रहा हूँ भारती, दुनिया में कोई ऐसा नहीं जो वहाँ से तुम्हारा उद्धार कर सके। अब तुम्हें मेरे मन की बात समझाने में कुछ शेष न रहा होगा।" और वे कहकहा मारकर अचानक हँस पड़े।

अँधेरे में भारती उनका चेहरा नहीं देख सकी, किन्तु उनकी हँसी के स्वर में किसी ने मानो किसी को धिक्कार-सा दिया। भारती ने मुँह उठाकर निर्भय स्वर में कहा, 'तुम्हारे मन की बात समझ सकूँ, इतनी बुद्धि मुझमें नहीं है। पर तुम्हारे चित्त को मैं पहचानती हूँ। मुझे अकेला रहना उचित नहीं है दादा! इसी से यह बात कही थी, मुझे तुम क्षमा करो।"

कुछ देर मौन रहकर डॉक्टर ने सहज स्वर में कहा, "भारती, तुम्हें छोड़कर जाने में मुझे कष्ट होता है। तुम मेरी बहन हो, मेरी दीदी, मेरी माँ हो—अपने पर इतना विश्वास न होता तो इस मार्ग पर पैर भी नहीं रखता, पर इस संसार में मेरे सिवा ऐसा और कोई नहीं जो तुम्हारी कीमत दे सके। इसका शतांश भी यदि अपूर्व किसी दिन समझ सकता, तो उसका जीवन सार्थक हो जाता। दीदी, तुम संसार में लौट जाओ, हम लोगों में मत रहो। केवल तुम्हारी बात कहने के लिए ही आज मैं अपूर्व से मिलने गया था।"

भारती चुप रही।

आज एक शब्द भी कहे बिना अपूर्व चला गया। नौकरी करने के लिए वह बर्मा आया था। कुछ ही दिनों का तो परिचय था। वह निष्ठावान ब्राह्मण का लड़का है। उसका देश है, समाज है, घर-द्वार है, आत्मीय-स्वजन हैं, और न जाने क्या-क्या है। और भारती है अस्पृश्य ईसाई की लड़की, जिसके देश नहीं, घर नहीं, माँ-बाप नहीं, अपना कहने के लिए कोई भी नहीं। यह परिचय यदि समाप्त हो ही गया तो इसमें शिकायत की कौन-सी बात है?

भारती वैसी ही चुपचाप स्थिर बैठी रही, सिर्फ अँधेरे में उसकी दोनों [illegible] से [illegible] गिरने लगे।

सामने पास ही पेड़-पौधों के बीच जरा प्रकाश-सा दिखाई दिया ।

डॉक्टर ने उस ओर इशारा करके कहा, "वह रहा मेरा डेरा । बस-सा मुड़ते ही उसके आगे जा उतरूँगा । पहले बड़ा स्वतन्त्र था, अब न जाने कैसी ममता में पड़ गया हूँ भारती ! तुम्हारे लिए मुझे बड़ी सोच है । जाने के पहले केवल इतना देख जाना चाहता था कि तुम्हें एक निरापद आश्रय मिल गया ।"

भारती ने आँचल से आँसू पोंछ डाले और कहा, "मैं तो अच्छी प्रकार ही हूँ दादा !"

डॉक्टर ने एक गहरी साँस ले ली । यह बात इतनी असाधारण थी कि भारती के कान में चुभ-सी गई ।

डॉक्टर ने कहा, "कहाँ अच्छी तरह हो बहन ! मेरे आदमी ने आकर कहा, तुम घर में नहीं हो । सोचा, जेटी में कहीं तुम बैठी मिल जाओगी । वहाँ गया भी, पर उसी समय निश्चय हो गया कि नदी के किनारे कहीं-न-कहीं तुम मिल जाओगी । अभागा केवल तुम्हारा आनन्द ही चुराकर नहीं गया भारती, तुम्हारा साहस तक नष्ट कर गया ।"

इस बात का पूरा अर्थ न समझ सकने के कारण भारती चुप ही रही ।

डॉक्टर कहने लगा, "उस दिन निश्चिन्त मन से मेरे लिए बिस्तर छोड़कर तुम नीचे सो गई थी । हँसके बोली थी, 'दादा, तुम क्या आदमी हो जो तुमसे शर्म या भय लगेगा ! तुम सो जाओ ।' पर आज तुममें वह साहस नहीं रहा । यद्यपि अपूर्व विशेष निर्भर करने योग्य आदमी नहीं है, फिर भी पास ही था इसलिए कल भी शायद ऐसी आशंका तुम्हारे मन में नहीं । आश्चर्य तो यह कि तुम जैसी लड़की की निर्भय स्वाधीनता को भी उस जैसा एक साधारण आदमी कितनी आसानी से तोड़-फोड़ जा सकता है !"

भारती ने मृदु स्वर से कहा, "पर उपाय क्या है दादा ?"

डॉक्टर ने गर्दन हिलाकर कहा, "उपाय शायद न भी हो । पर मैं सोचता हूँ बहन, तुम्हारे चरित्र पर सन्देह करने वाला आज कोई निकट नहीं है, इसलिए यदि तुम्हारा अपना ही मन दिन-रात तुम पर सन्देह करता फिर तो तुम जीओगी कैसे ? इस प्रकार तो कोई भी जी नहीं सकता भारती !"

मरने को कभी इस प्रकार भारती ने आलोचन करके नहीं देखा था ।

उसके पास समय ही कहाँ था ? डॉक्टर की बात सुनकर उसकी श्रद्धा और आश्चर्य की सीमा न रही, परन्तु वह चुप बनी रही।

डॉक्टर कहने लगे, "मैं और एक लड़की को जानता हूँ, वह रत्न की है। लेकिन उसकी बात जाने दो। कब तुम लोगों से भेंट होगी पता नहीं, पर मालूम होता है कि होगी अवश्य ही। विधाता करे कि हो। तुम्हारे प्रेम की तुलना नहीं है, तुम्हारे हृदय से अपूर्व को कोई नहीं हटा सकता, परन्तु अपने को उसके ग्रहण-योग्य बना रखने की जो जीवन-व्यापी अति-सतर्क साधना आज से शुरू होगी, उसकी नित-प्रति के असम्मान की ग्लानि तुम्हारे मनुष्यत्व को एकदम बिगाड़ न दे भारती ! हाय रे ! ऐसे चिर-शुद्ध हृदय का जहाँ मूल्य नहीं—शरीर की शुद्धता ही जहाँ सबकुछ है, वहाँ अपने को इसी तरह बहलाना पड़ता है। कमल को चबाकर खाये बिना जिन्हें तृप्ति नहीं होती—शारीरिक भोग ही जिनका चरम लक्ष्य है, उनसे इसी तरह देश की शुद्धता का मूल्य कान पकड़कर प्राप्त किया जाता है। शायद हो भी जाय। पता नहीं, भाग्य में जीने की अवधि और कितने दिन की है, लेकिन यदि हो, तो 'बहन' कहकर गर्व करने को तब सव्यसाची के पास और कुछ बच नहीं रहेगा।"

भारती ने पूछा, "तो मुझे तुम क्या करने को कहते हो ? तुम्हीं तो मुझसे बार-बार संसार में लौट आने को कह रहे थे।"

"लेकिन सिर नीचा करके जाने के लिए तो नहीं कहा।"

भारती ने कहा, "दादा, स्त्रियों का ऊँचा सिर कोई अच्छा नहीं समझता।"

डॉक्टर ने कहा, "तो मत जाना।"

भारती उदासी से हँसकर बोली, "इस विषय में तुम निश्चिन्त रहना दादा, जाना मेरा नहीं होगा। सारे मार्ग अपने हाथ से बन्द करके केवल एक ही रास्ता खुला रखा था। वह भी आज बन्द हो गया, यह तो तुम अपनी आँखों से देख ही आये हो। अब जो रास्ता तुम मुझे दिखा दोगे, उसी रास्ते से चलूँगी। केवल इतनी विनती मानना मेरी, तुम अपने भरकर रास्ते पर मुझे मत बुलाना। भगवान् जैसे दुर्लभ पदार्थ को पाने के भी जब इतने ... निकले हैं, तब केवल तुम्हारे लक्ष्य पर पहुँचने के लिए क्या और

दूसरा मार्ग नहीं? मेरा दृढ़ विश्वास है कि बुद्धि अभी बिल्कुल समाप्त नहीं हो गई है—कहीं दूसरा मार्ग अवश्य होगा। अब से मैं खोज में निकलूंगी। भयंकर दुःख क्या चीज है, यह उस रात को मुझे पता हो गया है।"

डॉक्टर मुस्करा दिये, बोले, "यही मेरा डेरा है।" उसी नाव को और लगाकर ऊपर तक ले गये और उतर पड़े।

लालटेन से रास्ता दिखाते हुए बोले, "जूते खोलकर उतर आओ। पाँवों में जरा कीचड़ लगेगा।"

भारती चुपके से उतर पड़ी। चार-पाँचेक मोटी-मोटी सागौन की लकड़ी की खूंटियाँ गाड़कर पुराने और व्यर्थ तख्तों से एक घर-सा बना लिया गया है। ज्वार का पानी उतर जाने से नीचे कीचड़ जम गया है। पेड़-पौधों और पत्तों की सड़ांध से चारों तरफ बदबू हो रही है। सामने दो-हाई हाथ चौड़े रास्ते के सिवा चारों तरफ ऐसा जंगल खड़ा है कि साँप-बिच्छू की तो कौन कहे, शेर-भालू और हाथी तक छिपे रहें तो भी पता न चले। आँखों से बगैर देखे इस बात की कल्पना करना भी असम्भव है कि इसके भीतर कोई आदमी रह सकता है, मगर इस आदमी के लिए दुनिया में सबकुछ सम्भव है।

टूटी-फूटी लकड़ी की सीढ़ी से रस्सी पकड़कर ऊपर पहुँचने पर जब एक सात-आठ साल के बच्चे ने आकर किवाड़ खोले तो भारती मारे आश्चर्य के दंग रह गई। भीतर पैर रखते ही देखा कि जमीन पर चटाई बिछाये एक कम उम्र की बर्मी स्त्री पड़ी सो रही है, तीन-चार बच्चे इधर-उधर फिर रहे हैं जिनमें से एक ने घर में टट्टी भी फिर रखी है और शायद अनावश्यक समझकर ही जिसे साफ नहीं किया गया है। एक असह्य दुर्गन्ध से सारा वायुमण्डल विषाक्त हो उठा है।

जमीन पर चारों तरफ भात, दाल और प्याज-लहसुन के छिलके पड़े हैं। पास ही एक ओर दो-तीन काली-कलूटी मिट्टी की छोटी-बड़ी हँडिया पड़ी हैं, और लड़के उन्हीं में हाथ डालकर खा और बिगाड़ रहे हैं। यहीं से होकर भारती डॉक्टर के पीछे-पीछे आगे की कोठरी में पहुँची। यहाँ कोई सामान नहीं था। जमीन पर चटाई बिछी है, एक ओर एक दरी सिमटी हुई रखी है।

डॉक्टर ने दरी को दिखाते हुए कहा, "बैठो भारती !" भारती चुपके से बैठ गई। देखा कि वही परिचित भारी बटुआ एक किनारे पड़ा है। अर्थात् सचमुच ही यह डॉक्टर का वर्तमान निवास-स्थान है। इधर की कोठरी से उस बर्मी स्त्री ने कुछ पूछा और डॉक्टर ने बर्मी भाषा में ही उस का उत्तर दिया। थोड़ी देर बाद वह लड़का आकर थोड़ा-सा भात और तरकारी आदि एक ओर रख गया। नाव की लालटेन डॉक्टर अपने साथ ही ले आये थे। उसके प्रकाश में इन सब खाने-पीने की चीजों को देखकर भारती का जी मिचलाने लगा।

डॉक्टर ने कहा, "तुम्हें भी शायद भूख लगी होगी, लेकिन यह सब…।"

भारती के मुंह से बात नहीं निकली, पर उसने जोर से सिर हिलाकर जता दिया, ना-ना, एकदम ना।—वह ईसाई की लड़की है, जाति-भेद नहीं मानती, पर जहां से ये सब चीजें लाई गई हैं उस स्थान को तो वह इनके पहले ही देख आई है।

डॉक्टर ने कहा, "मुझे लेकिन बड़ी जोर की भूख लग रही है बहन, पहले जरा पेट भर लूं।"

तुरन्त वे हाथ धोकर प्रसन्नता के साथ खाने बैठ गये। भारती से उन ओर देखा भी नहीं गया, घृणा और अति दुःख से उसने मुंह फेर लिया।

उसकी छाती के भीतर रुलाई मानो सहस्र धाराओं में बह निकलना चाहने लगी। हाय रे देश ! हाय रे स्वाधीनता की प्यास ! संसार में कुछ भी इन लोगों ने अपना समझकर शेष नहीं रखा। यह घर, खाना, यह परिवेश, इस प्रकार जंगली जानवरों की-सी जिन्दगी—क्षण-भर के लिए मृत्यु भी भारती के लिए इससे अच्छी मालूम हुई। मर तो शायद बहुतेरे सकते हैं पर यह जो देह और मन को लगातार सताते रहना है, अपने-आपको कदम-कदम पर इस तरह हत्या की ओर ले जाने की जो दु:सह सहिष्णुता है—स्वर्ग और मर्त्य में क्या कहीं इसकी तुलना मिल सकती है ! देश की पराधीनता के दुःख ने क्या इन लोगों के इस जीवन के समस्त ही वेदना-बोध को धो-पोंछकर साफ कर दिया है ? कहीं कुछ भी शेष नहीं छोड़ा?

उसे अपूर्व का ध्यान आ गया। उसका अपनी नौकरी छूट जाने का

ओर, उसकी अपनी मित्र-मंडली में हाथ का बालक दिखाई देने की लज्जा—ये ही तो है भारतमाता की सहस्र-कोटि सन्तान ! ये ही तो है देश की रीढ़ ! आराम से खाने-पहनने, परीक्षाएँ पास करने और नौकरी में सफलता पाने, जन्म से मृत्यु तक जिनका जीवन बिना विघ्न-बाधा के एक-सा बीत जाता है। और यह जो आदमी अत्यन्त तृप्ति के साथ निर्विकार चित्त से बैठा भात निगल रहा है !

भारती को एक क्षण के लिए मालूम हुआ मानो वह हिमालय की चोटी के नीचे पत्थर के एक टुकड़े पर पैर रखे खड़ी है, और उपर्युक्त आदमियों में से एक के प्रेम करके और उसी के घर के गृहिणीपन से वंचित होने के दुख से आज छाती फाड़-फाड़कर मर रही है ! अचानक भारती जोर लगाकर कह उठी, "दादा, तुम्हारा चुना हुआ खून-खराबी का मार्ग किसी तरह भी ठीक नहीं। अतीत की चाहे जितनी जंजीरें तुम दिखाओ, मानव-जीवन में यह विधान कदापि सत्य नहीं हो सकता कि जो अतीत है, जो बीत चुका है, हमेशा केवल वह छाती ठोंककर अनागत को नियन्त्रित करेगा। तुम्हारा मार्ग ठीक नहीं है यह—फिर भी तुम्हारी इस सबकुछ विसर्जन कर देने वाली देश की सेवा को ही मैं सिर-माथे लेती हूँ। अपूर्व सुख से रहे, उसके लिए अब मैं दुःख नहीं करूँगी, अपने जीवन का मन्त्र आज मैंने आँखों से देख लिया है।"

डॉक्टर ने आश्चर्य के साथ मुँह उठाकर भात के ग्रास में से ही अस्फुट स्वर में पूछा, "क्या हुआ ?"

डॉक्टर हाथ-मुँह धो आने के बाद अपने बकुचे पर आकर बैठ गये। पूर्वोक्त लड़का एक मोटा चुरट पीता हुआ कोठरी में घुसा। कुछ देर तक मुँह में से खूब धुआँ निकालता रहा और इसके बाद वही चुरट डॉक्टर के हाथ में देकर चला गया।

भारती के चेहरे पर आश्चर्य का चिह्न अनुभव करके डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, "मुफ्त में मिल जाय तो मैं संसार में कोई भी चीज छोड़ना अच्छा नहीं समझता भारती ! अपूर्व के चाचाजी ने जब मुझे रंगून की जेटी में पहले-पहल गिरफ्तार किया तो मेरी जेब में से गाँजे की चिलम निकल आई। वह न होती तो शायद छुटकारा ही न मिलता।" इतना कहकर वे

मुस्कराने लगे।

भारती यह घटना सुन चुकी थी।

उसने कहा, "मुझे पता है और इससे छुटकारा भले ही मिल गया हो, पर उसे तुम नहीं पीते, यह मैं जानती हूँ—लेकिन यह घर किसका है दादा?"

"मेरा।"

"और यह बर्मी स्त्री और बच्चे ?"

डॉक्टर हँस दिये, बोले, "मेरे एक मुसलमान मित्र के हैं। वह भी मेरी तरह फाँसी का असामी है, पर दूसरे मामले में। फिलहाल कहीं बाहर गया हुआ है, परिचय का मौका नहीं मिल सकता।"

भारती ने कहा, "परिचय के लिए मैं व्याकुल नहीं हूँ। मगर तुम जिस स्वर्गपुरी में आकर ठहरे हो उससे विदा करके मुझे अपने घर पहुँचा दो दादा, यहाँ मेरा दम घुट रहा है।"

डॉक्टर ने हँसते हुए जवाब दिया, "यह स्वर्गपुरी तुम्हें अच्छी नहीं लगेगी, यह मैं तुम्हें यहाँ लाने के पहले ही जानता था। मगर, तुमसे कहने की मेरी जितनी बातें हैं, वे तो इस स्वर्गपुरी के सिवा और कहीं प्रकट नहीं की जा सकतीं। भारती, आज तुम्हें जरा कष्ट सहना ही पड़ेगा।"

भारती ने पूछा, "तुम क्या जल्दी ही कहीं जा रहे हो ?"

डॉक्टर ने कहा, "हाँ, उत्तर और पूर्व के देशों में एक बार और घूम आना होगा। लौटने में शायद दो साल लग जायें, पर आज तुम्हें नाना प्रकार से इतनी पीड़ा पहुँची है यहाँ कि सब बातें कहने में मुझे शर्म मालूम होती है। मगर आज रात के बाद फिर तुमसे आसानी से मिल सकूँगा, इस बात का भी भरोसा नहीं है मुझे।"

भारती बात सुनकर उद्विग्न हो उठी। बोली, "तो क्या तुम कल ही चले जाओगे ?"

डॉक्टर मौन रहे।

भारती मन-ही-मन समझ गई कि इसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। उसके बाद, इस रात के खत्म होने के बाद ही, इस दुनिया में वह बिल्कुल अकेली रह जाएगी।—खोज-खबर लेने वाला भी कोई न रहेगा।

डॉक्टर कहने लगे, "पैदल रास्ते से मुझे दक्षिण चीन के भीतर से

कैण्टन जाना पड़ेगा और उस रास्ते में काम के सिलसिले में अगर अमेरिका न जा पहुँचा तो प्रशान्त महासागर के द्वीपों में घूम-घामकर फिर यहीं आकर आश्रय लूँगा। उसके बाद जब तक आग न जलेगी मैं यही रहूँगा भारती !" फिर सहसा जरा हँसकर बोले, "अगर न लौट सका बहन, तो बदनाम तो मिल ही जायेगा।"

इस आदमी के शान्त स्वर की सहज बातें कितनी साधारण हैं परन्तु उनका भयंकर चेहरा भारती की आँखों के आगे नाच उठा। कुछ देर वह मौन रहकर बोली, "पैदल रास्ते से चीन देश जाना कितना भयंकर है, यह मैं सुन चुकी हूँ। पर तुम मन-ही-मन हँसना मत दादा, मैं तुम्हें डर नहीं दिखाती—इतना मैं तुम्हें पहचानती हूँ। अगर निकल ही जाना चाहते हो तो फिर यहाँ वापस क्यों आना चाहते हो? तुम्हारी अपनी जन्मभूमि में क्या आवश्यकता नहीं है?"

डॉक्टर ने कहा, "उसी के काम के कारण तो मैं इस देश को सरलता से त्याग नहीं सकता। औरतें इस देश में स्वाधीन हैं, स्वाधीनता का मर्म वे समझती हैं। उन लोगों से मेरा बड़ा काम है। मगर कभी इस देश में आग जलती दिखायी दे, तो कहीं भी रहो भारती, मेरी बात उस समय याद कर लेना कि उस आग को तुम्हीं लोग प्रज्वलित करोगी।"

भारती इस संकेत को समझ गई। बोली, "मगर मैं तो तुम्हारे पथ की पथिक नहीं हूँ दादा!"

डॉक्टर हँस दिये बोले, "मगर पथ तुम्हारा कोई भी क्यों न हो, बड़े भाई की बात याद करने में कोई दोष नहीं—फिर भी तो दादा को बीच-बीच में याद कर लिया करोगी!"

भारती हँसकर बोली, "दादा को याद रखने को मेरे पास बहुत-सी चीजें हैं। क्या तुम आदमी को इसी तरह विपत्तियों से खींच लाया करते हो दादा? लेकिन मुझे नहीं खींच सकते।" इतना कहकर वह सहसा उठ खड़ी हुई और तह की हुई दरी को झाड़-बिछाकर कम्बल-तकिया वगैरह लेकर अपने हाथ से बिस्तर करती हुई धीरे से बोली, "अपूर्व बाबू के जहाज के धक्के आज मुझे जिस मार्ग का संधान दे गये है, इस जीवन में वही मेरा एकमात्र मार्ग है। फिर, जिस दिन भेंट होगी, यह बात तुम भी स्वीकार करोगे।"

डॉक्टर व्यग्र हो उठे। बोले, "अचानक यह
भारती! फटे कम्बल को क्या मैं खुद बिछा नहीं
कोई जरूरत नहीं थी?"

भारती ने कहा, "तुम्हें नहीं थी, लेकिन मुझे
कभी बिस्तर क्यों न करूँ, तुम्हारा यह फटा
स्त्रियों के जीवन में यदि इसकी भी आवश्यकता
स्थान है—उनका कर्तव्य और क्या है, बतला स

डॉक्टर हँस दिये, बोले, "इसका उत्तर मैं नहीं
मानने में हार मानता हूँ। मगर इतनी बड़ी बात
किसी भी स्त्री के आगे स्वीकार नहीं करनी पड़ी।"

भारती ने हँसते चेहरे से पूछा, "सुमित्रा दीदी

बिस्तर बिछ जाने पर डॉक्टर अपने बकुचे का
पर आकर बैठ गये। भारती पास ही बिस्तर से
मौन रहकर बोली, "एक बात तुमसे जाने से पहले

भारती ने सिर हिलाते हुए कहा, "ना दादा, यह नहीं होने का। तुम्हें सबकुछ बतलाना पड़ेगा।"

डॉक्टर ने हँसकर कहा, "मैं भी सब नहीं जानता भारती, केवल इतना जानता हूँ कि माँ, लड़की, दो मामा, एक चीनी और दो मद्रासी मुसलमान मिलकर जावा में छिपे तौर से अफीम-गाँजे के क्रय-विक्रय का काम करते थे। उस वक्त तक मैं जानता नहीं था कि ये लोग क्या करते हैं। मैं केवल इतना देखा करता था कि बटाविया और सुरबाया के बीच रेल के रास्ते बराबर सुमित्रा आया-जाया करती है। बहुत ही सुन्दर होने के कारण से बहुतों की तरह मेरी भी उस पर दृष्टि पड़ गई।—बस, यहीं तक। पर, सहसा एक दिन परिचय हो गया तेग स्टेशन के वेटिंग रूम में। वह बंगाली की लड़की है, इस बात का पता भी तभी चला।"

भारती ने कहा, "सुमित्रा दीदी को सुन्दरी होने के कारण फिर आप भूल नहीं सके—क्यों दादा?"

डॉक्टर कहने लगे, "कुछ भी कहो, एक दिन जावा छोड़कर मैं और कहीं चला गया—और शायद भूल भी गया—पर एक साल के बाद फिर अचानक सुमित्रा से वैंकुलेन शहर की जेटी पर भेंट हो गई। एक पेटी में अफीम थी, चारों तरफ पुलिस और बीच में सुमित्रा खड़ी थी। मुझे देखते ही उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। मुझे निश्चित कर लेना पड़ा कि अब तो उसे बचाना ही होगा। अफीम की पेटी को बिल्कुल अस्वीकार करके मैंने उसका परिचय अपनी स्त्री के रूप में दे दिया। इतना उसने सोचा नहीं था। वह चौंक पड़ी। वह घटना सुमात्रा की होने से मैंने उसका नाम 'सुमित्रा' रख दिया, नहीं तो उसका पुराना नाम था 'रोज़ दाऊद'। उन वैंकुलेन के मामले-मुकदमे पार्लाम शहर में हुआ करते थे। वहाँ मेरे एक परम मित्र रहते थे। पॉलकूगर। उन्हीं के घर सुमित्रा को ले जाकर रक्खा। मुकदमे में मजिस्ट्रेट ने तो सुमित्रा को छुटकारा दे दिया, पर सुमित्रा ने मुझे नहीं दिया।"

भारती ने हँसकर कहा, "दादा, छुटकारा कभी मिलेगा भी नहीं।"

डॉक्टर कहने लगे, "क्रमशः उसके दल के लोग समाचार पाकर ताक-झाँक करने लगे। देखा, मित्र कूगर भी उसके सौंदर्य से चंचल हो उठे हैं।

लिहाजा उसे उन्हीं के जिम्मे छोड़कर मैं एक दिन चुपके से सुमात्रा से भाग खड़ा हुआ।"

भारती ने आश्चर्य के साथ कहा, "उन लोगों के जिम्मे अकेले छोड़कर? उफ—तुम कैसे निष्ठुर हो दादा!"

डॉक्टर ने कहा, "हाँ, लगभग अपूर्व के समान।—एक साल बीत गया। उन दिनों सेलिबिस द्वीप के मैकासर शहर के एक छोटे अप्रसिद्ध होटल में रह रहा था। एक दिन शाम को अपनी कोठरी में घुसकर देखा सुमित्रा बैठी है। हिन्दू स्त्रियों के समान टसर की साड़ी पहने थी और उस दिन उसने मुझे हिन्दू स्त्री की तरह झुककर पहले-पहल प्रणाम किया। बोली, 'मैं सबकुछ छोड़कर चली आई हूँ। बीता हुआ सबकुछ धो-पोंछकर साफ कर आई हूँ। मुझे अपने काम में भरती कर लो, मुझसे बढ़कर विश्वस्त अनुचरी तुम्हें और कोई नहीं मिलेगी।' "

भारती ने दम रोके हुए प्रश्न किया, "उसके बाद?"

डॉक्टर कहने लगे, "बाद की घटना केवल इतनी ही कह सकता हूँ भारती कि सुमित्रा के विरुद्ध शिकायत करने का मुझे आज तक कोई कारण नहीं मिला। संसार में ऐसा कोई काम नहीं जो वह न कर सकती हो। इक्कीस साल के तमाम संस्कारों को जो एक दिन में धो-पोंछकर साफ कर सकती है, उससे मैं डरता हूँ।—बड़ी निष्ठुर है।"

भारती चुप बैठी रही। बार-बार इच्छा होने लगी कि पूछे, निष्ठुर होने दो, पर उससे प्रेम कितना है? परन्तु शर्म के मारे मुँह से यह बात निकली नहीं। फिर भी, उस आश्चर्यजनक रमणी का बहुत-सा गुप्त इतिहास उसे मालूम हो गया।

उसका निर्मम मौन और कठोर उदासीनता—किसी का भी अर्थ समझना उसके लिए शेष नहीं रहा।

सहसा असावधानी से एक दीर्घ निःश्वास निकल जाने से डॉक्टर क्षण-भर के लिए मारे शर्म के व्याकुल हो उठे। दूसरे ही क्षण उनका स्वर शान्त और चेहरा स्वाभाविक हँसी से भर-भर गया। बोले, "फिर सुमित्रा को लेकर मुझे कैंटन चले आना पड़ा।"

भारती ने हँसी छिपाकर सभ्य मनुष्य के समान मुँह फेरकर कहा, "न

"कैसे भले दादा ! किसने तुम्हें सर की कसम दी थी, बताओ ? हम लोगों ने तो दी नहीं।"

कुछ देर चुप रहकर डॉक्टर हँसते हुए बोले, "सर की कसम बिल्कुल दी ही नहीं, यह बात नहीं—सोचा था कि यह बात किसी से कहूँगा नहीं, लेकिन तुममें एक ऐब जो है कि अन्त तक सुने बिना तुम्हारा कुतूहल मिटता ही नहीं। और नहीं कहूँगा तो ऐसी बातें अनुमान करती रहोगी जिनसे बल्कि कह देना अच्छा।"

भारती ने कहा, "मैं भी यही कहती हूँ दादा !"

डॉक्टर ने कहा, "सुमित्रा ने उसी होटल में दुमंजिले पर एक कमरा किराये पर ले लिया। मैंने बहुत रोका पर किसी प्रकार वह मानी ही नही। मैंने जब कहा कि न मानेगी तो मुझे और कहीं चला जाना पड़ेगा, तो उसकी आँखों मे आँसू गिरने लगे। बोली, 'मुझे आप आश्रय दीजिए।' दूसरे ही दिन मामला समझ में आ गया। वहीं दाऊद का दल आ पहुँचा। आठ-दस आदमी थे, उनमें एक आधा अरब और आधा नीग्रो था—छोटा-मोटा हाथी समझो। वह अनायास ही सुमित्रा पर पत्नी का दावा कर बैठा।"

भारती ने हँसते हुए कहा, "और तुम्हारे ही सामने ? तुम दोनों में शायद बहुत झगड़ा हुआ होगा ?"

डॉक्टर ने गर्दन हिलाकर कहा, "हाँ। सुमित्रा चीख-चीखकर कहने लगी कि ये सब झूठ है, सारा-का-सारा षड्यन्त्र रचा गया है। अर्थात् वे उसे चोरी-चोरी अफीम बेचने के काम मे वापस ले जाना चाहते थे। प्रशान्त महासागर के सब द्वीपो मे उनके अड्डे हैं— बड़ा भारी दल है। ऐसा कोई काम नहीं जो ये न कर डालते हों।—समझ गया कि सुमित्रा मेरे पास से हटकर नहीं जाना चाहती और उससे भी अधिक यह भी समझ में आ गया कि इस समस्या का हल आसानी से नहीं होने का। उन्हें जरा भी धैर्य नहीं था, तुरन्त निश्चय करके ही वे सुमित्रा को उठाकर ले जाना चाहते थे। जब उन्हें रोका और पुलिस बुलाकर पकड़वा देने का भय दिखाया तब कहीं वे गये, पर जाते समय खूब जोर से धमकी देते गए कि उन लोगों के हाथ से आज तक कोई बचा नहीं है।—और बात बिल्कुल झूठी हो, यह बात भी नहीं।"

श्रेष्ठ है, उसने उसे अपने हृदय की भक्ति अर्पित की थी, मगर उस दिन अपूर्व का चाहे जितना बड़ा अपराध क्यों न हो, नारी होकर इतनी कठोरता, उसकी हत्या करने का आदेश देने से उसकी भक्ति अतीव भय में परिणत हो गई थी—जैसे रक्तरंजित खड्ग के सामने बलि का पशु डर जाता है। अपूर्व को भारती कितना चाहती है, सुमित्रा से यह छिपा नहीं था, और प्रेम क्या चीज है, यह भी वह जानती है, फिर भी एक दूसरी स्त्री के प्रेमी को प्राणदण्ड की आज्ञा देने में—नारी होते हुए भी उसे जरा भी हिचकिचाहट नहीं! दुःख की आग से छाती में जब इस तरह लपटें उठती हैं तब वह जाने क्यों इस तरह समझा लेती कि कर्तव्य के प्रति इस तरह की निर्मम निष्ठा हुए बिना उसे अधिकार-समिति की समानेत्री बनाता भी कौन? जिनके लिए अपने जीवन का मूल्य नहीं, राजद्वार के कानून में जिनके प्राण उत्सर्ग हो चुके हैं, वे इस पर कैसे निर्भर करते? उसके जन्म, उसकी शिक्षा, उसके किशोर और यौवन का विचित्र इतिहास, उसका कर्तव्य-ज्ञान, उसका पाषाण हृदय—इन सबमें भारती को मानो एक प्रकार की संगति दिखाई देने लगी। नारी-ज्ञान के कारण जो एक प्रचण्ड अभिमान भारती के मन में बैठ गया था, आज वह अपने-आप ही मानो व्यर्थ अनुभव होने लगा! अब उसे पता लगा, स्नेह और करुणा के नाम सुमित्रा से कुछ चाहने और भीख माँगने के समान उपहास इस सृष्टि में और कुछ नहीं।

नाव के घाट से लगते ही एक आदमी ओट में से निकलकर सामने आ खड़ा हुआ। डॉक्टर का हाथ पकड़कर भारती नीचे सीढ़ी पर पैर रखना ही चाहती थी कि सामने एकाएक उस आदमी को देखकर उसने अपना पाँव उठा लिया।

डॉक्टर ने कोमल स्वर से कहा, "यह अपना हीरासिंह है। तुम्हें पहुँचाने के लिए खड़ा है। क्यों हीरासिंह, सब ठीक है?"

हीरासिंह ने कहा, "हाँ, सब ठीक है।"

"मैं भी चल सकता हूँ?"

हीरासिंह ने कहा, "आपके जाने को संसार में क्या कोई रोक सकता है?"

समझ में आ गया कि पुलिस की ओर से भारती के घर पर नजर रखी

रा रही है, डॉक्टर का जाना खतरे से खाली नहीं।

भारती ने हाथ नहीं छोड़ा, चुपके से कहा, "मैं नहीं जाऊँगी दादा!"

"भारती, तुम्हें तो भागने फिरने की आवश्यकता नहीं!"

भारती ने उसी प्रकार धीरे से कहा, "जरूरत होने पर भी मैं भागी-भागी नहीं फिर सकती, लेकिन इसके साथ नहीं जाऊँगी।"

डॉक्टर आपत्ति का कारण समझ गये। अपूर्व के न्याय-विचार के दिन यह हीरासिंह ही उसे ले आया था। जरा सोच-विचार करके बोले, "पर तुम तो जानती हो भारती, मुहल्ला कितना खराब है, इतनी रात को अकेले तो तुम्हारा जाना ठीक नहीं। और मैं तो···।"

भारती व्याकुल स्वर में बीच में ही बोली, "ना दादा, मुझे पहुँचा दो। मैं तो पागल नहीं हो गई जो···।"

वह बोलती-बोलती बीच मे ही रुक गई। इतनी रात को उस मुहल्ले में अकेले जाना भी ठीक नही है, यह बात भी उससे अधिक कौन जानता है?

नाव से उतरने का कोई भी लक्षण न देखकर डॉक्टर ने आत्मीयता से धीरे-धीरे कहा, "तुम्हें वहाँ वापस ले जाने में मुझे स्वयं ही शर्म मालूम होती है। लेकिन एक दूसरी जगह चलोगी बहन? हमारे एक कवि हैं, उनके घर। नदी के उस पार रहते हैं।"

भारती ने पूछा, "कवि कौन दादा!"

डॉक्टर ने कहा, "हमारे उस्तादजी, बेहाला बजाने वाले···।"

भारती ने प्रसन्न होकर कहा, "वे क्या घर पर मिलेंगे? कहीं शराब पिए गई होगी तो शायद बेहोश ही पड़े होंगे।"

डॉक्टर हँसकर बोले, "आश्चर्य नहीं। पर मेरी आवाज सुनते ही उनका नशा उतर जाता है। इसके सिवा पास ही नवतारा रहती है—हो सकता है कि तुम्हें कुछ खाने को भी दिलवा सकूँ।"

भारती चंचल हो उठी, बोली, "दादा, क्षमा करो, ··· खिलाने का प्रयत्न मत करना। चलिए, वहीं चलें

[illegible]

भारती ने

सन्देह नहीं

डॉक्टर ने कहा, "ना। यह टेलीग्राम ऑफिस का चपरासी है, लोगों के आवश्यक तार पहुँचाया करता है, अतः इसका किसी समय किसी भी जगह जाना सन्देह पैदा नहीं करता।"

अभी-अभी ज्वार शुरू हुई है। खाड़ी से निकलकर बड़ी नदी में थोड़ी दूर स्रोत से उलटा गये बिना उस पार ठीक स्थान पर नाव लगाना कठिन है, इसलिए डॉक्टर उसे किनारे से सटाकर अत्यन्त सावधानी से धीरे-धीरे ठेलते हुए ले जाने लगे। इस परिश्रम को देखकर भारती कह उठी, "जाने दीजिए, आवश्यकता नहीं है दादा, वहाँ जाने की। बल्कि अपने ही घर चलो।"

डॉक्टर ने कहा, "सिर्फ यही काम नहीं है भारती, उससे मिलने की मुझे विशेष अनिवार्यता है।"

भारती उपहास-भरी हँसी हँसकर बोली, "उनके साथ किसी आदमी को किसी काम से मिलने की आवश्यकता पड़ सकती है, मुझे तो इस बात पर विश्वास नहीं होता दादा!"

डॉक्टर ने कुछ देर तक मौन रहकर कहा, "तुम लोग कोई उसे पहचानती नहीं भारती! उस जैसा गुणी आदमी सहसा कहीं ढूँढ़े भी नहीं मिल सकता। अपने टूटे बेहाला-मात्र की पूँजी से ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ वह न गया हो। इसके सिवा वह बड़ा भारी विद्वान् भी है। कहाँ, किस पुस्तक में क्या लिखा है उसके सिवा हम लोगों में और कोई आदमी ऐसा नहीं जो बता सकता हो। उसे मैं वास्तव में चाहता हूँ।"

भारती मन-ही-मन लज्जित होकर बोली, "उनसे तुम शराब छुड़वाने का प्रयत्न नहीं करते?"

डॉक्टर ने कहा, "मैं किसी से कुछ छुड़वाने का प्रयत्न नहीं करता।" जरा चुप रहकर बोले, "इसके अतिरिक्त वे ठहरे कवि और गुणी आदमी उन लोगों की जात ही अलग है। उनकी भलाई-बुराई ठीक हम लोगों से नहीं मिलती। मगर इसके माने यह नहीं कि दुनिया की भलाई-बुराई के बँधे हुए नियम उन्हें क्षमा कर देते हों। उनके गुणों का फल तो हम सब मिलकर भोगते हैं, पर दोषों का दण्ड वे अकेले ही भोगते हैं। इसलिए कब कभी उस बेचारे को बहुत अधिक कष्ट होता है, सब और एक आदमी है

वो उनके दुख को बाँट लेता है, और वह मैं हूँ।"

भारती ने कहा, "तुम सभी के लिए कष्ट अनुभव करते हो दादा, तुम्हारा मन औरतों से भी कोमल है। पर उन्हीं गुणों पर तुम विश्वास कैसे करते हो? वे तर्क में सबकुछ प्रकट भी तो कर सकते हैं?"

डॉक्टर ने कहा, "इतना ज्ञान उनमें बच रहता है। और एक मजे की बात यह है कि उनकी बात पर कोई विश्वास नहीं करता।"

भारती ने पूछा, "उनका नाम क्या है दादा?"

डॉक्टर ने कहा, "अतुल, सुरेन्द्र, धीरेन्द्र—जब जो मन में आ गया वही रख लिया। असल नाम है शशिपद भौमिक।"

"मुझे अनुभव होता है वे नवतारा की आज्ञा मानते हैं।"

डॉक्टर मुस्करा दिये, बोले, "मुझे भी ऐसा ही लगता है।"

उन्होंने उस पार की ओर नाव छोड़ दी। स्रोत और डाँड़ के प्रबल आकर्षण से छोटी-सी नाव बहुत तेजी से चलने लगी और देखते-देखते दूसरा किनारा आ गया।

चारों ओर विलायती कम्पनियों के बड़े-बड़े लकड़ी के ढेर ऊपर तक लगे हुए, उनकी सँधों में से ज्वार का पानी भीतर जा रहा है और दूसरे खड़े हुए जहाजों के तीव्र प्रकाश में चमक रहा है। उन्हीं में से एक सँध में नाव ठेलकर डॉक्टर ने भारती का हाथ पकड़कर उतार लिया। काई लगी हुई लकड़ियों पर सावधानी से पाँव दबा-दबाकर कुछ आगे बढ़ने के बाद एक पतली-सी सड़क मिली जिसके दोनों ओर छोटे-बड़े गड्ढे हैं और उनमें पानी भरा हुआ है। चारों ओर पेड़-पौधों की गिनती नहीं, उनमें से होकर यह सड़क अँधेरे जंगल में कहाँ चली गई, कुछ पता नहीं।

भारती ने डरते हुए पूछा, "दादा, उस पार एक ऐसी ही भयानक जगह से निकालकर फिर एक भयानक स्थान में ले आये! शेर-भालुओं के समान तुम लोग क्या ऐसी जगह को छोड़कर और कहीं रहना जानते ही नहीं? और किसी बात का भय न सही, पर साँप-बिच्छुओं का भय तो होना चाहिए?"

डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, "साँप विलायत से नहीं आये बहन, उनमें धर्मज्ञान है, बिना दोष किसी को नहीं काटते।"

अचानक भारती को और एक दिन की बात याद आ गई।

उस दिन भी डॉक्टर के इसी प्रकार के हँसी के स्वर से यूरोप के विरुद्ध एक असीम घृणा की ध्वनि निकली थी।

उन्होंने फिर कहा, "और बाघ-भालुओं की कहती हो बहन? मैं तो यदा-कदा सोचा करता हूँ कि इस भारतवर्ष में आदमी न रहकर यदि केवल बाघ-भालू ही रहते होते, तो सम्भव है, ये लोग विलायत से शिकार करने यहाँ आया करते, मगर दिन-रात मानव-रक्त-शोषण तो नहीं करते।"

भारती चुप रही।

सारी जाति के विरुद्ध किसी का भी इतना विद्वेष उसे अति ही कष्ट पहुँचाता था। खासकर इस आदमी के इतने बड़े विशाल हृदय से जब विष उछलने लगता तब उसकी दोनों आँखों में आँसू भर आते। अपने मन में जी-जान से कहती रहती, यह कदापि सच नहीं—यह किसी भी प्रकार से सच नहीं हो सकता। ऐसा हो ही नहीं सकता।

सहसा ठिठककर डॉक्टर ने कहा, "उस्तादजी हमारे जाग रहे हैं और होश में हैं—ऐसा बेहाला क्या तुमने कभी सुना है भारती?"

भारती मौन ही रही। न मालूम कहाँ से अँधकार की छाती फाड़कर कितना रोना बहा चला आ रहा है! जिसका आदि नहीं, अन्त नहीं—इस संसार में जिसकी तुलना नहीं। दो मिनट के लिए भारती का मानो चेत ही जाता रहा। डॉक्टर ने उसका हाथ पकड़कर जरा दबाते हुए कहा, "चलो।"

भारती ने चौंककर कहा, "चलो। मैंने इसकी कभी कल्पना नहीं की थी—ऐसा कभी नहीं सुना।"

डॉक्टर ने धीरे से कहा, "संसार में मेरे लिए तो कठिन कोई स्थान है नहीं, पर याद नहीं, इसमें अच्छा मैंने कभी सुना हो।" फिर जरा हँसकर कहा, "लेकिन पागल के हाथ पड़कर उस बेहाले की ऐसी दुर्दशा है कि जिसका ठीक नहीं। मैंने शायद उसका दस-बारह बार उद्धार किया होगा। अब भी सुना है कि अपूर्व के पास वह पाँच रुपये में गिरवी रखा हुआ है।"

भारती ने कहा, "हाँ, उनके नाम मैं पाँच रुपया भेज दूँगी।"

पेड़ों की ओट में एक दुमंजिला लकड़ी का मकान है। नीचे की मंजिल पर कीचड़, ज्वार के पानी और जंगली झाड़ियों ने कब्जा कर रखा है।

सामने एक काठ की सीढ़ी है और इसके ऊपर तक तोरण-सा बना हुआ है, जिस पर बहुत बड़ी एक रंगीन चीनी लालटेन लटक रही है। भीतर की रोशनी से साफ पढ़ा गया कि उसके ऊपर बड़े-बड़े काले अंग्रेजी के शब्दों में लिखा हुआ है—'शशि-तारा लॉज'।

भारती ने कहा, "घर का नाम रखा गया है—'शशि-तारा लॉज'। लॉज तो समझ गई, पर शशि-तारा का क्या मतलब है?"

डॉक्टर मुस्कराये, बोले, "शायद शशिपद का 'शशि' और नवतारा का 'तारा' मिलाकर 'शशि-तारा लॉज' नाम रखा गया है।"

भारती का चेहरा गम्भीर हो गया।

उसने कहा, "यह बड़ा भारी अन्याय है। इन सब बातों को तुम सहन कैसे कर लेते हो?"

डॉक्टर हँस पड़े, बोले, "अपने दादा को क्या तुम सर्वशक्तिमान समझती हो? कोई अपने लॉज का नाम 'शशि-तारा' रखे, कोई अपने पैलेस का नाम अपूर्व-भारती रखे—इसे मैं कैसे रोक सकता हूँ?"

भारती अप्रसन्न हो गई। बोली, "ना दादा ना, इन सब गन्दी बातों के लिए तुम मना कर दो। नहीं तो मैं उनके घर नहीं जाऊँगी।"

डॉक्टर ने कहा, "सुना है, दोनों का जल्दी ही ब्याह होने वाला है।"

भारती व्याकुल होकर कह उठी, "ब्याह कैसे होगा, उसके तो पति जीवित हैं?"

डॉक्टर ने कहा, "भाग्य सीधा हो तो मरने में क्या देर लगती है बहन! सुना है, मर गया वह, पन्द्रह दिन हुए।"

भारती अत्यन्त अप्रसन्न होती हुई भी हँस दी, बोली, "यह शायद झूठी बात होगी। इसके अलावा कम-से-कम साल-भर तो उन्हें रुकना चाहिए। नहीं तो बड़ा भद्दा दीखेगा।"

डॉक्टर ने चेहरा गम्भीर करके कहा, "अच्छी बात है, कह देखूँगा। पर रुकने से बुरा दीखेगा या होने से भद्दा दीखेगा, यह जरा सोचने की बात है।"

इस इशारे के बाद भारती मारे लज्जा के चुप रह गई। सीढ़ी पर चढ़ते-चढ़ते डॉक्टर ने दबी जबान से कहा, "इस पागल के लिए मुझे बड़ा कष्ट

होता है। सुना है, इस दृष्टि से वह वास्तव में प्रेम करता है।"—सहसा एक गहरी साँस लेकर कहने लगे, "संसार के अनुरोध, भले-बुरे की इच्छा, स्त्री की रुचि—ये सब गौण बातें हैं भारती, मैं केवल यह कहता हूँ कि यदि इस प्रेम-सागर में गन्द हो, तो वह स्वयं ही इसका उद्धार कर दे।"

भारती चौंककर सहसा पूछ बैठी, "संसार में ऐसा क्यों होता है दादा?"

डॉक्टर ने अँधेरे में एक बार ही भारती की ओर देखा। उसके बाद अचानक दीर्घ श्वास को खींच-तान से रोककर वे दो पाँच कदम के बन्द दरवाजे के सामने जाकर खड़े हो गए।

ज़ोर से पुकारा तो बेहाला रुक गया। थोड़ी देर बाद दरवाजा खोलकर शशिपद बाहर आकर खड़ा हो गया। डॉक्टर को उसने सहज ही में पहचान लिया, मगर भारती को अँधेरे में जरा ध्यान से देखने के बाद पहचाना। पहचानते ही एकाएक उछल पड़ा, बोला, "अरे आप? भारती? आइए, आइए, मेरे कमरे में।" दीप्त चेहरे के कपटरहित स्वागत से और उसके सच्चे हार्दिक आदर से भारती का सारा क्रोध पानी-पानी हो गया। शशिपद ने बिस्तर के नीचे से एक बड़ा लिफाफा निकालकर भारती के हाथ में देते हुए कहा, "खोलकर पढ़िये। परसों दस हजार रुपये का ड्राफ्ट आ रहा है—एक पाई भी कम नहीं—कहते नहीं थे मैं जुआचोर हूँ! मैं झूठा हूँ! शराबी हूँ!—क्या हुआ तो?—दस हजार! पूरे दस हजार!"

बता देना आवश्यक है। इन दस हजार रुपयों का इतिहास शशि के बन्धु-बान्धव, शत्रु-मित्र, परिचित-अपरिचितों में ऐसा कोई श्रेय नहीं था जिसने निकट भविष्य में एक मोटी रकम मिलने की सम्भावना उसके मुँह से न सुनी हो। पर इस पर विश्वास कोई नहीं करता था, बल्कि सब हँसी ही उड़ाया करते थे। और यही उस्तादजी का मूलधन था, इसी का उल्लेख करके वह चाहे जिससे बिना किसी संकोच के उधार माँगा करता था और जल्दी ही मय ब्याज के चुका देने की प्रतिज्ञा भी किया करता था। इस अत्यन्त अनिश्चित अर्थप्राप्ति पर उसकी कितनी ही आशा-इच्छाएँ निर्भर थीं। पाँच-सात साल पहले जब उसके धनवान नाना मरे थे, तब वे उसे भी ममेरे भाइयों के साथ सम्पत्ति का भाग दे गए थे। इतने दिनों में उसके बेचने की बात चल रही थी, एक महीने पहले वो ठीक हो गई। लिफाफे में

कलकत्ते के एक बड़े अटॉर्नी की चिट्ठी थी। उन्होंने लिखा है, रुपये दो ही एक दिन में मिल जाएँगे। पूरे दस हजार।

भारती ने चिट्ठी पढ़ ली।

डॉक्टर ने पूछा, "बीस हजार रुपये की बात थी न शशि ?"

शशि ने हाथ हिलाते हुए कहा, "अरे, दस हजार रुपये भी क्या कम है? आखिर हैं तो अपने ममेरे भाई। सम्पत्ति रही तो घर की घर में ही? डॉक्टर बाबू, और ठीक यह बात मझले ने लिखी है।"

शशि प्रसन्न नहीं हुआ। वह जी-जान से इस बात को प्रमाणित करने का प्रयत्न करने लगा कि एक प्रकार से सम्पत्ति को बिना बेचे ही इतना रुपया मिल रहा है, और वह भी इसलिए कि उसके मझले दादा जैसे आदर्श पुरुष संसार में हैं।

भारती ने मुस्कराते हुए कहा, "यह तो ठीक है अतुल बाबू, मझले दादा को बिना देखे ही हम लोगों ने उनके देव-चरित्र को हृदयंगम कर लिया है। इसे अब प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं।"

उसी समय शशि ने कहा, "लेकिन कल मुझे दस रुपए और देने होंगे। हाँ, तो उस दिन के दस, कल के दस, और अपूर्व बाबू के साढ़े साठ—ये साढ़े अस्सी रुपये मैं परसों-तरसों चुका दूँगा।—देने पड़ेंगे, मना नहीं कर सकती।"

भारती हँसने लगी।

शशि कहने लगा, "ड्राफ्ट आते ही बैंक में जमा कर दूँगा। शराबी, जुआचोर, स्पेंडथ्रिफ्ट (फिजूल-खर्च)—जो मन में आया, लोगों ने कहा, मगर अब देखूँगा, कोई कैसे क्या कहता है! मूल में हाथ नहीं डालने का, केवल ब्याज ही ब्याज में घर-गृहस्थी का काम चलाऊँगा—बल्कि उसमें भी बचा लिया करूँगा। पोस्ट ऑफिस में हिसाब खोलना होगा—घर में तो कुछ रखा ही नहीं जा सकता। हो सकता है कि पाँचेक वर्ष में एक मकान भी खरीद लूँ। और खरीदना तो पड़ेगा ही—घर-गृहस्थी अब तो सर आ ही गई समझो। आजकल के समय में कोई काम आसान नहीं।"

भारती के चेहरे की तरफ देखकर डॉक्टर खिलखिलाकर हँस पड़े, मगर वह मुँह बनाकर दूसरी ओर देखती रही।

शशि ने कहा, "आपने सुना होगा ? शराब छोड़ दी है।"

डॉक्टर ने कहा, "नहीं तो !"

शशि ने कहा, "सदा-सदा के लिए। नवतारा ने प्रतिज्ञा करा ली है।"

इस विषय को लेकर दोनों की बातचीत लम्बे विवाद का रूप धारण कर सकती थी, पर एक के प्रश्नों और उत्तरों के भय से भारती विपत्ति में पड़ गई—वह किसी प्रकार भी शामिल न हो सकी। यह देखकर डॉक्टर ने दूसरी बात उठाते हुए असल बात छेड़ दी। बोले,"शशि, तुमको यहीं मालूम होता है, यहाँ से जल्दी नहीं हिलने के?"

शशि ने कहा, "हिलना ? असम्भव है न !"

डॉक्टर ने कहा, "अच्छी बात है, तो यहाँ एक स्थायी अड्डा रहा !"

शशि ने तुरन्त उत्तर दिया, "यह कैसे हो सकता है ? अब मैं आप लोगों के साथ सम्बन्ध नहीं रख सकता। लाइफ को अब रिस्क में नहीं डाला जा सकता।"

डॉक्टर ने भारती की ओर लक्ष्य करके हँसते हुए कहा, "हमारे उस्तादजी में चाहे जो भी दोष हों, पर यह आरोप तो इन पर बड़े-से-बड़ा शत्रु भी नहीं लगा सकता कि इन आँखों में लिहाज है। सीख सको तो यह विद्या इनसे सीख लो भारती !"

शशि कवि का पक्ष लेते हुए भारती ने बहुत ही सभ्य व्यक्ति के समान कहा, "पर झूठी आशा देने की अपेक्षा साफ कह देना ही अच्छा है। यह बात मुझमें नहीं होती। यदि अतुल बाबू से यह विद्या सीख लेती तो आज मेरी छुट्टी ही न हो जाती दादा !"

उसके स्वर का अन्तिम भाग सहसा कुछ भारी-सा हो गया। शशि ने ध्यान नहीं दिया--देता तो भी शायद तात्पर्य नहीं समझ पाता। परन्तु इसके भीतरी मानी जिन्हें समझना चाहिए था, उन्हें समझने में देर नहीं लगी।

करीब दो मिनट तक सब चुप रहे। फिर पहले डॉक्टर ही ने बात की, "शशि, दो दिन के भीतर मैं चला जा रहा हूँ। पैदल ही चीन होकर पैसिफिक के सारे द्वीप और एक बार घूम आना चाहता हूँ। शायद जापान से अमेरिका भी जा सकता हूँ। कब लौटूँगा, मालूम नहीं—लौटूँगा ·नहीं, यह भी नहीं पता। यदि अचानक किसी दिन लौटा तो तुम्हारे घर

क्या मेरे लिए स्थान नहीं होगा ?"

क्षण-भर शशि उनके मुँह की ओर एकटक देखता रहा, उसके बाद उसका चेहरा और स्वर गम्भीर रूप से बदल गया। गर्दन हिलाकर बोला, "जगह होगी। मेरे घर आपके लिए सदा स्थान रहेगा।"

डॉक्टर ने कौतूहल-भरे स्वर में कहा, "क्या कह रहे हो शशि, मुझे स्थान देने से बढ़कर बड़ी विपत्ति आदमी के लिए और क्या हो सकती है ?"

शशि ने जरा भी विचार किए बिना कहा, "यह मैं जानता हूँ, मुझे जेल होती हो होने दो।" यह कहकर वह चुप हो रहा।

थोड़ी देर बाद भारती को धीरे-धीरे कहने लगा, "ऐसा मित्र और कहीं नहीं मिलेगा। सन् १६११ में जापान के टोकियो शहर में बम गिराने के दोष पर जब कोटोक् के सारे दल को फाँसी की आज्ञा हुई थी, डॉक्टर तब उनके अखबार के सब-एडिटर थे। पुलिस ने जब मकान का दरवाजा घेर लिया तो मैं रोने लगा। डॉक्टर ने कहा, 'रोने से काम नहीं चलेगा शशि, हम लोगों को भागना होगा।' पीछे की खिड़की से रस्सी लटकाकर मुझे उतार दिया और स्वयं भी उतर आये। डॉक्टर बाबू, उफ्—याद है आपको ?" कहते-कहते वह अतीत-स्मृति से रोमांचित हो गया।

डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, "याद क्यों नहीं होगा।"

शशि कहने लगा, "याद रखने की तो बात है ही। यदि आप सहायता न करते तो उसी समय लोगों की जिन्दगी खतम हो गई थी डॉक्टर बाबू! शायद बोट में फिर कदम नहीं पड़ सकता।—उफ्, उन नाटे नालायकों के जैसे बदमाश दुनिया में कहीं ढूँढे न मिलेंगे।—सच पूछा जाय तो मैं आपके बमबाजों में नहीं था—वासे में रहता था और बेहाला सिखाया करता था। मगर वहाँ मेरी बात कौन सुनता। शैतानों के यहाँ कोई नियम है, न कचहरी। पकड़ लेते तो मुझे अवश्य कत्ल करके ही छोड़ते। आज जो यह बात कह रहा हूँ, चल-फिर रहा हूँ तो सिर्फ डॉक्टर की कृपा से।"

उसने डॉक्टर की ओर इशारा किया, बोला, "ऐसा मित्र दुनिया में कोई नहीं है भारती, और मैंने इतनी दया-ममता और करुणा किसी में नहीं देखी।"

भारती की आँखें भर आईं। बोली, "अपनी सारी कहानी किसी दिन

जाति भी दुनिया में और कोई नहीं है। उसने अब पहचाना। [illegible]
बहुत पहले पहली ही दृष्टि में [illegible] को पहचान लिया था। ढाई सौ वर्ष पहले जो जाति यह नियम बना गई थी कि 'चन्द्र-सूर्य' जब तक मौजूद रहें ईसाई हमारे राज्य में न घुसने पावें, और यदि घुसें तो मरण दण्ड भोगें, वह जाति कुछ भी क्यों न करे, हमारे लिए नमस्कार करने योग्य है।"

डॉक्टर की दोनों आँखें पल-भर में अग्नि-शिखा की भाँति जल उठीं। उस वज्रमयी भयानक दृष्टि के सामने शशि मानो पागल-सा हो उठा। वह मारे भय के सिर हिलाता हुआ कहने लगा, "यह बात ठीक है।"

भारती चुप रही। उसका हृदय मानो अभूतपूर्व अव्यक्त आवेग से थर-थर काँप उठा। आज इस गम्भीर निशीथ रात्रि में आसन्न विदाई के पहले एक क्षण के लिए उसे इस आदमी का स्वरूप दिखाई दे गया।

डॉक्टर ने अपनी छाती और उँगली दिखाते हुए कहा, "क्या वह रही थी भारती, इसका मूल्य समझने लायक बुद्धि भगवान् ने मुझे नहीं दी? कुछी बात है। सुनोगी मेरा सारा इतिहास? कैण्टन की एक गुप्त सभा में सनयात सेन ने एक बार मुझसे कहा था—"

भारती अचानक डरकर बोल उठी, "कोई सीढ़ी से ऊपर आ रहा है…।"

डॉक्टर ने कान खड़े करके सुना और जेब में से धीरे से पिस्तौल [निकाल] ली। बोले, "इस अँधेरे में मुझे पकड़ सके, ऐसा दुनिया में कोई है [?"] इतना कहकर वे खड़े हो गये, किन्तु उनके चेहरे पर उद्वेग की छाया [छा] गई।

कवि शशि केवल विचलित नहीं हुआ। उसने हँसते हुए कहा, "आज नवतारा आदि के आने की बात थी, शायद ।"

डॉक्टर हँस दिये, बोले, "शायद क्यों, वे ही हैं। अत्यन्त हलके कदम हैं। मगर उनके साथ 'आदि' कौन है?"

शशि ने कहा, "आपको ज्ञात नहीं? हमारी सभानेत्री साहिबा भी आ रही हैं। शायद ।"

भारती ने अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर पूछा, "सभानेत्री? सुमित्रा दीदी?"

शशि ने सिर हिलाकर कहा, "हाँ।" और वह जल्दी से द्वार खोलने के लिए आगे बढ़ा।

भारती डॉक्टर के मुँह की ओर देखने लगी। इसके मानी हुए, अब वह यहाँ आने का तात्पर्य समझी है। आज की रात व्यर्थ नहीं जाएगी, आने वाले बाधा-विघ्नों के सामने अधिकार-समिति की अन्तिम मीमांसा होना आज आवश्यक है। सम्भव है, अय्यर हो, तलवरकर भी हो, और क्या मालूम शायद निरापद जगह समझकर ब्रजेन्द्र ने भी शहर को छोड़कर इस बगान में आश्रय लिया हो।

डॉक्टर ने अपनी आदत के अनुसार पिस्तौल छिपाई नहीं, वे उसे बायें हाथ में उसी प्रकार थामे रहे। उनके साफ चेहरे पर भीतर की तो कोई भी बात पढ़ने में नहीं आई, पर भारती का चेहरा बिल्कुल पीला पड़ गया।

२२

जिन लोगों ने एक-एक करके कमरे में प्रवेश किया, वे सब-के-सब परिचित ही थे।

डॉक्टर ने सिर उठाकर कहा, "आओ।"

सुमित्रा के आने की बात वो उन्हें पता था, परन्तु इस बीच में सभी कोई उनका पीछा करते हुए आ धमकेंगे, यह वे नहीं जानते थे। किसी भी प्रकार यह कोई अचानक घटना नहीं हो सकती, लिहाजा इसमें कोई सन्देह

लगी कि उनके अज्ञात में कोई गूढ़ सलाह हो चुकी है।

सब-के-सब आगन्तुक फर्श पर आकर चुपचाप बैठ गये। किसी के आचरण से जरा भी विस्मय या चांचल्य प्रकट नहीं हुआ। साफ समझ में आ गया कि भारती के सम्बन्ध में न सही, पर डॉक्टर के विषय में जैसे भी हो उन्हें मालूम हो गया कि वे यहाँ आये हैं। अपूर्व के विषय को लेकर दल में एक दरार हो जाने का भय तो था ही—शायद आज ही उसका कोई निर्णय हो जाएगा, इस दुष्कल्पना से भारती काँप-काँप-सी गयी।

सुमित्रा का मुंह उदास था।

भारती के साथ उसने बात क्या, उसकी ओर देखा तक नहीं।

ब्रजेन्द्र ने अपना गेरुआ रंग का साफा सिर से उतारकर अपने मोटे मोटे से दबाकर पास ही रख दिया और अपने विशाल शरीर को तकिये की दीवार के सहारे आराम से टिका दिया। उसकी गोल-गोल आँखों की दृष्टि एक बार भारती की ओर और एक बार डॉक्टर के चेहरे पर फिरने लगी।

रामदास तलवरकर नीरव और स्थिर बैठा रहा, बैरिस्टर कृष्ण अय्यर सिगरेट सुलगाकर पीने लगा और नवतारा सबसे पृथक् दूर जाकर बैठ गई।—किसी के साथ मानो उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं, जैसे आज भारती को वह पहचान भी नहीं सकी। किसी के चेहरे पर न हँसी थी न बात, सत्यानाशी आँधी के पूर्व क्षणों के समान यह निशीथ-सम्मेलन कुछ देर के लिए नितांत-निर्वाक् !

उस दिन की भयानक रात्रि के समान आज भी भारती उठकर डॉक्टर के बहुत पास जाकर सटके बैठ गई।

डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, "तुम सब लोगों से भारती डरने लगी है, केवल मुझसे ही नहीं डरती।"

इस मन्तव्य की कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी। भारती के सिवा शायद कोई देख भी न सका कि सुमित्रा आँख के इशारे से ब्रजेन्द्र को मना कर रही है। मगर उसका कुछ फल न निकला। शायद वह उसका अर्थ नहीं समझा। यह भी सम्भव है कि उसने उसकी कुछ परवाह नहीं की। वह अपने कर्कश फटे हुए स्वर में सबको चौंकाता हुआ बोला, "आपके स्वेच्छाचार की हम लोग निन्दा करते हैं और तीव्र प्रतिवाद करते हैं। अपूर्व को

दे ने कभी था क्या तो…।"

बीच में ही डॉक्टर ने कहा, "उसकी जान ले लेंगे।" इतना कहकर
नेत्रे घुमाकर सुमित्रा की ओर देखते हुए कहा, "क्या तुम सभी लोग इस
रानी की बात का अनुमोदन करते हो ?"

सुमित्रा मुँह नीचा किये रही और किसी ने भी इस प्रश्न का कोई उत्तर
नहीं दिया।

कुछ देर स्थिर रहकर डॉक्टर ने कहा, "ढंग से मालूम होता है कि तुम
सब इसका अनुमोदन करते हो और इसके पहले इस विषय में तुम लोग
आलोचना भी कर चुके हो।"

ब्रजेन्द्र ने कहा, "हाँ, कर चुके हैं, और इसका प्रतिकार होना हम लोग
अच्छी समझते हैं।"

उसकी ओर देखकर डॉक्टर ने कहा, "मैं भी ऐसा समझता हूँ। मगर
इससे पहले एक जरूरी बात याद दिलाना चाहता हूँ, जिसकी शायद क्रोध
के कारण तुम लोगों को याद नहीं रही है। अहमद दूरानी हम लोगों के सारे
ऊपर चीन का सेक्रेटरी था, वैसा निर्भीक, कार्यदक्ष आदमी हममें से और
कोई नहीं था। १९१० में जापान के द्वारा कोरिया राज्य हड़पे जाने के
महीने-भर बाद ही वह मंचूरिया के एक रेलवे स्टेशन पर पकड़ा गया और
अदालत में उसे फाँसी हो गई। सुमित्रा, दूरानी को शायद तुमने देखा था न ?"

सुमित्रा ने सिर हिलाकर स्वीकार किया।

डॉक्टर ने कहा, "मैं तब छिता में टूटे हुए दल के पुनर्गठन में लगा हुआ
था—मुझे सूचना नहीं मिली कि मेरा एक हाथ टूट गया। यद्यपि जिस
समय अदालत में उसके विरुद्ध न्याय-विचार का तमाशा हो रहा था, उस
समय उसकी रक्षा करना जरा कठिन नहीं था। हमारे अधिकांश साथी
उस समय वहीं थे, फिर भी इतनी बड़ी दुर्घटना कैसे घट गई, जानते हो ?
फैजाबाद का मथुरा दुबे उन दिनों अत्यन्त तुच्छ अविचार-कुविचार की
शिकायतें कर-करके लोगों के मन में विष फैला चुका था, इसलिए दूरानी
की मृत्यु से सबको मानो प्रसन्नता हुई। मेरे लौट आने पर कैण्टन की सभा
में जब सब बातों का भेद खुला, तब दूरानी संसार से विदा हो चुका था
और मथुरा दुबे टायफायड से मर चुका था। प्रतिकार के लिए कुछ बाकी

ही नहीं बचा था, परन्तु भविष्य के भय से उस रात की गुप्त सभा ने दो अत्यन्त कठोर नियम पास किये थे। कृष्ण अय्यर, तुमतो उपस्थित थे वहाँ, तुम्हीं बताओ न?"

कृष्ण अय्यर का चेहरा पीला पड़ गया। वह बोला, "आप किसका संकेत कर रहे हैं, मेरी समझ में नहीं आया डॉक्टर!"

जरा भी विचलित न होकर डॉक्टर बोले, "व्रजेन्द्र का।—एक नियम था कि मेरे पीछे मेरे काम की आलोचना नहीं की जा सकती।"

व्रजेन्द्र व्यंग्य-भरे स्वर में बोला, "आलोचना भी नहीं की जा सकती?"

डॉक्टर ने उत्तर दिया, "ना, पीठ-पीछे नहीं की जा सकती। फिर भी की जाती है, इस बात को मैं जानता हूँ। इसका कारण यह है कि उस दिन की कैण्टन की सभा में जो लोग उपस्थित थे, दुरानी की मौत से वे जितने विचलित हो उठे थे, मैं उतना नहीं हुआ था, लिहाजा आलोचना चलती आ रही है और मैं उपेक्षा करता आ रहा हूँ। मगर एक दूसरा बड़ा भारी अपराध भी है विरजू!"

व्रजेन्द्र ने उसी प्रकार उपेक्षा-भरे स्वर में कहा, "उसे भी साफ-साफ सुना दीजिये।"

डॉक्टर ने कहा, "साफ-साफ ही सुना रहा हूँ। मेरे विरुद्ध विद्रोह पैदा करना बड़ा भयंकर अपराध है। दुरानी की मृत्यु के बाद इस विषय में मुझे सावधान हो जाना चाहिए।"

व्रजेन्द्र कठोर हो उठा। बोला, "सावधान होने की आवश्यकता दूसरे के लिए भी ठीक वैसी ही हो सकती है। संसार में जरूरत सिर्फ आप अकेले के लिए नहीं है।" उसने सबकी तरफ देखा, पर सब-के-सब चुप।

डॉक्टर धीरे से बोले, "इसका दण्ड है मरणदण्ड। सोचा था, जाने के पहले कुछ कहूँगा नहीं, मगर व्रजेन्द्र, तुम्हें स्वयं पर धैर्य नहीं हुआ। दूसरे के प्राण लेने को तो तुम सदा ही प्रस्तुत रहते हो, लेकिन ऐसा तुम्हारे साथ ने भी?"

व्रजेन्द्र का चेहरा काला पड़ गया।

दूसरे ही क्षण उसने अपने को सँभालते हुए दम्भ के साथ कहा, "मैं [illegible] हूँ, क्रान्तिकारी हूँ, प्राण मेरे लिए कुछ भी नहीं है—मैं भी

ही गुट में था रहे हो, तो आई विश यू गुड लक, लेकिन मेरा मार्ग तुम छोड़ दो। सुरबाया में एक बार ऐटेम्प्ट कर चुके हो, परसों फिर एक बार किया, मगर इसके बाद फिर डू यू मीट मी।"

सुमित्रा ने चौंककर पूछा, "इन सब बातों का तात्पर्य ? ऐटेम्प्ट करने के क्या मानी ?"

डॉक्टर ने उसके प्रश्न को सुना-अनसुना करके कहा, "कृष्ण अय्यर, आई एम सॉरी !"

अय्यर ने मुंह नीचा कर लिया। डॉक्टर ने जेब में से घड़ी निकालकर देखी, फिर भारती का हाथ पकड़कर खींचते हुए कहा, "अब चलो, मैं तुम्हें घर पहुँचाकर चला जाऊँ। उठो।"

भारती स्वप्न-प्रभावित की तरह उठ बैठी थी। संकेत पाते ही चुपके से खड़ी हो गई।

डॉक्टर उसे अपने आगे किये हुए कमरे से बाहर चल दिये और दरवाजे के पास पहुँचकर एक बार मुड़कर सबके लिए कहते गए, "गुडनाइट !"

किसी ने उत्तर नहीं दिया इस गुडनाइट का। सभी स्वप्न-प्रभावित के समान दंग होकर रह गए। भारती के नीचे उतर जाने के बाद जब डॉक्टर ऊपर की ओर देखते हुए उतर रहे थे तब अचानक शशि दरवाजा खोलकर मुँह निकालकर बोला, "लेकिन मुझे तो आपसे बड़ा आवश्यक काम था डॉक्टर !" और जल्दी से उतर उनके पास आकर खड़ा हो गया, फिर सांस रोके हुए बोला,"मैं तो आदमियों में ही शुमार नहीं डॉक्टर बाबू, किसी दिन आपके किसी काम में आने योग्य शक्ति ही नहीं मुझमें, मगर आपका ऋण मैं हमेशा याद रखूँगा। उसे मैं नहीं भूलने का।"

डॉक्टर ने स्नेह से कहा, "कौन कहता है तुम आदमी नहीं हो शशि ? तुम कवि हो, तुम गुणी हो, तुम सब आदमियों में बड़े हो। और मेरा ऋण यदि सचमुच ही कुछ हो, तो उसे न भूलना ही अच्छा है।"

[illegible] ने कहा, "मैं नहीं भूलने का। पर इस बात को आप भी न भूल[illegible] कुछ मेरे पास है, वह अब आपका ही है—आप चाहे जहाँ

जब भारती के पास पहुँच गये तो उसने कौतूहलता से पूछा,

"क्या है दादा ?"

डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, "बुरे दिनों में तो कवि की विपत्ति नहीं थी, पर अचानक अच्छे दिन आ जाने से बड़ी भारी चिन्ता हो गई है—कहीं ऐसा न हो कि कृतज्ञता का ऋण याद न रहे। इसी से दौड़कर कहने आए हैं कि इनके पास जो कुछ भी है, सब मेरा है।"

भारती ने कहा, "शशि बाबू, ऐसी बात है ?"

शशि चुप रहा।

डॉक्टर ने कौतुकपूर्ण कोमल स्वर में कहा, "याद रहेगी यह चीज संसार में इतनी सुलभ नहीं कि कोई आसानी से भूल जाए।"

शशि ने कहा, "आप कब जाएँगे ? जाने के पहले क्या आपसे भेंट नहीं होगी ?"

डॉक्टर ने कहा, "समझ लो कि भेंट नहीं होगी। तुम मुझसे आयु में छोटे हो इसलिए मैं आज ही आशीर्वाद दिये जाता हूँ कि तुम सुखी हो सको।"

भारती ने कहा, "इनका शनिवार को विवाह है।"

डॉक्टर मुस्करा दिये। कुछ बोले नहीं। सामने ही नदी है। लकड़ी के एक ढेर के पास छोटी-सी नाव भाटे के कीचड़ में टेढ़ी हुई पड़ी थी, उस [illegible] करके और उस पर भारती को बिठाकर स्वयं भी बैठ गए।

शशि ने कहा, "शनिवार तक आपको रह जाना पड़ेगा। जीवन में [illegible] इच्छाएँ की हैं, इसे भी कीजिए। भारती, आपको भी उस दिन आना होगा।"

भारती मौन रही।

डॉक्टर ने कहा "यह नहीं आ पाऊँगा शशि, पर मैं अगर रहा तो उस दिन छिपे बाहर आशीर्वाद दे जाऊँगा। वचन दिये जाता हूँ। और अगर न आ सका, तो निश्चय समझ लेना कि सव्यसाची के लिए भी आना असम्भव था। मगर कहीं भी रहूँ, उस दिन तुम्हारे लिए प्रार्थना करूँगा कि तुम्हारे बाकी दिन सुख से कटें।" इतना कहकर [illegible] के [illegible] की ओर से इशारा किया और स्वयं डॉक्टर ने मुस्कराकर [illegible] रही।

भारती को दुख नहीं हुई थी, पर [illegible] ठीक [illegible]।

था नहीं भारती ! तुम्हारे विश्व-विधान के प्रभु को यदि ऐसी जबर्दस्ती मानकर चलना पड़ता तो तुम्हारी सुमित्रा दीदी का क्या होता, जानती हो? —अपने को ब्रजेन्द्र के हाथों सौंपकर तब कहीं चैन से जीना होता।"

भारती विशेष चौंकी नहीं। आज की घटना के बाद से उसके मन में यह सन्देह उठ रहा था। उसने पूछा, "ब्रजेन्द्र क्या उन्हें तुमसे भी अधिक —बहुत अधिक प्रेम करता है?"

सहसा डॉक्टर से जवाब देते नहीं बना।

थोड़ी देर बाद बोले, "यह कहना जरा कठिन है। यदि एक केवल खिचाव ही हो, तो मनुष्य-समाज में इसकी तुलना नहीं मिल सकती। लज्जा नहीं, शर्म नहीं, हया नहीं, मान-ध्यान नहीं—हिताहित-ज्ञानशून्य जानवर का उन्मत्त आवेग जिसने आँखों से देखा नहीं, वह उसके मन का परिचय ही नहीं पा सकता। भारती, अगर तुम्हारे भैया के ये दोनों हाथ न होते तो सुमित्रा के लिए आत्महत्या करने के सिवा और कोई रास्ता ही खुला न रहता। तुम्हारे विश्व-विधान के प्रभु भी इतने दिन इनकी सेवा लिये बिना नहीं रह सके हैं।"

भारती के झुके हुए सिर पर अपने हाथ से धीरे-धीरे थपकियाँ देने लगे।

भारती भय से त्रस्त होकर बोली, "दादा, यह जानते हुए भी तुम उसी के हाथ में सुमित्रा को छोड़े जा रहे हो ! तुम इतने निष्ठुर हो सकते हो, मैं कल्पना भी नहीं कर सकती।"

डॉक्टर ने कहा, "इसी से तो आज जाने से पहले सब झगड़ा चुका जाना चाहता था—पर सुमित्रा ने नहीं चुकाने दिया।"

भारती ने डरकर पूछा, "चुकाने नहीं दिया क्या? तुम क्या सचमुच ही ब्रजेन्द्र को मार डालना चाहते थे?"

डॉक्टर ने गर्दन हिलाकर कहा, "हाँ, सचमुच ही मार देना चाहता था और इस बीच पुलिस ने यदि उसे जेल भेज दिया तो वापस आकर किसी दिन यह काम मुझे सम्पन्न करना ही पड़ेगा।"

भारती डॉक्टर की गोद पर कुहनी टेके बैठी हुई थी, यह सुनकर वह सीधी उठकर एकदम मौन बैठ गई। उसके हृदय पर एक कठोर आघात पहुँचा। डॉक्टर इस बात को समझ गए, पर कुछ बात न कहके दोनों हाथ

में लेकर उस पार की तरफ नाव चलाने लगे।

कुछ देर बाद भारती ने आहिस्ता से पूछा, "अच्छा दादा, मैं यदि तुम्हारी सुमित्रा होती तो क्या तुम मुझे भी इस प्रकार छोड़कर चले जाते?"

डॉक्टर हँसकर बोले, "मगर तुम सुमित्रा नहीं हो, तुम भारती हो। इसलिए मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊँगा।"

भारती ने व्याकुल होकर कहा, "क्षमा करो दादा, तुम्हारे इन खून-खराबी के कामों में मैं अब नहीं रहने की। तुम्हारी गुप्त समिति का काम अब मुझसे नहीं हो सकता।"

डॉक्टर ने कहा, "इसके मानी यह कि इन लोगों के समान तुम भी मुझे त्यागना चाहती हो?"

इसे सुनकर भारती दुःख से व्याकुल हो उठी, बोली, "यह कहकर तुम मेरे साथ भारी अन्याय कर रहे हो दादा! तुम जो खुशी आये कर सकते हो, पर मैं तुम्हें छोड़कर चली गई, इस बात का ध्यान करके मैं एक दिन भी जीती रह सकती हूँ? मैं तुम्हारा ही काम करती रहूँगी—जब तक कि तुम अपनी इच्छा से मुझे छुट्टी न दे दो।" फिर जरा रुककर कहने लगी, "मगर मैं जानती हूँ कि आदमी मारते फिरना ही तुम्हारा काम नहीं।"

एक क्षण के लिए डॉक्टर ने डाँड सेना बन्द करके पूछा, "कौन-सा काम है मेरा?"

भारती ने कहा, "हम लोगों की अधिकार-समिति के लिए कोई आवश्यकता नहीं थी गुप्त समिति के रूप में परिवर्तित होने की। कारखानों के मजदूर-मिस्त्रियों की हालत तो मैं अपनी आँखों से देख आई हूँ। उनका पाप, उनकी अशिक्षा, उनकी पशु जैसी अवस्था—इनमें से किसी का भी रंचमात्र प्रतिकार यदि जिन्दगी-भर मैं कर सकी तो उससे बढ़कर सार्थकता और क्या हो सकती है? सच बताओ दादा, यह क्या तुम्हारा काम नहीं है?"

डॉक्टर ने कोई उत्तर नहीं दिया।

बहुत देर तक चुप रहकर वे न जाने क्या सोचते रहे, फिर अचानक दोनों डाँडों को पानी से उठाकर धीरे से बोले, 'मगर तुम्हारा यह काम ... ! तुम्हारे लिए दूसरा कर्त्तव्य है। यह काम सुमित्रा का है—... ने इसका सारा भार उसी पर छोड़ दिया है।"

उस मौन रात्रि की गोद में उसकी छोटी-सी नैया मन्द-मन्द गति से बहने लगी।

डॉक्टर ने उसी तरह शान्त कोमल स्वर में कहा, "तुमसे कह देना ही अच्छा है भारती, कुछ थोड़े से कुली-मजदूरों की भलाई करने के लिए मैंने इस अधिकार-समिति की नींव नहीं डाली है। इसका इससे बहुत बड़ा लक्ष्य है। उस लक्ष्य के लिए हो सकता है कि किसी दिन इनकी भेड़-बकरियों के समान बलि तक दे देना पड़े—उसमें तुम मत रहना बहन, तुमसे यह नहीं होगा।"

भारती चौंक पड़ी, बोली, "यह सब तुम क्या कह रहे हो दादा? आदमियों की बलि दोगे?"

उसी प्रकार शान्त स्वर में डॉक्टर ने कहा, "आदमी हैं कहाँ? सब जानवर ही तो हैं।"

भारती डर गई। बोली, "आदमी के विषय में तुम हँसी-मजाक में भी ऐसी बात जबान पर न लाना, कहे देती हूँ। हर समय तुम्हारी बातें समझ में नहीं आतीं—शायद समझ भी नहीं सकती, लेकिन तुम्हारी मुँह की बात से मैं तुम्हें बहुत अधिक समझती हूँ दादा! मुझे झूठ-मूठ को डराने का प्रयत्न मत किया करो।"

डॉक्टर ने कहा, "ना भारती, ना, तुमको सचमुच ही डराने की कोशिश की है जिससे मेरे चले जाने के बाद तुम फिर कुली-मजदूरों की भलाई करने में न रहो। हर प्रकार से इनका भला नहीं किया जा सकता—इनका भला किया जा सकता है केवल क्रान्ति के मार्ग से और उसी क्रान्ति के मार्ग पर चलने के लिए ही अधिकार-समिति की सृष्टि हुई है। क्रान्ति शान्ति नहीं है। उसे हिंसा में से ही चलना पड़ता है—यही उसका वर है और यही उसका अभिशाप। एक बार योरोप की ओर देखो। हंगरी में ऐसा ही हुआ है, रूस में बार-बार यही हुआ है। १५६६ के जून के महीने में होने वाली क्रान्ति फ्रांसीसियों के इतिहास में आज भी अक्षय बनी हुई है। कुली-मजदूरों के खून से उस दिन पेरिस शहर की तमाम सड़कें लाल हो उठी थीं। जापान तो अभी उस दिन का है—उस देश में भी मजदूरों के दुःख के इतिहास रंचमात्र भी इससे भिन्न नहीं हैं। आदमी के चलने का मार्ग आदमी बिना लड़कर भी नहीं छोड़ता भारती!"

भारती सिहर उठी। बोली, "यह मैं जानती हूँ, दादा, परन्तु वैसे भयानक उपद्रव क्या तुम इस देश में भी खींच लाना चाहते हो दादा? जिनकी तिल-भर भलाई करने के लिए हम दिन-रात परिश्रम कर रहे हैं, उन्हीं के खून से रास्तों में खून की नदी बहाना चाहते हो?"

डॉक्टर ने कहा, "अवश्य चाहता हूँ। मानव की रक्तधारा महामानव में मुक्ति समुद्र की ओर तरंगित होकर दौड़ती जाएगी, यही तो मेरा स्वप्न है। नहीं तो इतना ऊँचा पहाड़-सा पाप धुलेगा किससे? उस धोने के काम में अगर तुम्हारे दादा के भी दो बूँद खून की आवश्यकता पड़ेगी, तो उन्हें देने में उसे कोई आपत्ति नहीं होगी।"

भारती ने कहा, "इतना तो मैं तुम्हें पहचानती हूँ दादा। पर देश में ऐसी अशान्ति लाने के लिए ही क्या तुम इतना बड़ा जाल बिछाए बैठे हो? इसके अलावा और कोई आदर्श तुम्हारे पास नहीं है?"

डॉक्टर ने कहा, "अब तक तो खोजे मिला नहीं भारती! बहुत घूमा हूँ, बहुत पढ़ा है, बहुत विचारा है। पर मैं तो तुमसे पहले भी कह चुका हूँ भारती कि अशान्ति फैलाने का अर्थ अकल्याण फैलाना नहीं है। शान्ति, शान्ति—सुनते-सुनते कान बहरे हो गए। मगर इस असत्य का कौन लोग प्रचार करते हैं, जानती हो? इस मिथ्या मंत्र के ऋषि वही हैं जो दूसरों की शान्ति लूटकर बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ और प्रासाद बनाकर मार्ग रोके बैठे हैं। वंचित, पीड़ित और दुःखी नर-नारियों के कान में लगातार इस मंत्र को जप-जपकर उन्हें ऐसा कर दिया गया कि वे भी अशान्ति के नाम से चौंक पड़ते हैं और सोचते हैं कि शायद यह पाप है, शायद यह अमंगल है। बँधी हुई गाय को भूखों मरते हुए देखा है? वह खड़ी-खड़ी मर जाती है, मगर उस पुरानी कमज़ोर रस्सी को तोड़कर मालिक की शान्ति को नष्ट नहीं करती। यही तो हुआ है, इसी से दीन-दरिद्रों के चलने का मार्ग एकदम बन्द हो गया है। फिर भी उन्हीं की अट्टालिकाओं और महलों के तोड़ने के काम में यदि हम भी उन्हीं के साथ स्वर मिलाकर अशान्ति-अशान्ति करने लगें, तो मार्ग कहीं न मिलेगा?—भारती! यह नहीं हो सकता। कोई व्यवस्था चाहे कितनी प्राचीन हो, चाहे कितनी पवित्र हो, चाहे कितनी भी सनातन हो—मनुष्य से बड़ी नहीं हो सकती। आज हमें उसे तोड़ ही डालना

होगा। धूल तो उड़ेगी ही, बालू, चूना तो झरेगा ही, ईंट-पत्थर तो खिसककर आदमी के सिर पर गिरेंगे ही भारती, यह तो स्वाभाविक है।"

भारती ने कहा, "यदि ऐसा ही हो दादा, तो शान्ति का मार्ग छोड़कर पहले से ही अशान्ति के रास्ते में कदम क्यों बढ़ाएँ ?"

डॉक्टर ने कहा, "इसलिए कि शान्ति का रास्ता उस सनातन, पवित्र और प्राचीन सभ्यता के संस्कारों से कसकर बन्द किया हुआ है। केवल एक शान्ति का मार्ग ही खुला हुआ है।"

भारती ने पूछा, "हम लोग उस दिन कारखाने के मजदूरों को संघबद्ध करके निरुपद्रव हड़ताल कराने की जो तैयारी कर रहे थे, वह भी क्या उन लोगों की भलाई के लिए नहीं थी? तुम्हारे चले जाने के बाद अधिकार-समिति का काम भी क्या हम लोगों को बन्द कर देना पड़ेगा ?"

डॉक्टर ने कहा, "ना, पर वह काम तुम्हारा नहीं, सुमित्रा का है। तुम्हारा काम दूसरा है। भारती, 'हड़ताल' का नाम ही एक चीज है, पर 'निरुपद्रव हड़ताल' नाम की कोई चीज नहीं। संसार में कोई भी हड़ताल कहीं सफल नहीं होती, जब तक कि उसके पीछे बाहुबल न हो। अन्तिम परीक्षा उन्हीं को देनी पड़ती है।"

भारती ने आश्चर्य से पूछा, "मजदूरों को देनी पड़ती है ?"

डॉक्टर ने कहा, "हाँ। तुम्हें मालूम नहीं, पर सुमित्रा अच्छी प्रकार जानती है कि धनिक की आर्थिक हानि और गरीब का अनशन एक चीज नहीं। गरीब के उपायहीन व्यर्थ दिन उसे दिन-पर-दिन भुखमरी की ओर ढकेलते ले जाते हैं। उसके बाल-बच्चे और स्त्री-परिवार सब भूखे रोते रहते हैं—उनका निरन्तर रोना आखिर उसे एक दिन पागल बना देता है और तब उसे दूसरे का अन्न छीन खाने के सिवा जीवन-धारण का और कोई उपाय नहीं सूझता, धनिक उसी दिन की प्रतीक्षा करके स्थिर बैठा रहता है। अर्थ-बल, सैना-बल, अस्त्र-बल—सभी तो उसके हाथ में है—यही तो राजशक्ति है।"

भारती ने साँस रोके हुए कहा, "उसके बाद ?"

"उसके बाद वे सब पीड़ित, पराजित, भूखे मजदूर फिर एक दिन उन्हीं

हत्यारों के द्वार पर हाथ फैलाकर खड़े हो जाते हैं, उन्हें भीख मिल जाती है।"

भारती ने कहा, "फिर?"

"फिर? फिर एक दिन वे पहले के अत्याचारों के प्रतिकार की आशा से मदमत्त होकर हड़ताल कर बैठते हैं, और फिर उसी कहानी का पुन: अभिनय होता है।"

क्षण-भर के लिए भारती का मन निराशा से भर गया। उसने धीरे से पूछा, "तो फिर ऐसी हड़तालों से लाभ क्या होता है दादा?"

डॉक्टर की आँखें अँधेरे में भी चमक उठीं। कहने लगे, "लाभ? यही तो बड़ा भारी लाभ है भारती, यही तो हमारी क्रांति का राजमार्ग है। वस्त्र-हीन, अन्नहीन, ज्ञानहीन दरिद्रों की हाय तो खत्म हुई और उनके सारे हृदय से जो जहर भरकर चारों ओर फैलने लगता है, वह व्यर्थ नहीं होता! वही तो हमारा मूल धन है। कहीं भी किसी देश में सिर्फ क्रान्ति के लिए ही क्रान्ति नहीं मचाई जा सकती भारती, उसका कोई-न-कोई आधार अवश्य होना चाहिए। यही तो हमारा अवलम्बन है। जो मूर्ख इस बात को नहीं जानता—सिर्फ मजदूरी की कमी-बेशी के लिए हड़ताल करना चाहता है, वह मजदूरों का भी सर्वनाश करता है और देश का भी।"

भारती सहसा कह उठी, "दादा, तब शायद हमारी कृषकों की बारी आई है?"

डॉक्टर हँसकर बोले, "उधर भी ध्यान है भारती—वही असल है, यह भूला नहीं हूँ।"

भारती ने कहा, "अब मेरी समझ में आ गया कि क्यों तुम मुझे इनके से विदा कर देना चाहते हो। मैं बहुत निर्बल हूँ—उन्हीं जैसी निर्भय। आज भी तुम्हारा सारा भरोसा सुमित्रा दीदी पर ही है। मगर यह बात मैं किसी तरह नहीं मानूँगी कि इसके सिवा और कोई मार्ग ही नहीं। आदमी की भारी-से-भारी खोज अभी समाप्त नहीं हो गई है। एक के मंगल के लिए दूसरे का अमंगल करना ही होगा, इसे मैं किसी भी तरह मान नहीं सकती—तुम्हारे कहने पर भी नहीं।"

"यह मैं जानता हूँ बहन!"

भारती ने कहा, "मगर तुम्हारा काम छोड़कर मैं जीऊँगी भी तो कैसे ? और रहूँ भी तो क्या लेकर ? अगर वापस न जाओगे तो जीती रहूँगी कैसे ?"

"यह भी मुझे पता है।"

भारती ने कहा, "पता तो तुम्हें सबकुछ है। तब फिर करूँ क्या ?"

कुछ देर सन्नाटा रहा। उत्तर न पाकर भारती ने धीरे से कहा, "क्रांति क्या है और क्या उसकी आवश्यकता है, इस बात को मैं अपना ही नहीं सकती। फिर भी तुम्हारे मुंह से जब मैं सुनती हूँ, तो मेरा हृदय रोने लगता है। मालूम होता है, आदमी के दुःख का इतिहास अपनी आँखों से तुमने न जाने कितना देखा है ! नहीं तो इस तरह तुम्हें पागल किसने बनाया ! अच्छा, जाते समय मुझे क्या तुम अपने साथ नहीं ले जा सकते ?"

डॉक्टर ने हँसकर कहा, "भारती, क्या तुम पागल हो गई हो ?"

"पागल हो गई हूँ ?—ऐसा ही होगा।" कुछ ठहरकर बोली, "मालूम होता है, मानो मैं तुम्हारे काम में विघ्न हूँ। इसी से तुम मुझे कहीं हटा देना चाहते हो। पर मैं क्या देश के किसी भी अच्छे काम नहीं आ सकती ? मेरे लिए क्या कहीं भी कोई अवसर नहीं है ?"

डॉक्टर ने कहा, "भारती, देश में अच्छे काम करने को बहुत हैं पर अवसर स्वयं बना लेना पड़ता है।"

भारती ने दुलार के स्वर में कहा, "मुझसे नहीं होता दादा, तुम बनाके दे जाओ।"

क्षण-भर डॉक्टर चुप रहे। उनका प्रसन्न चेहरा सहसा गम्भीर हो उठा जो अँधेरे में भारती को दिखाई नहीं दिया।

डॉक्टर ने कहा, "देश में छोटी-बड़ी ऐसी बहुत-सी संस्थाएँ हैं जो देश के लिए बहुत-से अच्छे काम करती हैं, जैसे दुखियों की सेवा करना, नर-नारियों को पुण्य-संचय में प्रवृत्त करना, आदमी की हारी-बीमारी में दवा देना, सेवा करना, बाढ़-पीड़ित को सहायता और धीरता देना। वे ही तुम्हें मार्ग दिखा देंगी भारती !—लेकिन मैं तो क्रांतिकारी हूँ। मुझमें दया नहीं, माया नहीं, स्नेह नहीं—पाप-पुण्य मेरे लिए दोनों ही मिथ्या हैं। ये सब अच्छे काम मेरी दृष्टि में लड़कों के खेल है। भारत की स्वाधीनता ही मेरा एकमात्र

सत्य है—मेरी एकमात्र साधना है। मेरे लिए यही अच्छा है, मेरे लिए यही बुरा है—इसके अलावा इस जीवन में मेरे लिए कहीं कुछ नहीं है—भारती, अब मुझे तुम अपनी ओर मत खींचो।"

अँधेरे में भारती एकटक उनकी ओर देखती रही। मौन, बिल्कुल मौन।

२३

शनिवार! शशि और नवतारा के विवाह का दिन!

शशि की हाथ जोड़कर प्रार्थना थी कि रात के अँधेरे में किसी भी समय अवकाश निकालकर डॉक्टर भारती को साथ लेकर पधारें और उन दोनों को आशीर्वाद दे जायें।

पंचमी का खण्ड-चन्द्र अभी-अभी पेड़ों की ओट में छिपा है। भारती एक काला रैपर ओढ़े दबे पाँव अपने उसी जन-शून्य घाट के एक किनारे आकर खड़ी हो गई।

डॉक्टर नाव में बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे।

भारती नाव में सवार होकर बोली, "न जाने क्या-क्या सोचती हुई आ रही थी। मैं जानती थी कि मुझसे बिना कहे तुम बिल्कुल नहीं जाओगे, फिर भी तो भय नहीं जाता। अभी कितने दिन हुए हैं, पर लगा मानो युगों से तुम्हें नहीं देखा है। मैं कहे देती हूँ, तुम्हारे साथ चीन देश अवश्य चलूँगी।"

डॉक्टर ने हँसकर कहा, "मैं भी कहे देता हूँ कि तुम ऐसा करने की कदापि कोशिश न करना।" और उन्होंने भाटे के स्रोत में नाव छोड़ दी। फिर कहने लगे, "इतना तो सुगमता से पार कर जायेंगे, पर बड़ी नदी से उलटे बहाव में जाते-जाते आज हम लोगों को बहुत देरी हो जाएगी।"

भारती ने कहा, "हो जाने दो। ऐसे कौन-से बड़े शुभ कार्य में शामिल होने जा रहे हो जो समय निकल जाने से हानि हो जाएगी? मेरी तो आने की इच्छा ही नहीं थी, केवल तुम जा रहे हो, इसी से चल रही हूँ। यह ऐसा भद्दा और गन्दा काम है।"

क्षण-भर मौन रहकर डॉक्टर बोले, "शशि के साथ नवतारा का ब्याह

इस सम्बन्ध में ठीक नहीं बैठती।"

भारती ने कहा, "इस बारे में मैं शायद सौ बार कह चुकी हूँ कि मेरा तुम्हारे अलावा दुनिया में और कोई अपना नहीं—तुम्हारे चले जाने पर मैं रहूँगी कहाँ? मगर यह बात तुम्हारे कान तक पहुँचती ही नहीं और पहुँचती भी कैसे दादा, तुम्हारे हृदय तो है ही नहीं। मुझे ठीक मालूम है, एक बार आँखों से ओझल होते ही तुम मुझे अवश्य भूल जाओगे।"

डॉक्टर ने कहा, "ना। तुम्हारी याद अवश्य रहेगी।"

भारती ने पूछा, "किसका सहारा लेकर मैं संसार में रहूँगी?"

डॉक्टर ने कहा, "सौभाग्यवती जिसके सहारे रहती है उसी के सहारे। पति, पुत्र, धन, सम्पत्ति, घर-द्वार..."

भारती ने प्रसन्न होकर कहा, "मैं अपूर्व बाबू को हृदय से प्रेम करती हूँ, और यह सत्य आपसे भी मैंने छिपाया नहीं। वे मिल जाते तो एक दिन मेरा सम्पूर्ण जीवन धन्य हो जाता, इस बात को भी तुम जानते हो—तुमसे कुछ छिपाया नहीं जा सकता—पर इसके अर्थ क्या यह हुए कि तुम मेरा जब चाहे तब अपमान किया करो?"

डॉक्टर ने आश्चर्य के साथ कहा, "अपमान! भारती, अपमान तो मैंने तुम्हारा जरा भी नहीं किया?"

सहसा भारती का गला भारी हो आया, बोली, "किया कैसे नहीं। तुम जानते हो, हमारे मार्ग में सैकड़ों-हजारों बाधाएँ हैं। तुम जानते हो, मुझे किसी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकते—फिर भी ऐसी बातें करते हो!"

डॉक्टर ने मुस्कराते हुए कहा, "यही तो स्त्रियों में दोष है। वे स्वयं किसी दिन अपने-आप जो बात कह देती हैं, दूसरे दिन उसी को अगर और कोई कह दे तो झपटकर मारने दौड़ती हैं। उस दिन सुमित्रा की बात पर तुमने कहा था, वह किसी को एक दिन पैरों के पास लाकर डाल देगी और आज मैंने उसी को दुहरा दिया तो रुलाई के मारे तुम्हारा गला रुक गया!"

भारती ने कोई उत्तर नहीं दिया।

कुछ देर चुपचाप रहकर डॉक्टर फिर बात करने लगे। अब की बार न जाने कहाँ से उनकी आवाज में उन्हीं के जैसा स्वर आ मिला, बोले, "उस रात को जब तुम सुमित्रा की बात कह रही थीं तब उत्तर नहीं दे सका था।

इस पथ का यात्री मैं नहीं हूँ, फिर भी तुम्हारे मुँह की सुमित्रा की कहानी से मेरे रोयें खड़े हो गये थे। दुनिया घूमकर मैंने बहुतेरी चीजों की थाह पाई है, पर नहीं पाई यदि किसी की तो इस नर-नारी के प्रेम के तत्त्व की। बहन, 'असम्भव' शब्द शायद इन्हीं के कोश में नहीं लिखा।"

इस बात में भारती ने जरा भी उत्सुकता प्रकट नहीं की। उदास स्वर में कहा, "तुम्हारी बात सच हो दादा, वह शब्द तुम लोगों के कोश से भी मिट जाए। सुमित्रा दीदी का भाग्य किसी दिन प्रसन्न हो।" जरा ठहरकर फिर कहा, "अपूर्व बाबू को मैं वास्तव में चाहती हूँ। अच्छे हों चाहे बुरे हों, उन्हें मैं कभी भूल नहीं सकती। मगर इसका तात्पर्य यह नहीं कि उनकी स्त्री होकर घर-गृहस्थी न कर पाऊँ तो मेरा जीवन ही व्यर्थ हो जाए! मेरे लिए यह शोक की बात नहीं है दादा, तुमसे मैं बिना किसी कपट के कहती हूँ, तुम मुझे शान्त मन से आशीर्वाद देकर मार्ग दिखलाते जाओ—तुम्हारे सामने मैं भी दूसरों के लिए अपना जीवन देकर अपना जन्म सार्थक कर जाऊँगी।—दादा, अपनी निराश्रय बहन को अपना साथी बना लो न?"

डॉक्टर चुपचाप नाव चलाने लगे। उन्होंने इतने बड़े अनुनय का उत्तर नहीं दिया।

भारती अँधेरे में उनका चेहरा देख नहीं सकी और इस मौन से आशान्वित हो उठी। अब की बार उसके स्वर-भरे अनुनय में वेदना भर गई। बोला, "लो चलो दादा! तुम्हारे सिवा इस अँधेरे में कहीं प्रकाश नहीं दीखता।"

डॉक्टर ने धीरे-धीरे सिर हिलाकर कहा, "असम्भव है भारती! तुम्हारी बातों से आज मुझे ओआ की याद आ रही है। तुम्हारे ही समान उसका जीवन अकारण नष्ट हो गया है। भारत की स्वाधीनता के अलावा मेरा अपना और कोई लक्ष्य नहीं है, फिर भी मानव-जीवन में इससे बढ़कर कामना संसार में और कोई है ही नहीं, ऐसा समझने की भूल भी मैंने कभी नहीं की। स्वाधीनता का अन्त नहीं है। धर्म, शान्ति, काव्य, आनन्द—यह और भी बड़े हैं। इनके चरम विकास के लिए ही स्वाधीनता चाहिए, नहीं तो उसका मूल्य ही क्या है। इसके लिए मैं तुम्हारी हत्या नहीं कर सकता बहन, तुम्हारे अन्दर जो हृदय-स्नेह, प्रेम, करुणा, माधुर्य है, वह मुझसे बहुत

ऊपर पहुँच चुका है—वहाँ तक मेरा हाथ नहीं जाता।"

भारती का सर्वांग पुलकित हो उठा।

सव्यसाची के गम्भीर अन्तरंग का उसे आज सहसा एक अनोखा रूप दिखाई दे गया। भक्ति और आनन्द से विचलित होकर उसने कहा, "मैं भी तो यही सोचती रहती हूँ दादा, तुम्हारा न जाना हुआ संसार में है ही क्या और अगर यही बात है, तो तुम किसलिए इस षड्यन्त्र में लिपटे पड़े हो? किसलिए तुम देश-विदेश में गुप्त समितियों की सृष्टि करते फिरते हो? मानव का चरम कल्याण तो कभी इसके द्वारा हो नहीं सकता।"

डॉक्टर ने कहा, "बात सही है। परन्तु चरम कल्याण का भार भगवान् के ही हाथ में छोड़कर लोग क्षुद्र मानव के लिए जो कुछ साध्य है, उसी कल्याण के काम में लगे हैं। अपने देश में स्वाधीन भाव से बात करने, स्वाधीन भाव से चलने-फिरने का हमारा अत्यन्त तुच्छ दावा है—भारती! इससे अधिक हम लोग कुछ भी नहीं चाहते।"

भारती ने कहा, "यह तो सभी चाहते हैं दादा! मगर इसके लिए नर-हत्या का षड्यन्त्र क्यों, बताओ तो? क्या आवश्यकता है उसकी?" परन्तु यह बात मुँह से निकल जाने के बाद ही भारती अत्यन्त लज्जित हो उठी। कारण, यह अभियोग सिर्फ अप्रिय ही नहीं, असत्य भी है।

उसने व्यग्र होकर तत्काल कहा, "मुझे क्षमा करो दादा, मैंने केवल गुस्से में ही यह झूठ कह डाला है। मुझे छोड़कर तुम चले जाओगे, यह मैं सोच ही नहीं सकती।"

डॉक्टर ने हँसकर कहा, "यह मुझे मालूम है।"

इसके बाद बहुत देर तक कोई कुछ नहीं बोला।

उन दिनों भारत-भर में स्वदेशी आन्दोलन चल रहा था। भक्ति-भाजन नेतागण देशोद्धार के उद्देश्य से कानून बचाकर जो भाषण दे रहे थे, कभी-कभी अखबारों में उनका सारांश पढ़कर भारती उनके प्रति श्रद्धापूर्ण विस्मय से झुक जाती थी। पिछली रात को ऐसी ही कोई एक रोमांचकारी रचना पढ़ने के बाद से मन में उत्तेजना की हवा बह रही थी। उसी की याद करके वह बोली, "मैं जानती हूँ, अंग्रेजों के राज्य में तुम्हारे लिए स्थान नहीं है, पर सारी दुनिया तो उनकी नहीं है। वहाँ जाकर तो तुम लोग सरल और प्रकट

क्या तुम अपने उद्देश्य के लिए प्रयत्न कर सकते हो?" प्रश्न करके भारती उसके उत्तर की आशा में ठहरकर बोली, "अँधेरे में तुम्हारा मुँह नहीं दिखाई दे रहा, पर समझ रही हूँ कि मन-ही-मन हँस रहे हो। केवल तुम और तुम्हारे विप्लव दल ही नहीं, और भी तो ऐसे लोग देश का काम कर रहे हैं जो प्रवीण, विज्ञ राजनीतिज्ञ हैं—अच्छा दादा, कल का समाचार-पत्र तुमने [illegible]।"

उसकी बात समाप्त होने के पहले डॉक्टर बोले, "क्षमा करो भारती, इन लोगों से तुलना करके उन सम्माननीय जनों का अपमान मत करो।"

भारती ने कहा, "मैं नहीं बल्कि तुम्हीं उन पर व्यंग्य कस रहे हो।"

डॉक्टर ने जोर से सिर हिलाते हुए कहा, "ना-ना! उनकी भी भक्ति करता हूँ, और उनके देशोद्धार के लिए दिए भाषणों का रस हम लोगों से अधिक संसार में और कोई नहीं लेता।"

भारती ने दुःखी होकर कहा, "रास्ता हम लोगों का एक नहीं सही पर उद्देश्य तो एक ही है।"

कुछ देर चुप रहकर डॉक्टर ने कहा, "अब तक तो हँसी हो रहा था, पर अब असन्तुष्ट हो जाओगी भारती! रास्ता हम लोगों का एक नहीं, यह जानी हुई बात है, पर लक्ष्य भी हम लोगों का उनसे अलग है, क्या यह बात भी अब तक तुम्हारी समझ में नहीं आई? संसार की बहुत-सी जातियाँ आजाद हैं—इससे बढ़कर बड़ा मानव-जाति के लिए और कुछ नहीं हो सकता। उस स्वाधीनता का दावा करना या उसके लिए कोशिश करना तो बहुत दूर की बात है, उसकी कामना करना और कल्पना करना भी अंग्रेजी कानून में राजद्रोह समझा जाता है। मैं उसी अपराध का अपराधी हूँ। [illegible] पराधीन बने रहना ही इस देश का नियम है। इसलिए वे सब प्रवीण पुरुष [illegible] कानून के बाहर किसी दिन कोई दावा नहीं करते। चीन देश के सब [illegible] की तरह इस देश के भी यदि अंग्रेज कानून बना दें कि सबको [illegible] की चोटी रखनी पड़ेगी, तो वे लोग उसके विरुद्ध भी किसी तरह [illegible] कानूनी उल्लंघन नहीं करेंगे। वे [illegible] करके आन्दोलन करेंगे कि [illegible] की चोटी रखने का कानून बनाकर देश के प्रति बड़ा अन्याय किया गया है, इसे बदलकर [illegible] दो हाथ की [illegible] का नियम बना दिया जाए।"

वे स्वयं अपने मजाक पर प्रसन्न होकर ज़ोर से ठहाका मारकर हँस पड़े कि नदी की अंधकारमय शान्ति नष्ट हो उठी।

भारती ने कहा, "तुम चाहे जो कहो दादा, पर इस बात को मैं कदापि नहीं मान सकती कि वे इस देश के लिए प्रणम्य नहीं। मैं सभी की बात नहीं कर रही हूँ, पर सचमुच ही जो राजनीतिज्ञ हैं, वास्तव में जो देश के शुभाकांक्षी हैं, उनकी सारी मेहनत ही व्यर्थ है, यह बात निःसंकोच स्वीकार कर लेना कठिन है। मत और मार्ग अलग होने से किसी पर व्यंग्य कसना शोभा नहीं देता।"

डॉक्टर चुप हो गये।

पीछे से एक स्टीम लांच शोर करता हुआ उनकी छोटी-सी नाव को डावांडोल करके निकल गया। तब सव्यसाची ने धीरे से कहा, "भारती, मेरा अभिप्राय तुम्हें व्यथा पहुँचाने का नहीं, और न तुम्हारे पूजनीयों का मैं मजाक ही उड़ाना चाहता हूँ। उनकी राजनीति-विद्या के पाण्डित्य पर भी मेरी भक्ति कुछ कम नहीं, मगर बात क्या है, यह मैं तुम्हें बतलाता हूँ—जो गृहस्थ गाय को रस्सी छोटी करके बाँधता है, मैं केवल इतना ही समझता हूँ कि उसकी उस छोटी रस्सी में केवल एक ही नीति रहती है। गाय की पहुँच के बिल्कुल बाहर जो पानी से भरी नांद है, उसकी तरफ उसका जी-जान से मुंह बढ़ाने और जीभ निकालकर उसको चाटने की कोशिश करने में असंगता बिल्कुल नहीं है—यहां तक कानून भी ठीक है। उत्साह देने योग्य हृदय हो तो उत्साह भी दे सकते हो, राजा की ओर से कोई मनाही नहीं। मगर गाय के इस पूरे प्रयत्न को यदि कोई बाहर से देखता है, तो उसके लिए अपनी हँसी रोकना कठिन हो जाता है।"

भारती हँस दी। बोली, "तुम बड़े दुष्ट हो दादा।" और तुरन्त ही अपने को संयत करके कहने लगी, "पर एक बात मेरी समझ में नहीं आती कि जिसके प्राण दिन-रात एक कच्चे धागे पर लटक रहे हों, वह दूसरों को लेकर हँसी-मज़ाक कैसे किया करता है?"

डॉक्टर ने स्वाभाविक स्वर में कहा, "इसका कारण यह है कि उसकी इस समस्या का समाधान पहले ही हो चुका है। भारती, जिस दिन इस काम में पैर रखा है उसी दिन सब निश्चय हो चुका है। अब मुझे कुछ न सोचना

और कोई दिखाई नहीं देता। तुम कहोगे, तो क्या देश का उद्धार नहीं होगा? प्राणों के भय से क्या अलग खड़े रहें? परन्तु मैं तो यह नहीं कह रही हूँ। तुम्हारे साथ रहकर, तुम्हारे चरित्र से इस बात को मैं जान गई हूँ कि जननी बड़ी चीज है। तुम्हें देखकर यदि यह बात भी नहीं सीख सकी होऊँ कि जन्म-भूमि के चरणों के आगे सर्वस्व दे डालने से बढ़कर सार्थकता मनुष्य के लिए और कुछ नहीं हो सकती, तो मुझसे बढ़कर नीच नारी और कौन होगी, पर केवल आत्महत्या करके ही कब कौन-सा देश स्वाधीन हुआ है? तुम्हारी भारती जीते-जी इतनी बड़ी भूल कर सकती है, ऐसी गलत राय मत बनाना दादा!"

डॉक्टर ने सांस छोड़ते हुए कहा, "अच्छा!"

"अच्छा क्या?"

"तुम्हारे सम्बन्ध में भूल ही हुई है।" कहकर डॉक्टर कुछ देर चुप रहे, फिर बोले, "क्रान्ति का अर्थ खून-खराबी और मार-काट नहीं भारती, क्रान्ति का अर्थ है अत्यन्त शीघ्रता, बिल्कुल परिवर्तन—एकाएक महान् परिवर्तन। सैन्यबल, विराट युद्ध-सामग्री—सबकुछ मुझे मालूम है। मगर शक्ति-परीक्षा हमारा लक्ष्य नहीं है—आज जो शत्रु हैं, कल वे ही मित्र भी हो सकते हैं। नीलकान्त शक्ति-परीक्षा करने नहीं गया था, मित्र बनाने गया था और उसने प्राण दे दिये। हाय रे नीलकान्त! कौन जानता है तेरा नाम!"

भारती अँधकार में भी स्पष्ट समझ गई कि जिस युवक ने देश के बाहर देश के लिए सबकी आँखों से ओझल चुपचाप प्राण त्याग दिये हैं, उसकी याद करके इस परम संयमी आदमी का गम्भीर हृदय क्षण-भर के लिए विचलित हो उठा है।

अचानक डॉक्टर सीधे होकर बैठ गए। कहने लगे, "क्या कह रही थी भारती, गोष्पद? ऐसा ही हो शायद। परन्तु जो चिंगारी शहर-भर को जलाकर भस्म कर देती है वह आकार में कितनी बड़ी होती है, जानती हो? शहर जब जलता है तब वह अपना ईंधन आप ही इकट्ठा करके भस्म होता रहता है।—उसके भस्म होने की सामग्री उसी में संचित रहती है। विश्व-विधान के इस नियम का कोई भी राज-शक्ति किसी भी दिन उल्लंघन नहीं

कर सकती।"

भारती ने कहा, "दादा, तुम्हारी बातें सुनने से बदन कांप उठता है। जिस राज-शक्ति को तुम भस्म कर देना चाहते हो, उसका ईंधन भी तो हमारे देशवासी हैं। इतने बड़े लंकाकाण्ड की कल्पना करते हुए क्या तुम्हें दया नहीं आती?"

डॉक्टर ने तुरन्त ही कहा, "ना। प्रायश्चित्त शब्द क्या केवल मुंह से ही कहने का है? हमारे पहले के पुरखों का संचित किया हुआ पापों का विशाल स्तूप फिर नष्ट कैसे होगा? दया की अपेक्षा न्याय-धर्म बहुत बड़ी चीज है भारती!"

भारती दुःखी होकर बोली, "यह तुम्हारी वही पुरानी बात है। दादा! भारत की स्वाधीनता के लिए तुम कितने अधिक निष्ठुर हो सकते हो, मैं सोच ही नहीं सकती। रक्तपात के सिवा तुम्हारे मन में और कोई बात आ ही नहीं सकती। रक्तपात का उत्तर यदि रक्तपात ही हो, तो उसका उत्तर भी तो रक्तपात ही होगा? और फिर यह सिलसिला चलता ही रहेगा। यह प्रश्नोत्तर तो प्राचीनकाल से होता आ रहा है। क्या मानव-सभ्यता इससे बड़ा उत्तर कभी दे ही नहीं सकती? देश चला गया है। पर उससे भी जो बड़ा है वह मनुष्य तो आज भी मौजूद है। मनुष्य क्या आपस में प्रेमपूर्वक पास-पास रह ही नहीं सकते?"

डॉक्टर ने कहा, "अंग्रेजी के एक बड़े कवि ने कहा है, पश्चिम और पूर्व कभी भी एक नहीं हो सकते।"

भारती नाराज होकर बोली, "बकवास कवि है वह। उसे कहने दो। तुम परमज्ञानी हो, तुमसे बहुत बार पूछा है और आज भी फिर पूछ रही हूं—होने दो उन्हें पश्चिम का, होने दो उन्हें योरोप का, पर हैं तो वे भी आदमी ही? मनुष्य के साथ मनुष्य क्या किसी भी प्रकार मित्रता नहीं कर सकता? दादा, मैं क्रिश्चियन हूं, अंग्रेजों के अनेक ऋणों से ऋणी हूं, उनके अनेक सद्गुण मैंने अपनी आंखों देखे हैं, उन्हें इतना बुरा सोचते हुए मेरे हृदय को चोट पहुंचती है। पर तुम मुझे गलत मत समझना दादा, मैं हिन्दुस्तानी लड़की हूं—तुम्हारी बहन। भारत की भूमि और भारत के वासियों से मेरा प्राणाधिक प्रेम है। जिस प्रकार का जीवन तुमने चुन लिया है, उसे देखते हुए कौन कह सकता है कि आज का मिलना ही हम

लोगों की अन्तिम भेंट न हो। आज तुम शान्त मन से इसका उत्तर दे जाओ जिससे मैं उसकी ओर दृष्टि रखकर आजीवन सिर उठाकर सीधी चल सकूँ।" उसको रुलाई आ गई।

चुपचाप नाव चलाते रहे डॉक्टर।

भारती को ऐसा लगा कि डॉक्टर इसका उत्तर नहीं देना चाहते। उसने हाथ डालकर नदी के पानी से आँख-मुँह धो डाला और उसे आँचल से बार-बार अच्छी तरह पोंछकर फिर कोई प्रश्न करना चाहा।

तभी डॉक्टर बोल उठे। कोमल स्वर था, कहीं भी रत्ती-भर उत्तेजना या विद्वेष का आभास नहीं—ऐसा शान्त और स्वाभाविक मानो किसी की बात कोई और ही कह रहा हो।

भारती को उस प्रथम परिचय के दिन स्कूल के निर्बोध मास्टर साहब की याद आ गई। अशुद्ध अंग्रेजी उच्चारण, व्याकरण भी वैसा ही—भारती बड़ी मुश्किल से हँसी रोककर बात कर सकी थी। बाद में उसी बात को लेकर अप्रसन्न होकर उसने डॉक्टर का बहुत दिन बहुत अपमान किया है। वैसे ही निस्पृह कण्ठ से डॉक्टर ने आज फिर कहा, "भारती, एक प्रकार का साँप होता है जो साँप खाकर ही जीवित रहता है। उसे देखा है?"

भारती ने कहा, "ना, देखा नहीं, सुना है।"

डॉक्टर ने कहा, "पशुशाला में है। एक बार कलकत्ते जाकर अपूर्व को आज्ञा देना, वह दिखा लायेगा।"

"बार-बार हँसी मत करो दादा, अच्छा नहीं होगा, कहे देती हूँ।"

"ना, मैं भी यही बात कहता हूँ कि अच्छा नहीं होगा। उनका पास-पास रहना ठीक नहीं बनता, पर उससे भी अधिक घनिष्ठता से एक के पेट में दूसरे को बिना किसी बाधा के स्थान मिल जाता है। विश्वास न हो तो 'ज़ू' के प्रबन्धक से पूछ देखना।"

डॉक्टर ने फिर कहा, "तुम उन लोगों के धर्म की हो, उनके अनेक ऋणों से ऋणी हो, उनके बहुत-से सद्गुण आँखों से देखे हैं तुमने, पर कभी उनकी विश्वग्रासी विराट भूख का नतीजा भी देखा है? इस देश के स्वामी हैं वे—स्वामीपने की तारीख तो याद है न—आज ब्रिटिश सम्पत्ति की तुलना नहीं हो सकती। कितने जहाज, कितने कल-कारखाने, कितनी हजारों-

लाखों इमारतें ! आदमी मारने के उपकरणों और आयोजनों का अन्त नहीं। अपने समस्त अभाव और सब प्रकार की आवश्यकताओं को मिटाकर भी अंग्रेजों ने सन् १८१० से १८८० तक सत्तर वर्ष के भीतर बाहर वालों को दान दिया था तीन हजार करोड़ रुपये। जानती हो यह विराट ऐश्वर्य कहाँ से गया था? अपने को तुम हिन्दुस्तान की लड़की बता रही थी न? भारत की भूमि, भारत की जलवायु और भारत के आदमियों से तुम्हारा प्राणाधिक प्रेम है न? इस भारत के लाखों नर-नारी हर साल मलेरिया से मर जाते हैं। एक-एक जंगी जहाज का मूल्य कितना होता है, जानती हो? उनमें से केवल एक के ही दाम से भारत की लाखों माताओं की आँखों के आँसू पोंछे जा सकते हैं। सोची यह बात? देखी है कभी अंतस में माँ की मूर्ति? शिल्प गया, व्यापार गया, धर्म गया, ज्ञान गया—नदियों की छाती सूखकर मरुभूमि हुई जा रही है, किसान को भरपेट खाना नहीं मिलता है, शिल्पकार विदेशियों के द्वार पर मजदूरी करता है—देश में पानी नहीं, अन्न नहीं, गृहस्थ की सर्वोत्तम सम्पदा गोधन थी, वह भी नहीं—दूध के अभाव से बच्चों को सूख-सूख के मरते देखा है भारती तुमने?"

भारती ने चिल्लाकर उन्हें रोकना चाहा, पर उसके गले को किसी ने दबा दिया हो।

सव्यसाची का वह संयत स्वर कभी का समाप्त हो चुका था। वे कहने लगे, "तुम क्रिश्चियन हो। याद है, एक दिन कौतूहलवश योरोप की क्रिश्चियन सभ्यता का स्वरूप जानना चाहा था तुमने? उस दिन व्यथा पहुँचने के डर से नहीं बताया था, पर आज बताऊँगा। तुम लोगों की किताबों में क्या है, नहीं कह सकता। सुना है अच्छी बातें ही लिखी हैं, मगर बहुत दिन एक साथ रहते-रहते उसका वास्तविक स्वरूप मुझसे छिपा नहीं है। धर्महीन नग्न स्वार्थ और पशु-शक्ति का अत्यधिक प्राधान्य ही उसका मूलमन्त्र है। सभ्यता के नाम से निर्बल और असमर्थों के विरुद्ध इतने बड़े घातक मूलतः मनुष्य की बुद्धि ने पहले कभी आविष्कार नहीं किया। पृथ्वी के नक्शे की तरफ आँख उठाकर देखो, योरोप की विश्वग्रासी भूख से कोई भी कमजोर जाति अपनी रक्षा नहीं कर सकी है। देश की भूमि और देश की ही सम्पत्ति से देश की सन्तान किस अपराध से वंचित हुई है, जानती हो

भारती ? एकमात्र शक्तिहीनता के अपराध में। और मजा यह है कि न्याय-धर्म ही सबसे बड़ा धर्म है, और विजित जाति के अशेष कल्याण के लिए ही यह अधीनता की जजीर उसके पैरों में पहनाकर उस पंगु की सब तरह की जिम्मेदारी उठाना योरोपीय सभ्यता का परम कर्तव्य है। इस पर असत्य का प्रचार, लेखों, भाषणों और मिशनरियों के धर्म-प्रचार में ही नहीं, यहाँ तक कि लड़कों की पाठ्य-पुस्तकों में भी किया जाता है। और यही तुम्हारी क्रिश्चियन सभ्यता की राजनीति है।"

भारती मिशनरियों के हाथ में बनी हुई नारी है, अनेक महान् चरित्र उसने वास्तव में अपनी आँखों से देखे हैं—अपने धार्मिक विश्वास पर ऐसे अकारण आक्रमण से वह दुःखी हो उठी। बोली, "दादा, किसी भी कारण से हो, तुम्हारी शान्त बुद्धि आज नष्ट हो गई है। ईसाई धर्म-प्रचार के लिए जो लोग इस देश में आये हैं, उनके विषय में तुमसे बहुत अधिक नहीं जानती हूँ, तुमसे आज उनके प्रति निरपेक्ष सुविचार करते नहीं बन रहा है. योरोप की सभ्यता ने क्या तुम लोगों की कोई भी भलाई नहीं की ? सती-दाह, गंगा-सागर में सन्तान बलि···।"

डॉक्टर बीच में ही कह उठे, "चड़क के समय पीठ छेदना, सन्यासियों का तलवार पर नाचना, डकैती, ठगी, लूट-खसोट, गौड़ों और खसियों की आषाढ़ में नर-बलि – और तो याद नहीं आ रहा है, यही न भारती ?"

भारती कुछ बोली नहीं।

डॉक्टर ने कहा, "ठहरो, और भी तो बातें याद आ गईं—बादशाही जमाने में गृहस्थ अपनी बहू-बेटियों को घर में नहीं रख सकते थे, नवाब लोग औरतों का पेट चीरकर बच्चा देखा करते थे ! हाय रे हाय, विदेशियों के लिखे हुए इतिहासों ने इसी तरह मामूली और छोटी बातों को विशाल बनाकर देश के प्रति देशवासियों के चित्त को विमुख कर दिया है। याद आता है, बचपन में अपनी एक स्कूली किताब में मैंने पढ़ा था कि विलायत में बैठे-बैठे हमारे कल्याण की बात सोचते-सोचते राजमन्त्री की नींद हराम हो गई है। उन्हें अन्न नहीं भाता। यह असत्य बच्चों को कण्ठस्थ करना पड़ता है, और पेट भरने की गरज से शिक्षकों को कण्ठस्थ कराना पड़ता है,

इन्य राज्यतन्त्र की यही तो राजनीति है भारती ! अपूर्व को दोष देना व्यर्थ है।"

अपूर्व के लाछन से भारती मन-ही-मन लज्जित हुई और रूठ गई। बोली, "तुम जो कह रहे हो यह सत्य हो सकता है। सम्भव है, कहीं किसी अविमृश्य राजकर्मचारी ने ऐसा किया हो, मगर इतने बड़े साम्राज्य की मूल नीति कभी केवल असत्य नहीं हो सकती। इस बुनियाद पर भीत खड़ी करके इतनी बड़ी इमारत एक दिन के लिए भी स्थिर नहीं रह सकती। तुम कहोगे कि काल के गहन स्रोत से ये हैं कितने दिन ? ऐसे साम्राज्य तो इसके पहले भी थे। वे क्या चिरस्थायी हुए हैं ? तुम्हारी बात अगर ठीक हो, तो यह भी चिरस्थायी नहीं होगा। परन्तु, यह शृंखलाबद्ध और सुनियन्त्रित राज्य है—तुम कितनी भी बुराई क्यों न करो, पर क्या इसकी एकता और शक्ति से कोई शुभ लाभ नहीं हुआ ? प्रातीच्य की सभ्यता के प्रति कृतज्ञ होने का क्या कोई भी कारण नहीं मिला तुम्हें ? स्वाधीनता तो हमारी बहुत दिनों से चली गई है। इस बीच में केवल राजशक्तियों का ही परिवर्तन हुआ है, तुम लोगों के भाग्य का तो कोई परिवर्तन नहीं हुआ ? क्रिश्चियन होने की वजह से तुम मुझे गलत न समझ लेना दादा, मगर अपना सारा-का-सारा अपराध विदेशियों के सर मढ़कर ग्लानि करना ही अगर तुम्हारे देश-प्रेम का आदर्श हो, तो वह आदर्श तुम्हारे हाथ से मैं नहीं ले सकूँगी। हृदय में इतना विद्वेष भरकर तुम अंग्रेजों की हानि शायद कर भी सको पर उससे भारतवासियों का कल्याण नहीं होगा, यह भी बिल्कुल सही है।"

उसका तेज स्वर, शांत नदी में टकराकर सव्यसाची के कानों में पहुँचा और उसने उन्हें चौंका दिया।

भारती का यह रूप अपरिचित था, यह मनोभाव अप्रत्याशित था, फिर भी जिस धर्म-विश्वास और सभ्यता के घनिष्ठ प्रभाव में वह छोटे से इतनी बड़ी हुई है, उसी पर आघात होने से वह चंचल और असहिष्णु होकर जो ऐसा निडर प्रतिवाद कर बैठी, वह चाहे जितना कठोर और विपरीत क्यों न हो, उसने सव्यसाची की दृष्टि में उसे और भी ऊँचा चढ़ा दिया।

डॉक्टर को निरुत्तर देखकर भारती ने फिर कहा, "दादा, उत्तर क्यों नहीं देते ? हृदय में इतनी बड़ी ईर्ष्या की आग जलाकर तुम और चाहे जो

करो, पर देश की भलाई न कर सकोगे।"

डॉक्टर ने कहा, "तुम्हें तो कितनी ही बार कह चुका हूँ कि जो देश की भलाई करने के बहाने उगाहकर चारों ओर अनाथालय, ब्रह्मचर्याश्रम, सेवाश्रम, दरिद्र-भण्डार आदि तरह-तरह साइनबोर्ड लगाकर काम कर रहे हैं, महान् पुरुष हैं वे, मैं उन पर भक्ति रखता हूँ—लेकिन मैंने देश की भलाई करने का भार नहीं लिया है।" फिर जरा रुककर कहा, "मेरे हृदय को आग तो दो बातों से बुझ सकती है, या तो अपनी चिताभस्म में या फिर किसी दिन यह सुन लेने से कि योरोप का धर्म, सभ्यता और नीति समुद्र के अन्तराल में समा गई है।"

भारती मग्न रह गई।

वे कहने लगे, "इस विषदग्ध दुग्ध के पात्र को लिए समुद्र-पार होकर योरोप जब पहले-पहल रोजगार करने आया, तब उसे केवल जापान पहचान सका। इसी से आज उसका इतना सौभाग्य है, इसी से आज वह योरोप के लिए सामान्य मित्र है। मगर उसे पहचान नहीं सका भारत और पहचान नहीं सका चीन। उन दिनों स्पेन का राज्य चारों ओर फैला हुआ था। छोटे-से जापान ने स्पेन के एक नाविक से पूछा, 'इतना बड़ा राज्य तुमने कैसे प्राप्त कर लिया?' नाविक ने कहा, 'बड़ी आसानी से—हम जिस देश को हड़प लेना चाहते हैं, वहाँ पहले बेचने के लिए माल ले जाते हैं। फिर हाथ-पाँव जोड़कर व्यापार के लिए थोड़ी-सी जमीन उस देश के राजा से माँग लेते हैं। उसके बाद बुलाते हैं मिशनरियों को। वे क्रिश्चियन तो अधिक नहीं बना सकते, पर उस देश के धर्म की बेहद निंदा करते हैं। तब लोग बिगड़ उठते हैं और दो-एक को मार डालते हैं। बस, तत्काल ही आ जाती हैं हम लोगों की तोपें, बन्दूकें और सेना-सामन्त। तब हमारे देश की आदमी-मारू मशीनें असभ्य देशों के हथियारों की अपेक्षा कितनी श्रेष्ठ हैं, इस बात को वे शीघ्र ही प्रमाणित कर दिखलाते हैं।' यह सुनकर जापान ने कहा,
'तो प्रभु, आप लोग अब यहाँ से बोरिया-बिस्तर ...
...आपके व्यापार की आवश्यकता नहीं।' यह कहकर उन्हें विदा ...
अपने देश में कानून जारी कर दिया कि जब तक चन्द्र-सूर्य ...
तक क्रिश्चियन हमारे देश में कदम न रखने पावेंगे।

उन्हें प्राणदण्ड दिया जाएगा।"

अपने धर्म और धर्म-प्रचारकों के प्रति किए गए इस तीक्ष्ण कटाक्ष से भारती दुःखी होकर बोली, "यह बात तुम्हारे मुँह से पहले भी सुनी है, मगर जिन जापानियों की तुम भक्ति करते हो, वे कैसे है?"

डॉक्टर ने कहा, "भक्ति करता हूँ? गलत। उनसे घृणा करता हूँ। कोरियनों को बार-बार वचन और अभय देकर भी जब बिना किसी दोष के झूठे बहाने से उन लोगों को कैद करके १९१० में कोरिया राज्य हड़प लिया गया, तब मैं शंघाई में था। उस दिन के अमानुषिक अत्याचारों को भूला नहीं जा सकता। भारती! और अभय क्या केवल एक जापान ही ने दिया था? योरोप ने भी दिया था। पर शक्तिशाली के विरुद्ध अंग्रेजों ने जबान तक नहीं हिलाई। कह दिया, 'ऐंग्लो-जापानी संधि-सूत्र में हम लोग बँधे हुए हैं।' और यही बात अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र के सभापति ने भी अत्यन्त स्पष्ट भाषा में कह दी, 'वचन से क्या होता है? जो असमर्थ और शक्तिहीन जाति स्वयं आत्मरक्षा नहीं कर सकती, उसका राज्य नहीं जाएगा तो किसका जाएगा? जो हुआ ठीक ही हुआ। अब हम लोग उसका उद्धार करने जाएँगे? असम्भव है! पागलपन है!'" इतना कहकर सव्यसाची क्षण-भर चुप रहे, फिर बोले, "मैं भी कहता हूँ भारती, असम्भव है, पागलपन है। बलवान दुर्बल की सम्पदा क्यों नहीं छीनेगा, इस बात को तो सभ्य योरोप की नैतिक बुद्धि सोच ही नहीं सकती।"

भारती चुप रही।

वे फिर कहने लगे, "अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में ब्रिटिश दूत लार्ड मैकार्टनी चीनी दरबार में पहुँचे। व्यवसाय की जरा आसानी पाने के लिए। मंचू नरेश शियनलुंग चीन के सम्राट् थे। बहुत ही दयालु। दूत की नम्र प्रार्थना से प्रसन्न होकर उन्होंने आशीर्वाद दिया, 'देखो भाई, हमारे स्वर्गीय साम्राज्य में किसी भी बात की कमी नहीं है, पर तुम बहुत दूर से आए हो, अनेक कष्ट सहकर—अच्छा जाओ, कैंटन बन्दर से व्यवसाय करो। जगह दी जाती है, तुम लोगों का भला होगा।'

राजा का आशीर्वाद निष्फल नहीं हुआ, भला ही हुआ। पचास वर्ष भी नहीं बीत पाए और चीन के साथ ब्रिटेन की लड़ाई ठन गई।"

भारती ने आश्चर्य से पूछा, "क्यों दादा ?"

डॉक्टर ने कहा, "चीन का दोष था। बेअदब कह बैठा, 'अफीम खा-खाके हमारी आँखें मिची जा रही हैं। बुद्धि बिगड़ रही है। कृपा करके इन चीज़ की आमद बन्द कर दो।' "

"उसके बाद ?"

"बहुत थोड़ा-सा है बाद का इतिहास। दो साल बाद चीन फिर अफीम खाने को राज़ी हो गया। उसे और भी पाँच बन्दरों में पाँच फौजदी टैक्स पर वाणिज्य करने देने की स्वीकृति देनी पड़ी और अन्त में हांगकांग बन्दर दक्षिणा में देकर सन् अठारह सौ बयालीस में यज्ञ पूरा करना पड़ा। ठीक ही हुआ, जो मूर्ख इतनी सस्ती अफीम पाकर भी लेने में उज्र करता है उसके लिए यह प्रायश्चित्त उचित ही तो था !"

भारती ने कहा, "यह सब तुम्हारी बनायी हुई कहानी है।"

डॉक्टर ने कहा, "होने दो, मगर सुनने में तो अच्छी है !—और यह देखकर फ्रांसीसी सभ्यता ने कहा, 'मेरे पास अफीम तो नहीं है, पर आदमी मारने की मशीनें बहुत बढ़िया हैं।' लिहाज़ा युद्ध हुआ। फ्रांसीसियों ने चीन साम्राज्य का अनाम प्रान्त छीन लिया और युद्ध का व्यय, अधिक-से-अधिक वाणिज्य की सुविधाएँ ट्रीटीपोर्ट आदि ऊपर, पर ये सब तुच्छ कहानियाँ हैं, रहने दो।"

भारती ने कहा, "हो सकता है। पर समस्या यह है कि योरोपीय सभ्यता का अन्याय दूसरों के घर पर चढ़ाई करने के लिए ही जाग्रत् होता है, और वह अन्याय वहाँ ही दीखता है, अपने देश में नहीं दीखता। फिर क्या हुआ ?"

"बताता हूँ। जर्मन सभ्यता ने देखा कि वाह जी वाह, यह तो बड़ा अच्छा है, हम तो यों ही रह जाते हैं। उन लोगों ने भी एक जहाज़ में मिशनरियों को भरकर उनके पीछे लगा दिया। सतानवे की साल में जब ईसामसीह की महिमा, शान्ति और न्याय-धर्म का प्रचार कर रहे थे, तब कुछ मूर्ख चीनी . हो उठे और दो बड़े धार्मिक प्रचारकों का सिर काटकर अलग कर दिया। अन्याय हुआ। चीन का ही अन्याय था, इसलिए शानटुंग प्रान्त जर्मनी के पेट में पहुँच गया। उसके बाद बक्सर के विद्रोह की पारी आई। योरोप

षड्यन्त्र की आग में तो मेरा दम घुटने लगता है।"

सव्यसाची ने हँसकर कहा, "अच्छा !"

भारती उसी प्रकार व्यग्र हो कहने लगी, "एक 'अच्छा' कह देने के अलावा और क्या तुम्हारे पास कुछ कहने को है ही नहीं दादा ?"

"लेकिन हम लोग तो आ पहुँचे भारती, जरा होशियारी से बैठना। चोट न लग जाए कहीं।" कहकर डॉक्टर ने हाथ के डाँड़ से एक जोर का धक्का देकर नाव को घुमाकर किनारे पर लगा दिया। फिर झटपट भारती का हाथ पकड़कर उतारते हुए कहा, "पानी-कीचड़ नहीं है बहन, तख्ता बिछा हुआ है, उतर जाओ।"

अँधेरे में अजान धरती पर एकाएक पैर रखते हुए भारती को दुविधा-सी होने लगी, पर पैर रखकर उसने तृप्ति की साँस लेते हुए कहा, "दादा, तुम्हारे साथ आत्मसमर्पण करने के बराबर निर्विघ्न शान्ति और कहीं नहीं ...।"

उसका कोई उत्तर नहीं आया।

अँधेरे में कुछ दूर आगे जाने पर डॉक्टर ने कहा, "लेकिन बात क्या है, समझ में नहीं आती। यह क्या कोई ब्याह के लक्षण हैं ? न रोशनी का प्रबन्ध है, न कोई शोरगुल—बेहाले का सुर भी नहीं—ये लोग कहीं चले गये क्या ?"

कुछ दूर आगे चलने पर सीढ़ी के ऊपर की वह चित्र-विचित्र कागज की लालटेन दिखाई दी।

भारती ने कुछ सन्तोष के साथ कहा, "वह रही चीनी लालटेन। अभी से शशि बाबू की यह किफायत सारी देखने योग्य है दादा !" यह कहकर वह हँसने लगी।

दोनों दबे पाँव सीढ़ी से ऊपर पहुँचे। सामने ही खुले दरवाजे से दिखाई दिया, बड़े ध्यान से कोई चिट्ठी-सी पढ़ रहा है।

भारती आनन्द से शोर मचाती हुई बोली, "शशि बाबू, हम लोग आ गए—खिलाने-पिलाने का प्रबन्ध कीजिए। नवतारा कहाँ है ?"—उसने उत्साह से पुकारा, "नवतारा ! नवतारा !"

शशि ने मुँह उठाकर देखा और कहा, "आइए। नवतारा यहाँ नहीं है।"

डॉक्टर ने मुस्कराते हुए कहा, "गृहिणी-शून्य गृह कैसे कवि ? बुलाओ उन्हें, हम लोगों को स्वागत के साथ खाना खिलाया जाय, नहीं तो यहीं खड़े रहेंगे—खायेंगे भी नहीं !"

शशि ने उदास चेहरे से कहा, "नवतारा यहाँ नहीं है डॉक्टर, वे लोग सब घूमने गये हैं।"

सहसा उसका चेहरा देखकर भारती ने डरते हुए पूछा, "कहाँ घूमने चली गई ? आज के दिन भी ? बड़ी अनोखी सूझ है !"

शशि ने कहा, "ब्याह के बाद दोनों-के-दोनों रंगून सैर करने गये हैं।—ना-ना, मेरे साथ ब्याह नहीं हुआ—वह एक अहमद है न—गोरा-गोरा-सा खूबसूरत-सा छोकरा—कुट साहब की मिल में टाइमकीपर का काम करता है—देखा नहीं आपने उसे ? आज दोपहर को उसी के साथ नवतारा का ब्याह हो गया। सबकुछ पहले से ठीक था।"

दोनों आगन्तुक मारे आश्चर्य के आँखें फाड़कर देखते रह गये। डॉक्टर ने कहा, "तुम कहते क्या हो शशि ?"

शशि उठकर कमरे के एक छिपे हुए स्थान से कपड़े की थैली उठा लाया और उसे डॉक्टर के पैरों के पास रखता हुआ बोला, "रुपये मिल गये डॉक्टर, नवतारा को पाँच हजार देने के लिए कहा था, वह दे दिये। बाकी बचे है साढ़े चार हजार, उनमें से पाँच सौ रुपये मैंने ले लिए हैं लेकिन ।"

डॉक्टर ने कहा, "ये रुपये क्या मुझे दे रहे हो ?"

शशि ने कहा, "हाँ। मुझे अब क्या जरूरत है इनकी ? आप ले लीजिए, काम आ जायेंगे।"

भारती ने पूछा, "लेकिन उसे रुपये कब दे दिये ?"

शशि ने कहा, "कल रुपये मिलते ही उसे दे आया।"

'ले लिये ?"

शशि ने सिर हिलाकर कहा, "हाँ, अहमद तो कुल तीस रुपये महीने ही को पाता है। नवतारा एक मकान खरीदेगी।"

"अवश्य खरीदेगी।" कहकर डॉक्टर ने भारती की ओर मुड़कर देखा,

आँखों पर आँचल रखे वह बरामदे की तरफ हटी जा रही है।

शशि ने कहा, "सभानेत्री ने आपसे एक बार मिलने को कहा है। वे सुरबाया जा रही हैं।"

डॉक्टर ने फिर भी आश्चर्य नहीं दिखाया, "कब जायेंगी?"

शशि ने कहा, "कहती तो हैं, जल्दी ही जायेंगी। उन्हें कोई आदमी ले आया है।"

तभी भारती ने आकर पूछा, "सुमित्रा दीदी क्या सचमुच ही चली जाने को कहती थीं शशि बाबू?"

शशि ने कहा, "हाँ, उनकी माँ के चाचा के पास बहुत रुपया था, हाल में ही वे मरे हैं—इनके सिवा और कोई उत्तराधिकारी नहीं है। बिना गये काम नहीं बनेगा।"

डॉक्टर ने कहा, "तब वह अवश्य जायेंगी ही।"

शशि भारती के मुँह की ओर देखकर बोला, "बहुत-सा सामान रखा है, खाइएगा कुछ?"

भारती के इन्कार करने के पहले ही डॉक्टर आग्रह के साथ कह उठे, "जरूर-जरूर—चलो, क्या-क्या है देखूँ?" कहते हुए वे शशि का हाथ पकड़कर एक प्रकार से जबर्दस्ती ही उसे खींचकर रसोईघर की ओर ले गये।

शशि ने जाते-जाते धीरे से कहा, "एक और सूचना है डॉक्टर, अपूर्व बाबू लौट आये हैं।"

डॉक्टर ने मारे आश्चर्य के ठिठककर कहा, "क्या कहते हो तुम, किसने कहा तुमसे?"

शशि ने कहा, "कल उनसे बंगाल बैंक में एकदम सामना हो गया। उनकी माँ बहुत बीमार है। चलिए, बताता हूँ सब।"

२४

शशि ने झूठ नहीं कहा था। वास्तव में अन्दर खाने की सामग्री से

 भाग एकदम ठसाठस भरा हुआ है। छोटी-बड़ी देगचियाँ,

प्लेट, कागज के डोंगे, मिट्टी के बर्तन—सब खाने की चीजों से भरे पड़े हैं। तरह-तरह की चीजें बनाकर दुकानदार और होटल वालों ने अपनी रुचि और मर्जी के माफिक उस पार से इस पार भेज-भेजकर ढेर लगा दिया है—कोई बात की कमी नहीं—सिर्फ कमी है तो एक खाने वाले की।

डॉक्टर कुछ देर तक देख-भालकर एकाएक मारे खुशी से चिल्ला उठे, "वाह-वाह ! भेंट ! क्या बात है ! शशि कैसा प्रवन्धक है ! देखा भारती ? कौन क्या खायेगा, क्या न खायेगा, सब सोच-समझकर प्रवन्ध किया है ! बहुत अच्छे रहे, वाह !"

दूसरी ओर देखती रही भारती और शशि ने जरा हँसने की व्यर्थ चेष्टा की। किसी तरफ से कोई उत्तर न पाकर डॉक्टर की प्रसन्नता अचानक अट्टहास में फट पड़ी, "हः हः ह. ! गृहस्थ का जय-जयकार हो ! शशि कवि ! हः हः हः हः !"

भारती से अब सहा नहीं गया। वह मुँह फेरकर सजल दृष्टि से देखती हुई बोली, "तुम्हारे मन में जरा भी दया-ममता नहीं दादा ? क्या कर रहे हो, बताओ तो ?"

"वाह ! जिनकी कृपा से आज इतनी बढ़िया-बढ़िया चीजें पेट भर के खाऊँगा—उनकी वाह-वाह न करूँ ?"

भारती अप्रसन्न होकर बरामदे में चली गई।

दो-एक मिनट बाद शशि जाकर उसे ले आया। भारती ने एक प्लेट में भोजन सजाकर डॉक्टर के आगे रखते हुए बनावटी क्रोध से कहा, "लो, अब दस-दस हाथ निकालकर खाओ राक्षस की तरह। आपकी हँसी तो बन्द हो। मुहल्ले के लोगों की नींद उचट गई होगी !"

डॉक्टर ने एक साँस लेकर कहा, "अहा ! कैसा स्वादिष्ट भोजन है। इनका तो स्वाद-गन्ध तक भूल गया था।"

भारती के हृदय में बात चुभ गई। उसे उस दिन रात की बात याद आ गई। सूखा भात और जली हुई तरकारी !

डॉक्टर खाने में जुटकर बोले, "कवि को नहीं परोसा भारती ?"

"परोस रही हूँ।" कहकर उसने दूसरी प्लेट सजाकर शशि के आगे रख दी और खुद डॉक्टर के सामने बैठ गई। बोली, "लेकिन सब खा लेना

पड़ेगा दादा, जूठा नहीं छोड़ने दूँगी।"

"ठीक है—लेकिन तुम नहीं खाओगी?"

"मैं? कोई भी स्त्री ये सब चीजें खा सकती है! दादा, तुम्हीं बताओ?"

"पर बनी तो ऐसी हैं जैसे अमृत!"

भारती ने कहा, "मैं इससे अच्छा अमृत बना-बनाकर तुम्हें नित्य खिला सकती हूँ दादा!"

डॉक्टर ने अपना बायाँ हाथ माथे से छुआते हुए कहा, "क्या किया जाय बहन, भाग्य की बात है। जिसको खिलाना चाहिए वह यह सब खाता नहीं, और जो खायेगा उसे एक दिन से ज्यादा दो दिन खिलाने की कोशिश करते ही तुम्हारी नामवरी से देश भर जाएगा! भगवान् का ऐसा ही अनोखा न्याय है!—क्यों कवि, ठीक है न?"

वह फिर खिलखिलाकर हँस पड़ा।

इस बार भारती स्वयं भी हँस पड़ी। शीघ्र ही अपने को सँभालकर लज्जित होकर बोली, "तुम्हारी शरारत के मारे हँसी आ ही जाती है, लेकिन यह तुम्हारा बड़ा अन्याय है। खूब पेट भरकर खा-पीकर क्या इसके बाद रुपयों की थैली भी ले जाओगे?"

डॉक्टर मुँह का कौर निगलते हुए बोले, "अवश्य-अवश्य—आगे तो चले गये नवतारा के मकान-खाते, बाकी के क्या अहमद-अब्दुला साहब की गाड़ी-जोड़ी के लिए छोड़ जाऊँगा? तमाशे को सर्वांगसुन्दर बनाने के लिए सलाह तो कोई बुरी नहीं दे रही भारती! क्यों शशि?

भारती ने कहा, "दादा, तुम्हें हँसी-मजाक करते पहले भी देखा है पर ऐसा सनकियों जैसा मजाक करते कभी नहीं देखा मैंने।"

भारती के मुँह की ओर देखकर सहसा उनसे कुछ कहा नहीं गया।

भारती ने फिर कहा, "नर-नारी का प्रेम क्या तुम्हारे समान सभी के लिए हँसी का विषय है भइया, जो ताश की हार-जीत के समान इसकी हार-जीत में हँसी करने के अलावा तुम्हें और कुछ नहीं सूझता? स्वाधीनता के सिवा आदमी के लिए दुनिया में और कोई बात दुःखी होने की है, इस बात को क्या कभी सोचोगे ही नहीं? देखो तो जरा शशि बाबू के चेहरे की तरफ, उनकी क्या दशा हो गयी है। अपूर्व बाबू जिस दिन चले गये थे, उस दिन

भी शायद तुम इसी प्रकार हँसे होंगे !"

"ना-ना, वह ठहरा···।"

भारती बीच में ही बोल उठी, "ना-ना क्यों कर रहे हो दादा ? शशि बाबू तुम्हारे प्रेम के पात्र हैं, तुम यही सोचकर खुश हो उठे हो कि नवतारा इन्हें भला मानस पाकर अपने फन्दे में फँसाकर बहुत दुःख देती, भविष्य के लिए इस दुःख से ये बच गये। मगर भविष्य ही क्या आदमी के लिए सब-कुछ है दादा, और आज का यह एक दिन जो व्यथा के भार से इनके सब भविष्य को लाँघ गया, वह कुछ नहीं ?—इस बात को तुम कैसे समझोगे, तुमने कभी किसी से प्यार जो नहीं किया !"

शशि बहुत ही झेंप-सा गया।

उसने किसी प्रकार कहना चाहा कि इसमें मेरा ही दोष है, मेरी ही भूल है, सांसारिक साधारण बुद्धि न होने से ही।

भारती व्यग्र स्वर से कह उठी, "शशि बाबू, शरमाने की क्या बात है ? ऐसी गलती क्या संसार में अकेले आपने ही की है ? आपसे सौ गुनी गलती क्या मैंने नहीं की ? और उसमें भी हजार गुनी गलती करने के कारण जो अभागिन चुपचाप इस देश को हमेशा के लिए छोड़ जाने को तैयार है, उसे क्या डॉक्टर नहीं पहचानते ?—नवतारा ने धोखा दिया है, ठीक है। फिर भी हम लोगों की वंचना का गीत गाकर ही तो संसार के आधे काव्य अमर हो गये हैं !"

आश्चर्य की दृष्टि से डॉक्टर ने उसकी ओर देखा, परन्तु भारती ने उसकी चिन्ता नहीं की। कहने लगी, "शशि बाबू, सांसारिक बुद्धि आपमें कम है, पर मुझमें नहीं थी। सुमित्रा दीदी की बुद्धि की तो तुलना ही नहीं हो सकती, फिर भी वह किसी के कुछ काम नहीं आई। वह तो केवल हार ही हुई दादा, तुम्हारी बुद्धि के आगे। जो चिरकाल से अजेय है—जिसके मार्ग को कभी कोई बाधा ही नहीं मिली, वह भी तुम्हारे पत्थर द्वार पर बार-बार पछाड़ खा-खाकर टुकड़े-टुकड़े हो गई—प्रवेश करने का उसे भी जरा-सा रास्ता नहीं मिला।"

इस अभियोग का उत्तर डॉक्टर ने नहीं दिया, सिर्फ उसके मुँह की तरफ देखकर जरा हँस दिया।

शशि पहले ही चुप बैठा था, अब उसने मुँह खोला। अचानक अत्यन्त गम्भीरता से कहने लगा, "आप यदि अप्रसन्न न हों तो एक बात कहूँ? कोई-कोई बड़ा सन्देह करते हैं कि आपके साथ किसी दिन भारती का ब्याह हो जायेगा।"

क्षण-भर के लिए चौंक-से गये डॉक्टर, फिर तुरन्त ही अपने को सँभालकर प्रसन्नता से कहने लगे, "तुम कहते क्या हो शशि, तुम्हारी वाणी पर फूल-चन्दन पड़ें, ऐसा सुदिन क्या कभी इस अभागे के भाग्य में आयेगा? यह तो स्वप्न के भी बाहर की बात है, कवि!"

शशि ने कहा, "मगर बहुत-से ऐसा ही सोचते हैं।"

डॉक्टर ने कहा, "हाय-हाय, बहुत-से न सोचकर यदि एक व्यक्ति ही गम्भीरता से ऐसा सोचता!"

भारती हँस दी।

डॉक्टर की ओर देखकर बोली, "अभागे का भाग्य तो एक ही पल-भर में बदल सकता है दादा! तुम यदि आज्ञा देकर कहो कि भारती, कल ही ब्याह करना होगा, तो सौगन्ध खाकर कहती हूँ, यह नहीं कहूँगी कि एक दिन ठहर जाओ।"

डॉक्टर ने कहा, "लेकिन अपूर्व बेचारा जो प्राणों का मोह छोड़कर लौट आया है, उसका क्या होगा?"

भारती ने कहा, "उनकी बहू देश में मौजूद है, उनके लिए तुम्हें दुश्चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। उनकी हृदय गति रुक नहीं जायेगी।"

डॉक्टर ने गम्भीर होकर कहा, "पर मुझसे ब्याह करने को राजी हो गई, तुम्हारा साहस तो कम नहीं है भारती!"

भारती ने कहा, "तुम्हारे हाथ पड़ूँगी, इसमें भय किस बात का?"

डॉक्टर ने शशि की ओर देखकर कहा, "सुन लो कवि, भविष्य में यदि करे, तो तुम्हें साक्षी देनी होगी।"

भारती ने कहा, "किसी को गवाही नहीं देनी पड़ेगी दादा, मैं तुम्हारे नाम से इतनी बड़ी शपथ करके कभी ना नहीं कर सकती। केवल तुम्हें स्वीकार होना चाहिए।"

डॉक्टर ने कहा, "अच्छा, देख लूँगा तब।"

"देख लेना," कहकर भारती हँस दी। बोली, "दादा, क्या मैं और क्या सुमित्रा—स्वर्ग के इन्द्रदेव भी अगर उर्वशी, मेनका, रम्भा को बुलाकर कहते कि उस युग के मुनि-ऋषियों के बदले तुम्हें इस युग के सव्यसाची की तपस्या भंग करनी होगी, तो मैं निश्चय से कहती हूँ दादा कि तुम्हें मुँह पर स्याही पोतकर वापस चले जाना पड़ता। रक्त-मास का हृदय जीता जा सकता है, पर पत्थर के साथ कहीं लड़ाई चल सकती है? पराधीनता की आग से जल-जलकर सारा हृदय तुम्हारा एकदम पत्थर जो हो रहा है।"

डॉक्टर मुस्करा दिये।

भारती की दोनों आँखें श्रद्धा और स्नेह से भर आईं, बोली, "इतना विश्वास न होता तो क्या दादा, इस प्रकार तुम्हें आत्मसमर्पण कर सकती थी? मैं तो नवतारा हूँ नहीं। मैं जानती हूँ, मुझसे बड़ी भारी गलती हो गई है—पर इस जीवन में उसके सुधार का कोई रास्ता ही नहीं। एक दिन के लिए भी जिसे मन में···।"

भारती की आँखों से आँसू ढल पड़े। शीघ्रता से उन्हें पोंछकर हँसने का प्रयत्न करती हुई बोली, "दादा, वापस चलने का क्या अभी तक समय नहीं हुआ? भाटा होने में अब कितनी देर है?"

डॉक्टर ने दीवार की घड़ी की ओर देखकर कहा, "अभी देर है बहन!" इसके बाद धीरे से दाहिना हाथ बढ़ाकर भारती के माथे पर रखते हुए कहा, "आश्चर्य है, इतनी दुर्दशा में भी भारत का यह अमूल्य रत्न अब तक नष्ट नहीं हुआ! जाने दो नवतारा को, हमारी भारती तो है। शशि, सारी पृथ्वी में इसकी जोड़ी नहीं मिलेगी। यहाँ हजारों सव्यसाचियों की भी मजाल नहीं कि तुच्छ अपूर्व की ओट करके खड़े हो जाएँ!—अच्छी बात है शशि, तुम्हारी शराब की बोतल कहाँ है?"

शशि प्रश्न सुनकर मानो कुछ लज्जित-सा हो गया, बोला, "खरीदी नहीं डॉक्टर! अब मैं नहीं पीऊँगा।"

भारती ने कहा, "तुम्हें स्मरण नहीं दादा, नवतारा ने इनसे शराब न पीने का वचन ले लिया है?"

शशि ने उसकी बात का समर्थन करते हुए कहा, "सचमुच नवतारा

डॉक्टर ने कहा, "इसे भी [illegible] की बात नहीं कह सकती, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का जिक्र ही नहीं कर रहा हूँ। [illegible] [illegible] नहीं है। पर शिक्षित परिवार के [illegible] को बिना माने भी नहीं रह सकता। यही तो वास्तविक बात है—यही तो भगवान् की दी हाथ की बनाई हुई सृष्टि है। शिक्षित होने के कारण क्या मुझे उसमें [illegible] कर सकता हूँ बहन? तुम्हारे सामने मेरे अपना कहने को कौन है?"

भारती ने [illegible] दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए कहा, "मगर तुम्हारी [illegible] का गीत [illegible] [illegible] भाई के मुँह से अच्छा नहीं लगेगा, दादा! तुम्हारी क्रान्ति का गीत, तुम्हारी गुप्त समिति का…।"

डॉक्टर ने बाधा देते हुए कहा, "ना, मेरी गुप्त समिति का बोझ मुझ पर रहने दो बहन—उसका बोझ ढोने लायक और—ना-ना, रहने दो वह —वह केवल मेरे लिए है।" क्षण-भर में उन्होंने अपने को संभाल लिया। फिर बोले, "तुमसे तो मैं कह चुका हूँ भारती, क्रान्ति के मानी सिर्फ खून-खराबी ही नहीं है—क्रान्ति के मानी हैं अत्यन्त शीघ्रता से आमूल परिवर्तन —राजनीतिक नहीं वह मेरी है। कवि, तुम जी खोलकर सामाजिक क्रान्ति के गीत गाना शुरू कर दो। जो कुछ सनातन है, जो कुछ प्राचीन और जीर्ण है—धर्म, समाज, संस्कार—सब टूट-फूट के ध्वस्त हो जाय। और कुछ न हो सके, तो केवल इस महासत्य का ही प्रचार कर दो कि इस प्राचीनता के मोह से बढ़कर शत्रु भारत का और कुछ नहीं हो सकता। उसके बाद, देश की स्वाधीनता का बोझा मेरे ही सिर पर रहने दो—कौन है?"

शशि ने कान खड़े करके कहा, "सीढ़ियों पर किसी के आने की आहट-सी…।"

पलक मारते ही डॉक्टर जेब में हाथ डालकर जल्दी से दबे पाँव अँधेरे-भरे बरामदे में चले गए, परन्तु दूसरे ही क्षण आकर बोले, "भारती, सुमित्रा आ रही है।"

काम मत करना और सावधानी से रहना। जो लोग तुम्हें ले जाने के लिए आए हैं, वे परिचित आदमी तो हैं?"

सुमित्रा ने कहा, "हाँ, वे विश्वासी आदमी हैं। मैं उन सबको जानती हूँ।"

'ठीक है।' कहकर डॉक्टर मुँह फेरकर भारती के प्रति लक्ष्य करके कुछ कहना चाहते थे, इतने में सहसा शशि बोल उठा, "यह खूब रहा डॉक्टर, आपने जिन तीन महिलाओं को चुनकर लिया था उनमें से नवतारा चली ही गई, स्वयं सभानेत्री जाने को तैयार हैं, अब केवल भारती—।"

डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, "तुम्हें चिन्ता करने की जरूरत नहीं। कवि, यह एक प्रकार से तय ही समझो कि भारती भी सदस्यों का पद अलंकृत करेगी।"

भारती ने केवल कुछ कटाक्ष किया, पर उत्तर नहीं दिया।

डॉक्टर की हँसी दुःखभरी है, इस बात का अनुमान करके शशि ने कहा, "आपको शीघ्र ही चला जाना पड़ेगा। तब तो आपकी अधिकार-समिति की ऐक्टिविटी कम-से-कम बर्मा में तो समाप्त ही हुई समझो, इसे अब कौन चलाएगा?" कहकर शशि ने एक गहरी साँस ले ली। उसका यह दीर्घ निःश्वास वास्तव में दुःख से भरा था, मगर आश्चर्य है कि डॉक्टर के चेहरे पर इसका रत्ती-भर भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे उसी तरह हँसते हुए बोले, "क्या कह रहे हो कवि? इतने दिनों से इतना सब देखने-भालते हुए भी तुम्हारे मुँह से आज सव्यसाची के लिए यह सर्टीफिकेट! तीन महिलाएँ चली जाएँगी तो अधिकार-समिति ही समाप्त हो जाएगी? शराब छोड़कर क्या यही उन्नति की है? इससे तो अच्छा यह है कि तुम फिर से पीना शुरू कर दो।"

बात मजाक-सी लगी, पर असल में मजाक नहीं, यह भारती ठीक-ठीक नहीं समझ सकी।

उसने कनखियों से सुमित्रा की ओर देखा कि वह नीचे को दृष्टि किये बैठी है। तब उसने मुँह उठाकर डॉक्टर की ओर स्थिर दृष्टि से देखकर कहा, "दादा! समझने के लिए मुझे तो शराब की आवश्यकता नहीं, फिर भी तो मैं नहीं समझ सकी। नवतारा कुछ भी नहीं और मैं उससे

की चीज हूँ, पर सुमित्रा दीदी, जिनको तुमने स्वयं सभानेत्री का आसन दिया है—उनके चले जाने पर भी क्या तुम्हारी अधिकार-समिति को चोट नहीं पहुँचेगी? सच बताओ दादा, केवल किसी को लज्जित करने के लिए प्रसन्नता से ही मत कहना।"

उसने डॉक्टर के चेहरे पर से दृष्टि हटाकर सुमित्रा की ओर देखा और फिर तुरन्त ही दूसरी ओर दृष्टि कर ली। किसी से किसी की दृष्टि नहीं मिली—सुमित्रा जैसे नीचे को निगाह किये बैठी थी, उसी तरह चुपचाप मूर्ति की तरह स्थिर बैठी रही।

क्षण-भर मौन रहे डॉक्टर। फिर धीरे से बोले, "मैंने क्रोध में नहीं कहा भारती, सुमित्रा अवहेलना की चीज नहीं। तुम्हें शायद मालूम नहीं लेकिन स्वयं सुमित्रा अच्छी प्रकार जानती है कि इन कामों में हम लोगों को अपनी हानि की कोई गिनती ही नहीं करनी चाहिए। इसके सिवा जिनकी जान ऐसी अनिश्चित है, उनकी कीमत चीज से तय की जा सकती है? आदमी तो जाएगा ही, वह चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो, उसके अभाव को हम लोग पूर्णविराम न समझें। एक का स्थान दूसरा अनायास ही पूरा कर सकता है। यही है हमारी पहली शिक्षा।"

भारती ने कहा, "पर ऐसा संसार में वास्तव में होता नहीं। उदाहरण के लिए तुम्हीं को लिया जाय। तुम्हारा अभाव कोई किसी दिन पूरा कर सकता है, इस बात की तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकती दादा!"

डॉक्टर ने कहा, "तुम्हारी विचारधारा दूसरी ही है भारती, और जिस दिन मुझे धारा का पता लगा उसी दिन मैंने निश्चय कर लिया कि तुम्हें इस दिल में नहीं खींचना चाहिए। बार-बार यही सोचा है कि दुनिया में तुम्हारे लिए दूसरा काम है।"

भारती ने कहा, "और बार-बार मुझे यह मालूम हुआ है कि तुम मुझे अयोग्य समझकर दूर हटा देना चाहते हो। यदि मेरे लिए कहीं कोई दूसरा काम हो तो मैं उसी के लिए संसार में निकल पड़ूँगी।—पर मेरे प्रश्न का तो यह उत्तर नहीं हुआ दादा, बात बिलकुल तुच्छ ठहरी न? तुम्हारा अभाव पानी के सोत की तरह पूरा हो सकता है न? मैं जानती हूँ, नहीं हो सकता।"

उसने क्षण-भर मौन रहकर फिर कहा, "सिर्फ इसी बात को जानने के लिए मैं तुम्हें परेशान नहीं करती। पर जो नहीं है, जिसे तुम स्वयं नहीं समझते, उसी से मुझे क्यों बहलाना चाहते हो?"

डॉक्टर के उत्तर के लिए भारती ने प्रतीक्षा भी नहीं की। वह फिर बोली, "इस देश में अब तुम्हारा रहना नहीं हो सकता—तुम जाने के लिए कदम उठाये बैठे हुए भी हो। तुम्हें वापस पाना जितना अनिश्चित है, इस बात को सोचते दुःख होता है। इसी से मैं उसका सोच नहीं करती, फिर भी सत्य को प्रतिक्षण हृदयंगम किये बिना नहीं रहा जाता। इस दुःख की सीमा नहीं, मगर इससे भी बढ़कर मेरी व्यथा यह है कि तुम्हें पाकर भी नहीं पा सकी। आज मुझे कितने ही दिनों के कितने ही प्रश्न याद आ रहे हैं दादा, उन्हें जब कभी मैंने किया है तभी तुमने सत्य कहा है, झूठ कहा है, और सच-झूठ मिलाकर कहा है—पर किसी भी तरह सत्य नहीं जानने दिया। तुम्हारी अधिकार-समिति की सेक्रेटरी हूँ मैं, फिर भी यह बात मैंने एक दिन भी नहीं छिपाई कि तुम्हारी कार्य-पद्धति पर मेरी जरा भी श्रद्धा नहीं। तुम अप्रसन्न नहीं हुए, अविश्वास भी नहीं किया—हँसते हुए केवल बार-बार टाल देना ही चाहा है।—अपूर्व बाबू के जीवन-दान की बात मैं भूली नहीं हूँ। मालूम होता है, मेरे छोटे-से जीवन का कल्याण केवल तुम्हीं बता सकते हो दादा! जाते समय अब अपने को छिपाकर मत जाओ, उसे साफ-साफ ही प्रकट करते जाओ।"

इस विनय का अर्थ समझ में न आने के कारण शशि और सुमित्रा दोनों आश्चर्य से देखते रह गये, और उनकी उत्सुक आँखों की ओर देखकर भारती अपनी व्यग्रता से अचानक स्वयं ही लज्जित हो उठी। यह लज्जा डॉक्टर की दृष्टि से छिपी न रही।

उन्होंने हँसकर कहा, "सच, झूठ और सच-झूठ मिलाकर तो सभी कहते हैं भारती, इसमें मेरा विशेष दोष क्या है? इसके सिवा लज्जित यदि किसी को होना चाहिए, तो मुझे होना चाहिए था।"

भारती सिर झुकाये चुपचाप बैठी रही।

सुमित्रा ने जैसे उसका जवाब देते हुए कहा, "लज्जा अगर तुम्हारे में हो ही नहीं तो डॉक्टर? और स्त्रियाँ तो सच बात भी मुँह पर कहते हुए

जाती है। कोई-कोई तो कह ही नहीं सकती।"

यह बात किसके लिए और क्यों कही गई, यह किसी से छिपा नहीं रहा। परन्तु जिस श्रद्धा और सम्मान के वे अधिकारी थे, उसी ने सबको निरुत्तर कर रखा। दो-तीन मिनट इसी तरह सन्नाटे में बीत गये।

डॉक्टर ने भारती को लक्ष्य करके कहा, "भारती, सुमित्रा ने कहा है कि मेरे लज्जा नहीं है, और तुमने दोष लगाया कि मैं सुविधानुसार सच और झूठ दोनों कहा करता हूँ। आज भी वैसी ही कोई बात कहकर मैं इस प्रसंग को समाप्त कर सकता था, अगर इसके साथ मेरे चलने के अधिकार का सम्बन्ध होता। इसकी भलाई-बुराई से ही मेरा सच-झूठ निर्धारित होता है। यही मेरा नीति-शास्त्र है और यही मेरी निश्छल मूर्ति है।"

भारती दंग रह गई। बोली, "कहते क्या हो दादा, यही तुम्हारी नीति है, यही तुम्हारी निष्कपट मूर्ति है?"

सुमित्रा ने कहा "हाँ, ठीक यही है। यही इनका यथार्थ स्वरूप है। दया नहीं, ममता नहीं, धर्म नहीं—इस पत्थर-मूर्ति को मैं पहचानती हूँ भारती!"

उसकी बात पर भारती ने विश्वास न किया हो, ऐसी बात नहीं, पर वह सुनकर दंग रह गई।

डॉक्टर ने कहा, "तुम लोग कहा करती हो, चरम सत्य, परम सत्य, और ये अर्थहीन निष्फल शब्द तुम लोगों के लिए बड़े मूल्यवान हैं। मूर्खों को बहकाने के लिए इतना बड़ा जादू-मन्त्र दूसरा नहीं। तुम लोग सोचती हो कि मिथ्या को ही बनना पड़ता है, सत्य शाश्वत, सनातन और अमर है। पर यह बात झूठी है। मिथ्या की तरह सत्य को भी मानव-जाति दिन-रात बनाया करती है। शाश्वत सनातन नहीं है यह—जन्म और मृत्यु दोनों हैं इसके। मैं झूठ नहीं कहता—मैं कारण से ही सत्य की पुष्टि करता हूँ।"

यह हँसी नहीं—सव्यसाची के हृदय की बात है। भारती फक पड़ गई।

उसने अस्फुट स्वर में पूछा, "दादा, क्या यही तुम्हारी अधिकार-समिति की नीति है?"

डॉक्टर ने उत्तर दिया, "भारती, अधिकार-समिति मेरे तर्क-शास्त्र की

पाठशाला नहीं है—वह मेरा मार्ग चलने के अधिकार का बल है। न जाने कौन, कब, किस अनजान प्रयोजन से नीति-वाक्य रचा गया। अधिकार-समिति के लिए वे तो हो जायेंगे सत्य, और जिनकी गर्दन फाँसी की रस्सी से बँधी है, उनके हृदय का वाक्य हो जायेगा झूठ? तुम्हारा परम सत्य क्या है, मैं नहीं जानता, परन्तु परम मिथ्या यदि कुछ हो तो वह यही है।"

सुमित्रा की दृष्टि उत्तेजना से तीव्र हो उठी, परन्तु इस भयानक बात को सुनकर भारती आशंका और संशय से एकदम अभिभूत हो गई।

"कवि!"

"जी?"

"शशि की भक्ति देखी?" कहकर डॉक्टर हँस दिए, पर हँसी में और कोई शामिल नहीं हुआ।

डॉक्टर ने दीवार की ओर देखकर कहा, "ज्वार समाप्त होने में अब देर नहीं है। मेरे जाने का समय हो गया। तुम्हारे तारहीन शशि-तारा लॉज में आने का अब मुझे समय नहीं मिलेगा।"

शशि ने कहा, "कल ही मैं इस घर को छोड़ दूँगा।"

"कहाँ जाओगे?"

शशि ने कहा, "आपकी आज्ञानुसार भारती के पास जाकर रहूँगा।"

डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, 'देखा भारती, शशि मेरी आज्ञा नहीं टालता। उस मकान का नाम क्या रखोगे शशि?—शशि-भारती लॉज! तीन बार धोखा खाते तो मैंने ही उसे देखा है, पर अब की बार शायद सफलता मिल जाय। भारती बहुत अच्छी है, इसमें दया-ममता भी है।"

इतने दुःख में भी भारती हँस दी। सुमित्रा ने मुस्कराते हुए सिर झुका लिया।

डॉक्टर ने कहा, "लेकिन तुम्हारी रुपयों की थैली मैं साथ लिये जाता हूँ। भारती के पास छोड़ जाऊँगा, वह भी एक मकान मोल लेगी।"

भारती ने कहा, "दादा, जख्म पर नमक छिड़कना क्या तुम्हारा बन्द नहीं होगा?"

शशि ने कहा, "रुपये आप ले लीजिये डॉक्टर, मैंने आपको दे दिये। ...रे देश का घर-द्वार, सर्वस्व बेचकर आये हुए रुपये देश ही के काम में लगने

दीजिये।"

डॉक्टर हँस दिये, पर उनकी आँखों में आँसू भर आये। बोले, "रुपये मेरे पास हैं शशि, उनकी अभी मुझे आवश्यकता नहीं। इसके सिवाय अब शायद रुपयों की कमी न रहेगी।" इतना कहकर वह सुमित्रा की ओर देखने लगे।

सुमित्रा की दोनों आँखों से कृतज्ञता मानो चमक उठी। मुँह से उसने कुछ भी नहीं कहा, परन्तु उसके सर्वांग से मानो यही बात फूटकर निकलने लगी कि सब तुम्हारा ही तो है, पर उसे क्या तुम छुओगे!

डॉक्टर उधर से दृष्टि हटाकर कुछ देर तक मौन रहने के बाद बोले, "शशि!"

"कहिए?"

"ब्राह्मण-भोजन जरा पेशगी ही कर लिया, इसके लिए तुम दुःखी मत होना शशि, कारण शुभ लग्न जब सचमुच ही आ पहुँचेगा तब दुबारा शायद मुझे अवकाश नहीं मिलेगा। पर वह दिन अवश्य आयेगा। नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन करने के बाद मैं तुम्हें वर देता हूँ। तुम सुखी होओ। तुम कवि हो, तुम देश के एक महान् कलाकार हो—और इस बात को कभी भूलना मत कि राजनीति से तुम बड़े हो।"

शशि ने व्यथित होकर कहा, "जिसमें आप हैं, उसमें मेरे रहने से दोष होता!—तो मैं क्या आपसे बड़ा हूँ?"

डॉक्टर ने कहा, "बड़े तो हो ही। तुम्हारा परिचय ही तो जाति का सच्चा परिचय है। तुम लोगों को छोड़ देने से उसका वजन किस चीज से किया जायेगा? आखिर किसी-न-किसी दिन इस देश की स्वाधीनता-पराधीनता की समस्या का समाधान तो होही जायगा—इस देश के दुःख-दारिद्र्य की कहानी का मूल्य उस दिन एक जनश्रुति से अधिक नहीं मिलेगा। परन्तु तुम्हारे काम का मूल्य कौन आँक सकेगा? तुम्हीं तो देश की सब टूटी धाराओं को एक सूत्र में गूँथ जाओगे!"

सुमित्रा मुस्कराती हुई बोली, "अब गूँथेंगे सो ये ही जानें, पर तुम बातें गूँथ-गूँथकर अभी से जो इनका मूल्य बढ़ाते जा रहे हो, उसे भारती सँभालेगी कैसे?"

सब हँस दिये।

डॉक्टर ने कहा, "शशि होगा हम लोगों का राष्ट्रीय कवि। न हिन्दुओं का, न मुसलमानों का, न ईसाइयों का, केवल हमारे भारत का कवि होगा। सहस्र नद-नदी प्रवाहित हमारा भारतवर्ष, हमारी सुजला, सुफला, शस्य-श्यामला, खेतों मे हरी-भरी मातृभूमि, जिसमें झूठे रोगों का दुःख नहीं, झूठे दुर्भिक्ष की भूख नहीं, विदेशी शासन के दुस्सह अपमान की ज्वाला नहीं, मनुष्यत्व की हीनता का लांछन नहीं—तुम होगे शशि भाई, उसी के चारण कवि।"

भारती के सारे शरीर में रोमांच हो उठा।

शशि भ्रातृ-सम्बोधन के माधुर्य से विचलित होकर कहने लगा, "डॉक्टर, कोशिश करूँ तो मैं अंग्रेजी में भी कविता लिख सकता हूँ। यहाँ तक कि ।"

डॉक्टर ने रोकते हुए कहा, "ना-ना, अंग्रेजी मे नहीं, अंग्रेजी में नहीं—भारती की अपनी भाषा में, अपनी मातृभाषा में। शशि, संसार की सभी भाषाएँ मेरी जानी हुई हैं, परन्तु सहस्र दलों में विकसित ऐसी मधु से भरी भाषा और कोई नहीं। मैं प्राय. सोचा करता हूँ भारती, ऐसा अमृत इस देश में कब कौन लाया था?"

भारती की आँखों मे आँसू भर आये।

उसने कहा, "और मैं सोचा करती हूँ दादा, देश से इतना प्रेम करना तुम्हें किसने सिखाया था? मानो कहीं भी उसकी कोई सीमा ही नहीं!"

शशि कहने लगा, "उस विगत गौरव का गान ही मेरा गान होगा, यह प्रेम का स्वर ही मेरा स्वर होगा। अब से मैं यही शिक्षा देता फिरूँगा कि अपने देश को, अपनी जन्मभूमि को फिर से लोग उसी प्रकार चाहने लगें और उसका मान करने लगें।"

क्षण-भर शशि की तरफ डॉक्टर ने आश्चर्य-भरी दृष्टि से देखा। फिर सुमित्रा की तरफ देखा, और अन्त में दोनों हँस दिये। पर इस हँसी का मर्म और दो जने न समझ सके और इस कारण दोनों के दोनों झेंप से गए।

डॉक्टर ने कहा, "फिर उसी प्रकार क्या चाहने लगेंगे? तुमने जिस प्रेम का संकेत किया है शशि, वैसा प्रेम भारतीयों ने अपने देश से कभी

नहीं किया। उस प्रेम का जरा भी अंश होता, तो क्या हमारे भारतीय भाई विदेशियों के साथ षड्यन्त्र रचकर अपने तैंतीस करोड़ भाई-बहनों को हँसते-खेलते दूसरों के हाथ सौंप देते? 'जननी जन्मभूमि' केवल कहने-भर को ही है। मुसलमान बादशाह के पैरों तले अंजलि देने के लिए हिन्दू मानसिंह, हिन्दू प्रतापादित्य को जानवर के समान बाँधके ले गया था और उन्हें रसद जुटाकर यहाँ रास्ता दिखाते हुए लाये थे बंगाली। जब मराठों की फौजें देश लूटने आतीं, तो हम लोग युद्ध न करके सिर पर हँड़िया रख-कर पानी में छिप जाते थे। मुसलमान डाकू मन्दिर ध्वंस करके देवताओं के नाक-कान काट ले जाते थे और यहाँ वाले भागकर जान बचाते फिरते—धर्म के लिए भी गर्दन नहीं देते थे। वे भारतीय हमारे कोई नहीं होते थे! गौरव करने योग्य उनमें कुछ भी नहीं था। हम लोग उनकी बिलकुल उपेक्षा करते हुए चलेंगे—उनका अनुशासन, उनकी कायरता, उनकी देश-द्रोहिता, उनकी सामाजिक रीति-नीति—उनका जो कुछ है, सब उपेक्षणीय है। वही तो होगा तुम्हारा क्रान्ति-गीत, वही तो होगा तुम्हारा सच्चा देश-प्रेम।"

शशि विमूढ़ की भाँति देखता रह गया।

इन बातों का मर्म ग्रहण नहीं कर सका।

डॉक्टर कहने लगे, "उनके पौरुष से हम लोग संसार की दृष्टि में नीचे हो रहे हैं, उनकी स्वार्थपरता के भार से दबे हुए संकट में पड़े हैं—पशु हो रहे हैं—केवल क्या देश की ही बात है? जिस धर्म को वे स्वयं नहीं मानते थे, जिन देवताओं पर उनकी निज की श्रद्धा नहीं थी, उन्हीं की दुहाई देकर समस्त जाति को आपाद-मस्तक युक्तिहीन विधि-निषेधों से हमारे जीवन डालकर क्या नहीं बाँध गये हैं? यह पराधीनता से अनेक गुना बढ़कर है।"

शशि ने धीरे से कहा, "यह सब आप क्या कह रहे हैं?"

भारती के दुःख की सीमा न रही। बोली, "दादा, यद्यपि वे [illegible] फिर भी वे मेरे भी पूर्व-पुरुष हैं। उनमें और चाहे जो भी दोष रहा हो, उनके धर्म-विश्वास में प्रवंचना थी, ऐसी बात [illegible]

सुमित्रा मुस्करा [illegible]

हुई। तुम अपने मार्ग पर ही चलो। स्नेह की योजनाएँ, करुणा की संस्थाएँ दुनिया में बहुत मिल जाएँगी। मिलेगी नहीं केवल एक अधिकार-समिति, मिलेगी नहीं केवल···।"

डॉक्टर की आँखों की दृष्टि क्षण-भर में जलकर बुझ-सी गई। स्वर स्थिर-गम्भीर था। भारती और सुमित्रा दोनों ही समझ गईं कि सव्यसाची की यह शान्त मुखश्री, यह संयत अचंचल भाषा ही सबसे ज्यादा भीषण है।

उन्होंने मुँह उठाकर कहा, "तुमसे तो कई बार कह चुका हूँ भारती कि कल्याण मेरी इच्छा की चीज नहीं है। मैं चाहता हूँ स्वाधीनता। राणा प्रताप ने जब चित्तौड़ को जनहीन वन में बदल दिया था तब सारे राजपूताने में उससे बढ़कर अकल्याण-मूर्ति और कोई प्रदेश न था—उसे आज कितनी शताब्दियाँ हो गईं, फिर भी वह अकल्याण ही आज तक सहस्र कल्याणों से बड़ा बना हुआ है। इन व्यर्थ के तर्कों को रहने दो।—जो मेरा व्रत है, उसके आगे कोई भी बात मेरे लिए झूठ नहीं—कुछ भी नहीं।"

भारती चुप बैठी रही।

विवाद और मतभेद तो पहले भी बहुत बार हो चुका है, पर इस प्रकार नहीं हुआ। आज उसका मन दुःख से भर गया, जैसे ऊपर कोई बोझ-सा लद गया हो।

डॉक्टर ने पहले घड़ी की तरफ, फिर भारती के चेहरे की तरफ देखा, उसके बाद अपनी स्वाभाविक कोमल हँसी हँसते हुए कहा, "उधर नदी में फिर ज्वार आने का समय हो आया भारती, चलो उठो।"

भारती खड़ी होकर बोली, "चलो।"

डॉक्टर खाने की पोटली हाथ में लेकर उठ खड़े हुए, बोले, "सुमित्रा, ब्रजेन्द्र कहाँ है?"

सुमित्रा ने कोई जवाब नहीं दिया, वह नीचे को दृष्टि किए चुपचाप बैठी रही।

"तुम्हें पहुँचा दूँ?"

सुमित्रा ने गर्दन हिलाकर कहा, "ना।"

डॉक्टर फिर अपने को रोककर इतना ही बोले, "ठीक," फिर भारती

गे बोले, "अच्छा, अब देर मत करो बहन, चलो।" वे शीघ्र ही बाहर चल दिए।

सुमित्रा नीचे को दृष्टि किये बैठी रही।

भारती उसे चुपके से नमस्कार करके डॉक्टर के पीछे-पीछे चल दी।

२६

भारती नाव पर मंत्रवत् आकर बैठ गई और रास्ते-भर चुपचाप स्तब्ध ही बैठी रही।

रात काफी हो चुकी थी, शायद तीसरा पहर होगा।

आकाश के असंख्य तारों के प्रकाश से पृथ्वी का अँधकार स्वच्छ हुआ जा रहा था। उस पार घाट के आगे नाव जा लगी।

डॉक्टर ने हाथ पकड़कर भारती को उतारकर स्वयं उतरना चाहा, पर भारती ने उन्हें रोकते हुए कहा, "मुझे पहुँचाने की आवश्यकता नहीं दादा, मैं स्वयं ही चली जाऊँगी।"

"अकेली डरोगी तो नहीं?"

"नहीं, पर इसके लिए तुम्हें चलने की जरूरत नहीं।"

सव्यसाची ने कहा, "पास ही तो है, चलो न, तुम्हें झट से पहुँचा आऊँ बहन!"

उन्होंने नीचे सीढ़ी पर पैर बढ़ाया ही था कि भारती ने हाथ जोड़कर कहा, "दादा, क्षमा करो, तुम मेरे साथ चलकर डर को हजार गुना मत बढ़ाओ, जाओ।"

वास्तव में उनका साथ जाना बहुत ही भयानक था, इसमें कोई संदेह नहीं इसलिए भी उन्होंने हठ नहीं की।

भारती के चले जाने पर वे बहुत देर तक उस ओर खड़े-खड़े देखते रहे।

भारती ने घर आकर दरवाजे का ताला खोलकर भीतर प्रवेश किया। बत्ती जलाकर चारों तरफ अच्छी तरह देखा-भाला और किसी तरह बिछौर

बिछाकर पड़ी रही।

शरीर बिल्कुल थक गया था, मन दुःखी था और आँखें मिची जा रही
थी, मगर फिर भी नींद नहीं आई। घूम-फिरकर सव्यसाची की वही बा
बार-बार उसके दिमाग में चक्कर काटने लगी कि इस क्षणिक परिवर्तनशी
संसार में सत्य नाम की कोई नित्य वस्तु है ही नहीं। उसका जन्म है, मर
है—युग-युग में मनुष्य की आवश्यकता के अनुसार सत्य को नया रूप धार
करके आना पड़ता है। यह विश्वास भ्रांति है—यह धारणा कुसंस्कार
कि भूत में जो सत्य था उसको वर्तमान में भी स्वीकार करना ही पड़ेगा।

भारती सोचने लगी—भारत की स्वाधीनता की आवश्यकता पर न
सत्य की सृष्टि करना ही भारतीयों के लिए सबसे बड़ा सत्य है। इसक
तात्पर्य यह है कि इसके आगे कोई पथ दुर्लभ नहीं, कोई उपाय या को
भी अभिसन्धि हेय नहीं। यह जो कारखाने के कुली-मजदूरों को अच्छे रास्
पर लाने का उद्यम है, यह जो उनकी सन्तान को शिक्षा देने का आयोज
है, यह जो उनके लिए रात्रि-पाठशालाएँ हैं—इस बात को स्वीकार क
लेने में सव्यसाची को दुविधा—कोई लज्जा नहीं हुई कि इन सबका लक्ष
और ही कुछ है।—पराधीन देश की मुक्ति-यात्रा में रास्ते का परहेज कैसा
एक दिन सव्यसाची ने कहा था, पराधीन देश के शासकों और शासितों क
नैतिक बुद्धि जब एक-सी हो जाती है तो उससे बढ़कर देश का दुर्भाग्य औ
कुछ नहीं होता। उस दिन इस बात का मतलब वह नहीं समझ सकी थी, व
आज उसके आगे स्पष्ट हो गया।

घड़ी में तीन बज गए।

उसके बाद कब उसे नींद आई, उसे याद नहीं। पर मालूम हुआ
वह निद्रा में बार-बार इस बात को दुहराने लगी : दादा, तुम अतिमानव हो
तुम पर मेरी भक्ति, श्रद्धा और स्नेह हमेशा ही अचल बने रहेंग
पर तुम्हारे इस विचार को मैं हरगिज ग्रहण नहीं कर सकती। भगवान् कर
तुम्हारे ही हाथ से वे देश को मुक्ति दें, अन्याय को कभी न्याय की मूर्ति
बनाकर खड़ा मत करना। तुम परम पण्डित हो, तुम्हारी बुद्धि की सीम
नहीं, वाद-विवाद में तुम्हें जीता नहीं जा सकता—तुम सबकुछ कर सकते
हो। विदेशियों के हाथ से पराधीनों को कितना लांछित होना पड़ता है,

ब्राह्मण ने कहा, "तो दोपहर को या शाम को आने के लिए कह दूँ
भारती ने कहा, "ना, मेरे पास समय नहीं है।" इतना कहकर
जल्दी से ऊपर चली गयी।

जब वह घण्टे-भर बाद नहा-धोकर तैयार होकर नीचे आयी,
लड़के-लड़कियों से कमरा भर गया था और विद्या पढ़ने की ललक से सा
रा-सारा मुहल्ला चचल हो उठा था।

पहले दोनों वक्त पाठशाला खुला करती थी, अब शिक्षकों की कमी
एक बार।

सुमित्रा है नहीं, डॉक्टर का पता नहीं, नवतारा अन्यत्र चली गयी है
केवल अपना घर होने से सवेरे का काम भारती अकेली ही चला लि
करती है।

नियमानुसार आज भी वह पढ़ाने बैठी, पर किसी भी तरह उसका
नहीं लगा। नया पाठ देने में और पिछला पाठ सुनने में आज उसे निष्फल
ही नहीं बल्कि आत्म-वंचना भी मालूम होने लगी।

फिर किसी प्रकार दो घण्टे बीत जाने के बाद जब पढ़ने वाले अपने
अपने घर चले गये, तब कहीं वह समझ सकी कि आज का दिन कैसे कटेगा
और अभी चिन्ताओं के बीच-बीच में आ-आकर बाधा पहुँचाने लगी अपूर्व
की चिन्ता। इस विषय में भारती को कोई सन्देह नहीं था कि उसके इ
प्रकार वापस करने में अशोभनता चाहे जितनी हो, पर उसे प्रश्रय देना बहु
बुरा है।—किसी भी बहाने से मिल करके वह पहले के अस्वाभावि
सम्बन्ध को और भी विकृत कर देना चाहता है, अन्यथा अगर माँ बीमा
है, तो वह यहाँ बैठकर क्या कर रहा है? माँ उसकी है, मेरी नहीं। माँ
भयानक बीमारी का समाचार पाकर पुत्र को उसके पास तुरन्त चला जाना
चाहिए, यह बात क्या दूसरे किसी से विचार करके निश्चित होती है? फि
उसे याद आया कि रोग से अपूर्व बहुत डरता है। उसका कोमल मन व्यथ
से व्याकुल होकर चाहे जितना क्यों न फड़फड़ाता रहे, पर रोगी-सेवा करने
की न तो उसमें शक्ति है और न कोई अनुभव। यह भार उस पर छोड़ने के
समान सर्वनाश और नहीं हो सकता। यह सबकुछ भारती को मालूम था
और वह यह भी जानती थी कि अपूर्व का माँ के प्रति बहुत मोह है। मगर

में ऐसा कोई काम नहीं जिसे वह माँ के लिए न कर सके। माँ के पास न जा सकने का दुःख अपूर्व के लिए जितना बड़ा है, इस बात का ध्यान करके भारती को करुणा आने लगी जबकि दूसरी ओर इस असह्य भीरुता के मारे क्रोध के उसका बदन भी जलने लगा।

भारती ने मन ही मन कहा, 'सेवा नहीं कर सकता तो बस इसलिए क्या बीमार माँ के पास जाकर बैठने में कोई भी लाभ नहीं? मुझसे क्या अपूर्व इसी उपदेश की आशा करता है?'

इसी दिशा में भारती की चिन्ता धारा बनकर बहती रही। माँ की बीमारी के विषय में अपूर्व और भी कुछ पूछ सकता है, इसके सिवा और भी कोई बात हो सकती है जिसने उसके पास आने का द्वार बन्द कर दिया हो—इन बातों का आभास तक उसके मन में नहीं आया।

भूख जरा भी नहीं थी, इसलिए भारती ने आज रसोई नहीं बनाई।

तीसरे पहर एक घोड़ा-गाड़ी आकर उसके दरवाजे पर खड़ी हो गयी।

भारती ने ऊपर के जंगले से झाँककर देखा तो आश्चर्य और आशंका से उसका दिल धड़क उठा। अपना कुल सामान लादे हुए और खुद गाड़ी की छत पर लदे हुए कवि शशि आ पहुँचे हैं।

कल रात के हँसी-मजाक को दुनिया में कोई भी आदमी इस प्रकार वास्तविकता में बदल सकता है, भारती शायद इसकी कल्पना भी नहीं कर सकती थी। पर शशि के लिए असम्भव कुछ भी नहीं। मजाक एकबारगी मूर्तिमान सत्य बनकर सशरीर दरवाजे पर आ पहुँचा है।

भारती जल्दी से नीचे उतर आई, बोली, "यह क्या शशि बाबू?"

शशि ने मन्द मुसकान के साथ उत्तर दिया, "मैंने घर छोड़ दिया।" और उसी समय गाड़ीवान को आज्ञा दी कि सब सामान ऊपर पहुँचा दो।

भारती ने क्रोध को दबाकर कहा, "शशि बाबू, ऊपर जगह कहाँ है?"

शशि ने कहा, "अच्छी बात है, तो नीचे ही रख देने दो।"

भारती ने कहा, "नीचे पाठशाला है, वहाँ भी कठिन है।"

शशि चिन्तित हो उठा।

भारती ने उसे भरोसा देकर कहा, "एक काम किया जाय शशि बाबू! होटल में डॉक्टर की कोठरी खाली है, आप वहीं ठीक से रह सकेंगे। खाने-

पीने का भी कष्ट न होगा—चलिए।"

"लेकिन कोठरी का किराया तो देना पड़ेगा?"

भारती हँस दी, बोली, "ना, वह नहीं देना पड़ेगा। डॉक्टर छह महीने का किराया दे गये हैं।"

शशि बेमन इसमें राजी हो गया। सारे सामान के साथ महाराजबर्मे के होटल में कवि को प्रतिष्ठित करके भारती जब वापस घर आई तब रात हो चुकी थी। आज सभी प्रकार से उसकी थकावट और चिन्ता की सीमा नहीं थी। कहीं शशि और कोई अन्य आकर उसकी निःसंग निस्तब्धता में विघ्न न डाल दे, इस आशंका से वह नीचे और ऊपर के सारे दरवाज़े-खिड़कियाँ बन्द करके अपने कमरे में जा लेटी।

दूसरे दिन आदत के अनुसार जब उसकी आँख खुली, तब न खाने की कमजोरी से उसका सारा शरीर ऐसा थका हुआ था कि उसे बिस्तर से उठने में भी कष्ट मालूम हुआ। प्यास के मारे छाती सूखकर मरुभूमि हो गयी थी, इस विषय में आलस करने से काम नहीं चलेगा।

यह कहना भारती के प्रति अन्याय करना है कि ईसाई होकर भी भारती खाने-पीने के सम्बन्ध में सचमुच बहुत परहेज रखती है। मालूम होता है कि वह अपने मन से सम्पूर्ण संस्कारों को निकाल भी नहीं सकी है। जिस व्यक्ति से उसकी माँ ने पुनर्विवाह किया था, वह अत्यन्त अनाचारी था। उसके साथ एक जगह बैठकर ही भारती को भोजन करना पड़ता था, फिर भी, कोई बासी चीज उसने कभी नहीं खाई। छुआछूत की विडम्बना उसमें नहीं थी, पर जहाँ-तहाँ बैठकर चाहे जिसके हाथ का खाने में भी उसे घृणा मालूम होती थी।

माँ की मृत्यु के बाद वह धर्म की दुहाई देकर बराबर अपने हाथ से बनाती-खाती आ रही है। केवल बीमार पड़ने पर या काम की भीड़ में अत्यन्त थक जाने या बिल्कुल समय ही न मिलने पर कभी-कभी महाराज के ... से वह साबूदाना या रोटी मँगा लिया करती है।

बिस्तर से उठकर हाथ-मुँह धोकर रोज की तरह वह रसोई बनाने के लिए तैयार हुई पर बदन में ताकत और इच्छा न होने से उसने होटल में ... रोटी और कुछ तरकारी दे जाने के लिए सूचना भिजवा दी।

सोमवार को पाठशाला बन्द रही है। आज यह परिश्रम उसे नहीं करना था।

काफी समय बाद दासी थाली हाथ में लिए आ पहुँची और अत्यन्त लज्जित होकर बोली, "बड़ी देर हो गई दीदी···!"

भारती ने अपनी थाली और कटोरी लाकर टेबल पर रख दी। हिन्दू होटल की शुद्धि को बचाते हुए दासी ने उसकी थाली में रोटी और तरकारी तथा कटोरी में दाल डालते हुए कहा, "लो बैठो, जितना बने खा-पी लो।"

एक बार भारती ने उसके मुँह की ओर देखा, पर कुछ कहा नहीं। दासी का वक्तव्य अभी समाप्त नहीं हुआ था। वह कहने लगी, "वहाँ से लौटी तो सुना कि तुम्हारी तबीयत खराब है। अकेली ही हूँ, इससे भड़भड़ा रही हूँ–ऐसा भी कोई नहीं जो दो रोटी बेल दे। अब देर मत करो, खाओ।"

भारती ने कोमल स्वर में कहा, "तुम जाओ, मैं बैठी खाती रहूँगी।"

दासी ने कहा, "जाती हूँ। नौकर तो साथ गया नहीं था, अकेले सबका-सब धोना-माँजना–खैर, लौटकर बीस रुपये मेरे हाथ में देकर बाबू रो दिये, बोले, 'दासी, आखिरी वक्त तुमने जितना किया उतना माँ की लड़की भी पास होती तो न कर सकती।' वे जितने रोने लगे, मैं भी उतना ही रोने लगी दीदी——हाय, कैसी-कैसी तकलीफें उठाई। परदेश-भूमि ठहरी, कोई अपना आदमी तो है नहीं यहाँ–समुन्दर का रास्ता, तार देते ही तो बहू-बेटे उसके आ नहीं सकते– उन लोगों का दोष भी क्या है?"

भारती का हृदय उद्वेग और अनजान आशंका से बर्फ-सा ठण्डा पड़ गया, पर मुँह से वह कोई बात पूछ नहीं सकी। चुपचाप मौन होकर उसके मुँह की ओर देखती रह गई।

दासी कहने लगी, "महाराजजी ने बुलाकर कहा, बाबू की माँ बहुत बीमार है, तुम्हें जाना होगा वहाँ। मैं 'न' नहीं कर सकी। एक तो निमोनिया जैसी बीमारी, उस पर धर्मशाला की भीड़, जंगले-किवाड़ सब टूटे हुए, एक भी बन्द नहीं होता था, कैसा कष्ट! शाम के पाँच बजे प्राण निकले पर देश के बाबुओं को खबर भेजते-भाजते, बुलाते-करते अरथी उठी रात के नौ-साढ़े बजे। काफी दिन चढ़ गया लौटते-लौटते–मुझको ही सब धोना-

रोकना पड़ा।"

अब उसकी समझ में सबकुछ आ गया।

उसने धीरे से पूछा, "अपूर्व बाबू की माँ मर गयी क्या ?"

दासी ने सिर हिलाकर कहा, "हाँ दीदी, जैसे उनकी बर्मा में पहले
ही जमीन ली हुई हो। एक कहावत है न, जिसकी जहाँ "। यह ठीक ही है
इधर अपूर्व बाबू रवाना हुए और उधर से लड़कों से लड़कर माँ जहाज प
बैठ गईं। साथ में केवल एक नौकर था। जहाज में ज्वार आने लगा। ब
जाना से उतरते-उतरते बेहोशी आ गई। घर में पहुँचने ही बाबू वाप
जहाज से फिर यहाँ के लिए चल दिये। यहाँ आकर देखा कि माँ के चलता
देरे हैं। आखिर चली ही गई, पर अब खड़े-खड़े बात करने का समय न
दीदी, अभी सब निकलने वाले हैं। फिर शाम के समय आऊँगी।" व
किस्सा सुनाने के लोभ को दमन करके जल्दी से चलती बनी।

ज्यों की त्यों रोटी की थाली पड़ी रही।

पहले तो उसकी दोनों आँखें धुँधली-सी हो आईं, फिर बड़ी-बड़ी आँ
की बूँदें गालों पर से लुड़क-लुड़ककर नीचे गिरने लगीं।

अपूर्व की माँ को उसने कभी देखा नहीं था, और इसके सिवा कि पति-पु
को लेकर इस जीवन में उन्होंने अनेक दुःख उठाये हैं, उनके विषय में औ
विशेष कुछ उसे पता भी नहीं था। कितनी रातों में उसने एकान्त में बैठक
बड़ी-बूढ़ी विधवा स्त्री के बारे में कितनी प्रकार की कल्पनाएँ की हैं। सुख
के समय में नहीं, कभी दुःख के समय में भी यदि उनसे भेंट हो—अब उनके
सिवा और कोई उनके पास न हो, तब क्रिश्चियन होने के कारण से ही कौन
से दूर हटा दे सकती है, यह बात जानने की उसे बड़ी साध थी। सा
थी कि दुर्दिन की उस अग्नि-परीक्षा में अपने-पराये की समस्या का व
अन्तिम समाधान कर लेगी।

धर्म-मतभेद ही इस जगत् में मनुष्य का चरम अलगाव है या नहीं, इसको
सत्य की कसौटी पर कसकर देखने के लिए ही यह अधिक दुःखमय उसके
भाग्य में आया था, परन्तु वह इसे ग्रहण नहीं कर सकी और वह रहस्य
जीवन में बिना खुले ही रह गया।

और अपूर्व ?

बर्मा में आकर ऐसा कैसे हो गया ? और इतने दिनों में इतनी कमजोरी उसमें छिपी कहाँ थी ?

सव्यसाची से इसका उत्तर पाने के लिए उसने कितनी ही बार पूछना चाहा है, पर वह मुँह खोलकर उनसे पूछ न सकी है. केवल कुतूहल के वश ही नहीं, बल्कि हृदय की व्यथा में से उसने कितनी ही बार सोचा है—इस संसार में जो कुछ जाना जा सकता है, दादा तो सबकुछ जानते हैं, फिर इस समस्या का भी समाधान वे क्यों न कर देंगे ? परन्तु केवल संकोच और लज्जा के मारे ही वह उनसे इस विषय में प्रश्न-उत्तर नहीं कर सकी है।

सहसा एक नया प्रश्न सोचते-सोचते उसके मन में उठा। कर्मों के दोष से जबकि सभी अपूर्व के विरुद्ध हो गए तब भी एक आदमी की सहानुभूति से वह वंचित नहीं हुआ—वह है सव्यसाची। मगर किसलिए ? केवल बहन की दुःख-वेदना के ही कारण ! स्वयं अपूर्व क्या उनकी सहानुभूति पाने योग्य कुछ भी नहीं है ? सचमुच क्या भारती ने इतने क्षुद्र व्यक्ति से इतना बड़ा प्रेम कर डाला है ? उस समय सावधान कर देने योग्य क्या उनके हृदय में कोई बात नहीं थी ? उनका हृदय क्या ऐसा निष्ठुर और खाली हो गया था ?

इसी तरह बैठे-बैठे दो घंटे बीत गए और दासी फिर आ पहुँची। उस समय तो होटल के जरूरी कार्यों से उसे इतना अवकाश नहीं था कि सब बात कहती।

अब जरा छुट्टी मिली है।

अपूर्व और भारती के बीच एक रहस्यमय मधुर सम्बन्ध है, यह बात अभ्यास और रंग-ढंग से सभी जान गए थे, अत. दासी से भी वह छिपा नहीं था तो फिर सहसा ऐसी कौन-सी बात हो गई जिससे अपूर्व के इतने बड़े संकट के समय में भी भारती वहाँ अपनी परछाईं तक नहीं ले गई ? इतनी बड़ी बात स्त्री होते हुए भी दासी को नहीं मालूम हो सकी, इससे उसे कुछ अच्छा नहीं लगा।

इसी से किसी बहाने से भारती के पास आई और उसे देखकर दंग रह

... ", "कुछ भी तो नहीं खाया।"

... वे झटपट उठ खड़ी हुईं, बोलीं, "ना, इच्छा नहीं है।"

भारती ने आँचल से दो रुपये खोलकर उसके हाथ पर रख दिए और उसके साथ अपूर्व बाबू की कोठरी में गई।

जाकर देखा कि वहाँ चारों तरफ पानी ही पानी फैला पड़ा है, और बहुत इधर उधर बिखरी पड़ी है, और पानी के एक कोने में बिछौने पर अपूर्व औंधा पड़ा है। सो रहा है या जाग रहा है, कुछ मालूम नहीं। भारती ने सुना था साथ में नौकर आया है, पर आसपास वह कहीं दिखाई नहीं दिया, हुआ तो आतिथेय की कोठरी में घुसे बैठे होंगे शायद। कुछ-क्षण खिड़की तक इसी तरह खड़े रहने के बाद भारती ने धीरे से पुकारा "अपूर्व बाबू!"

अपूर्व उठकर बैठ गया और उसकी ओर एक बार देखकर अपने दोनों घुटनों में मुँह छिपाकर क्षण-भर चुपचाप किए रहा, फिर मुँह उठाकर सीधा हो गया। माँ की मृत्यु का शोकाहीन दुःख उसके चेहरे पर जमा बैठा था, पर आवेग जरा भी नहीं था—शोकाच्छन्न गम्भीर दृष्टि के सामने इस संसार का सबकुछ मानो उसे बिल्कुल सूना दिखाई दे रहा था।

भारती ने अपने जीवन की छाया-तले रहने वाले जिस अपूर्व को एक दिन जाना था, यह वह नहीं है। आज उसे अपने सामने देखकर भारती विस्मय से दंग रह गई। क्या कहे, क्या कहके बुलाये, कुछ भी उसकी समझ में नहीं आया परन्तु इसकी मीमांसा कर दी स्वयं अपूर्व ने। उसने कहा "यहाँ बैठने के लिए कुछ है नहीं भारती, सब भीगा हुआ है, तुम उस सन्दूक पर बैठ जाओ।"

भारती ने कुछ उत्तर नहीं दिया। किवाड़ की चौखट पकड़े जैसे खड़ी थी वैसे ही स्तब्ध खड़ी रही।

उसके बाद बहुत देर तक दोनों में से कुछ बोला नहीं गया। नौकर तेल लाने के लिए बाजार गया था। वह भीतर घुसते ही कुछ विस्मित हुआ, फिर हरीकेन लालटेन उठाकर बाहर चला गया।

अपूर्व ने कहा, "अभी तुरन्त चली जाओगी? जरा बैठ नहीं सकोगी?"

भारती धीरे से उसी जगह पर बैठ गई। कुछ देर चुप रहकर बोली, "माँ यहाँ आ गई थीं, यह मुझे मालूम नहीं था। उन्हें मैंने देखा नहीं, पर मेरी छाती के भीतर आग-सी जल रही है। इस विषय में तुम अब मुझे

अपूर्व ने कहा, "ना, उन्हें छुट्टी नहीं मिली।"

"यहाँ की नौकरी क्या छोड़ दी ?"

"हाँ, एक प्रकार से छोड़ दी समझो।"

"माँ का क्रियाकर्म हो जाने के बाद क्या घर ही रहोगे ?"

अपूर्व ने कहा, "ना। माँ नहीं रहीं। आवश्यकता से ज्यादा एक दि
भी अब मैं उस घर में नहीं रह सकता।"

भारती के मुँह से केवल एक दीर्घ निःश्वास निकलकर रह गई।

२७

एक दिन भयानक जंगल के बीच के जिस खण्डहर में अपूर्व के अपरा
का विचार हुआ था, आज फिर उसी मकान में अधिकार-समिति की बैठ
हो रही है।

उस दिन वहाँ जो दुर्जय क्रोध और निर्मम प्रतिहिंसा की आग लपटें ले
लेकर जली थी, आज उसकी एक चिनगारी तक नहीं। आज न तो व
वादी है और न वह प्रतिवादी, किसी के विरुद्ध किसी की कोई शिकाय
नहीं—आज आशंका और निराशा की गहन वेदना से सारी सभा निष्प्र
उदास और मरी-सी हो रही है। भारती की आँखों में आँसू से चमक रहे हैं
सुमित्रा नीचे को मुँह किए चुपचाप बैठी है।

तलवरकर पकड़ा गया है—खून से लथपथ और क्षत-विक्षत अवस्थ
में आज वह अस्पताल में साँसें ले रहा है, अभी तक पूरा होश भी नहीं
आया। उसकी स्त्री अपनी लड़की को लिए इधर-उधर मारी-मारी फिरत
रही और अन्त में बड़ी मुश्किल से कल शाम को उसे एक दक्षिण ब्राह्मण के
घर शरण मिली।

सुमित्रा ने पता लगाकर उनके मायके वालों को तार दिया है, उनका
अब तक कोई उत्तर नहीं आया।

भारती ने धीरे से पूछा, "तलवरकरजी को क्या हो गया दादा ?"

डॉक्टर ने कहा, "अस्पताल से यदि जिन्दा लौट आया तो जेल होगी।"

भारती मन-ही-मन काँप उठी, बोली, "न भी बचें ?"

डॉक्टर ने कहा, "कम-से-कम असम्भव तो नहीं और बच भी गया तो लम्बी सजा होगी।"

भारती कुछ देर चुप रहकर बोली, "उनकी स्त्री, उनकी नन्ही-सी लड़की—उनका क्या होगा ?"

सुमित्रा ने जवाब दिया, "कदाचित् देश से उनके पिता आकर अपने घर ले जाएँगे।"

भारती ने कहा, "कदाचित् ? मान लीजिए यदि कोई न आया ? यदि कोई न हुआ घर में ?"

डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, "कोई आश्चर्य नहीं। उस दशा में अचानक किसी के मर जाने से उसकी अनाथ विधवा की जो दशा होती है, वही इसकी भी होगी।" फिर जरा ठहरकर बोले, "भारती ! मैं सद्गृहस्थ नहीं हूँ और न मेरे पास धन-सम्पदा ही है, विदेशियों के कानून के अनुसार अपनी जन्मभूमि में भी हमारे लिए कोई स्थान नहीं—जंगली पशुओं की तरह हम लोग जंगल में छिपे-छिपे फिरते हैं, गृहस्थों के दुःख दूर करने की शक्ति हम लोगों में नहीं है।"

भारती ने दुःखी होकर कहा, "तुम लोगों में न सही, पर जिन लोगों [illegible] है—हमारे देश के वे लोग क्या इनका दुःख दूर नहीं कर सकते दादा ?"

डॉक्टर ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "मगर वे करने क्यों लगे भारती, [illegible] लोगों ने तो ऐसा काम करने को हम लोगों से कहा नहीं। बल्कि उलटे [illegible] लोग ही उनकी शान्ति में बाधक हैं—उनके आराम में विघ्न डाला [illegible] है। हम लोगों को वे भले की आँखों से नहीं देखते। अंग्रेज लोग जब [illegible] के साथ प्रचार करते हैं कि भारतवासी स्वाधीनता नहीं चाहते हैं, तब [illegible] झूठ नहीं कहते। और युग-युगान्तर के अंधकार में रहते-रहते [illegible] दोनों आँखें अँधी हो चुकी हैं, उनके विरुद्ध हाथ-जोड़ा करने से भी [illegible] है ?"

थोड़ी देर चुप रहकर फिर कहने लगे, "विदेशी राजा की जेल में अगर [illegible] तलवरकर को मरना ही पड़े, तो परलोक में उनकी स्त्री-कन्या का [illegible] भीख माँगते देखकर उनकी आँखों से आँसू ही गिरेंगे, पर इनका [illegible]

अधिकार कर रखा है—हमारी मनुष्यता, हमारी मान-मर्यादा, हमारी भूख का अन्न और प्यास का पानी—सबकुछ जिन लोगों ने छीन लिया है उनको तो हमारी हत्या करने का अधिकार है, और हमको नहीं?—यह धर्म-बुद्धि तुम्हें कहाँ से मिली भारती? छि!"

आज भारती प्रभावित नहीं हुई। उसने जोरों से सिर हिलाते हुए कहा, "ना दादा, तुम मुझे हरगिज लज्जित नहीं कर सकते। ये सब पुरानी बातें हैं। प्रतिहिंसा के मार्ग में प्रवृत्ति देने वाले ही ऐसी बातें करते हैं। पर यह अन्तिम बात नहीं है, संसार में इससे भी बड़ी और बहुत बड़ी बात मौजूद है।"

डॉक्टर ने कहा, "सुनाओ तो सही क्या है?"

भारती ने आवेश के साथ कहा, "मैं नहीं जानती, पर तुम जरूर जानते हो। जिस विद्वेष ने तुम्हारी सत्य-बुद्धि को इस तरह एकदम ढक दिया है उसे हटाकर एक बार तुम शान्ति के मार्ग में लौट आओ—ऐसी कोई समस्या इस संसार में नहीं जो तुम्हारे ज्ञान और प्रतिभा के आगे पराजय स्वीकार न करे। जोर के बदले जोर, अत्याचार के बदले अत्याचार—यह तो बर्बरता के युग से ही चल रहा है। इससे महान् क्या कोई बात हो ही नहीं सकती?"

"कौन बताएगा कि क्या हो सकती है?"

भारती ने बिना किसी संकोच से कहा, "तुम बताओगे।"

"इसके लिए मुझे क्षमा करना होगा बहन! साहब के बूटों के नीचे चित पड़े रहकर शान्ति की वाणी मेरे मुँह से ठीक नहीं निकलेगी, हिचक जाऊँगा।—बल्कि यह भार शशि पर छोड़ दो, तुम्हारी खातिर शायद वह ऐसा कर सके।" इतना कहकर डॉक्टर हँसने लगे।

भारती ने उदास होकर कहा, "तुमने बातें मजाक में उड़ा दीं, पर [illegible] जिनके प्रति तुम्हारा इतना विद्वेष है, उन अंग्रेज मिशनरियों से मैंने इस बारे में बहुत बार कह देखा है—वे सचमुच ही बहुत प्रसन्न होते हैं।"

डॉक्टर ने स्वीकार करते हुए कहा, "यह अत्यन्त स्वाभाविक है भारती। सुन्दर वन में निरस्त्र खड़े होकर यदि शान्ति की [illegible] शेर-भालुओं को प्रसन्न होना ही चाहिए। वे साधु आदमी [illegible]

इस व्यंग्य पर भारती ने ध्यान नहीं दिया। वह कहने लगी, "आ
भारत का चाहे जितना दुर्भाग्य हो, पर हमेशा से ऐसा नहीं था। जि
दिन भारत सभ्यता के उच्च शिखर पर आरूढ़ था। उस दिन भारती
हिंसा-विद्वेष का नहीं बल्कि धर्म और शान्ति का मन्त्र ही चारों ओ
प्रचलित किया था। मेरा विश्वास है कि वह दिन फिर हम लोगों के भ
आयेगा।"

भारती की बातें सुन-सुनकर शशि का कवि-चित्त श्रद्धा और अनुरा
से भर गया था। वह गद्‌गद स्वर में बोल उठा, "भारती की बातों का
पूर्ण. अनुमोदन करता हूँ डॉक्टर! मेरा भी यही विश्वास है कि भारत क
वह सभ्यता फिर वापस ही आएगी।"

डॉक्टर ने दोनों की तरफ देखते हुए कहा, "तुम लोग भारत के कि
युग की बात कर रहे हो, मुझे नहीं मालूम, पर सभ्यता की एक सीम
अवश्य है। यदि धर्म, अहिंसा और शान्ति का नशा उस पर आक्रमण क
बैठे, तो फिर मौत ही सामने आती है। कोई भी देवता फिर उसकी रक्षा
नहीं कर सकता। भारत ने हूणों के आगे कब पराजय स्वीकार की, जानते
हो? जब उन लोगों ने भारत के बच्चों को मशाल की तरह जलाना शुरू
किया था, तब। नारियों की पीठ की खाल से लड़ाई के बाजे बनाना शुरू
किया था तब। उस कल्पनातीत नृशंसता का उत्तर देना भारतीयों ने नहीं
सीखा था। उसका फल क्या हुआ? देश गया, राज्य गया, देव-मन्दिर ध्वंस
हो गये—उस असमर्थता का दण्ड अब तक हम लोगों का पूरा नहीं हुआ।"

फिर भारती को सम्बोधन करके कहने लगे, "तुम कवि की कविता
सुनाया करती हो, देश गया तो दुःख क्या है, तुम लोग फिर आदमी बनो।
पर देश को वापस लेने योग्य आदमी होना कहते किसे हैं, सो तो बताओ?
सोचा होगा, आदमी होने का मार्ग बिल्कुल खुला हुआ साफ पड़ा है। सोचा
होगा, देश के दरिद्रनारायण की सेवा करने और मलेरिया में कुनैन
बाँटते फिरने को ही आदमी बनाना कहते हैं?—ऐसा नहीं। वास्तव में

नहीं है भारती ! उन्हीं की जलवायु में पलकर तुम इतनी बड़ी हुई हो, इसी से तुम्हारे मन में यह बात बैठ गई कि क्रिश्चियन सभ्यता से बढ़कर और कोई सभ्यता नहीं। और मजा यह है कि इससे बढ़कर झूठी बात भी और कोई नहीं। सभ्यता के मानी क्या केवल आदमी मारने की मशीन बनाना ही है ? दुरात्माओं के लिए छलों की कमी नहीं– इसलिए आत्मरक्षा के छल से इन लोगों की नित्य नयी सृष्टि का भी अन्त नहीं। यदि सभ्यता के कुछ भी मानी हों, तो वह यही है कि असमर्थ और कमजोरों के न्यायोचित दावे बलवानों के बाहुबल में न डरते हों। कहीं भी देखी है इनकी ऐसी नीति ? कहीं भी देखा है इन्हें इस न्याय को गौरव देते ? एक दिन तुमसे मैंने कहा था कि संसार के मानचित्र को जरा उठाकर देखो। याद है वह बात ? याद है मेरे मुँह से सुनी हुई चीन देश के बक्सर विद्रोह की कहानी ? सुसभ्य योरोपियन शक्तिशालियों ने उनके घर घर चढ़ाई करके उनसे जो बदला लिया, उसके आगे चंगेजखाँ और नादिरशाह की नृशंस कहानी क्या चीज है ! सूर्य के सामने दीपक के समान वह तो बिल्कुल ही तुच्छ है। हेतु कितना ही तुच्छ और अन्यायपूर्ण क्यों न हो, लड़ाई का बहाना मिलते ही इन्हें फिर कोई हिचक नहीं रहती। बूढ़ा, बच्चा, स्त्री–कोई भी क्यों न हो, न संकोच है न दुविधा। जिस पाप की सीमा नहीं हो सकती भारती, उस विषैली गैस से नर-हत्या करने में भी इनको नैतिक बुद्धि बाधा नहीं देती। उद्देश्य-सिद्धि के लिए ये लोग किसी भी उपाय और किसी भी रास्ते को पवित्र समझते हैं। नीति की बाधाएँ और धर्म की रुकावटें क्या केवल हम निर्वासित और पददलितों के लिए ही हैं ? इनके लिए नहीं ?"

भारती से कुछ उत्तर देते नहीं बना, चुपचाप बैठी रही। इन सब अभियोगों का प्रतिवाद करना वह क्या जाने ? जो निर्मम है, अत्यन्त दुखित और श्रद्धाहीन है, जो क्षमाहीन क्रान्तिकारी है, ज्ञानी है—बुद्धि और पाण्डित्य में जिसकी तुलना नहीं, पराधीनता की न बुझने वाली आग जिसके समस्त शरीर और मन में दिन-रात दीप-शिखा के समान जल रही है, उसे युक्तियों से परास्त करने का साहस उसे कहाँ मिलता ? इसके पास इसका कोई जवाब नहीं। उसकी आशा पूरी हो गई, परन्तु उसका अन्तः-हीन नारी-हृदय अंधी व्यथा में चुपचाप सिर धुनने लगा।

सुमित्रा ने बहुत दिनों से इस प्रकार के तर्कों में भाग लेना बन्द कर दिया था, आज भी वह नीचे की निगाह किये चुपचाप बैठी रही, मगर असहिष्णु हो उठा कृष्ण अय्यर।

इस आलोचना की अधिकांश बातें उसकी समझ में नहीं आ रही थीं—इस मौन के बीच उसने पूछा, "हमारी सभा का काम शुरू होने में और कितनी देर है ?"

डाक्टर ने कहा, "जरा भी नहीं। सुमित्रा, तुम्हारा जाना आना हो रहा क्या ?"

"हाँ।"

"कब ?"

"शायद बुधवार को। पिछले शनिवार को नहीं जा सकी।"

"अधिकार-समिति को तुमने बिल्कुल छोड़ दिया ?"

सुमित्रा ने सिर हिलाकर कहा, "हाँ।"

इसके बाद उत्तर में डॉक्टर चुप हो रहे। फिर जेब में से एक टेलीग्राम निकालकर सुमित्रा के हाथ में देते हुए कहा, "इसे पढ़ देखो। हीरासिंह कल रात को दे गया है।"

उस पर अय्यर झुक पड़ा। भारती ने जलती मोमबत्ती उठा ली। लम्बा टेलीग्राम था, अंग्रेजी भाषा है, अर्थ भी स्पष्ट है—सुमित्रा का चेहरा गम्भीर हो उठा। दो-तीन मिनट बाद उसने मुंह उठाकर कहा, "कोड के सब शब्द मुझे याद नहीं। हम लोगों की शघाई की जैमेका क्लब और कुगर ने तार भेजा है, इसके अलावा और कुछ समझ नहीं पड़ा।"

डॉक्टर ने कहा, "कुगर ने तार दिया है कैन्टन से। शघाई की जैमेका क्लब को प्रात: होने से पहले ही पुलिस ने घेर लिया था—तीन आदमी पुलिस के और एक अपना विनोद मारे गए हैं। दोनों भाई महताब और सूर्यसिंह एक साथ गिरफ्तार हो गए हैं। अयोध्या हांगकांग में है, दुर्गा और सुरेश पेनांग में हैं, सिंगापुर की जैमेका क्लब के लिए पुलिस सारे शहर को छाने डाल रही है।—कुल समाचार इतना-सा है।"

कृष्ण अय्यर का मुंह समाचार सुनकर फक् पड़ गया। उसके मुंह से हठात् एक शब्द निकला, "सर्वनाश हो गया।"

डॉक्टर ने कहा, "ये दोनों भाई रेजिमेंट छोड़कर कब और क्यों शघाई पहुँचे, पता नहीं। सुमित्रा, ब्रजेन्द्र सचमुच कहाँ है, जानती हो?"

प्रश्न सुनकर सुमित्रा पत्थर-सी हो गई।

'जानती हो?"

पहले उसके गले में से किसी प्रकार आवाज ही नहीं निकली, फिर गर्दन हिलाकर बोली, "नहीं।"

कृष्ण अय्यर ने कहा, "वह ऐसा काम कर सकता है, मुझे तो विश्वास नहीं होता।"

डॉक्टर 'हाँ' या 'ना' कुछ भी कहे बिना चुपचाप बैठे रहे।

शशि ने कहा, "ब्रजेन्द्र को मालूम है कि आप पैदल रास्ते से बर्मा से बाहर चल दिये हैं?"

डॉक्टर इस बात का कोई भी जवाब न देकर जैसे-के-तैसे स्थिर बैठे रहे।

सब-के-सब मूर्ति के समान मौन बैठे हैं। सामने टेलीग्राम के कागज पड़े हैं। मोमबत्ती जलकर समाप्त हो रही थी, शशि ने दूसरी जलाकर जमीन पर जमा दी। दसेक मिनट इसी तरह सन्नाटा रहा, फिर अय्यर की देह में चेतना-सी दिखाई दी। उसने जेब में से सिगरेट निकाली और उसे बत्ती से सुलगाकर धुएँ के साथ-साथ एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहा, "अब सब समाप्त।"

डॉक्टर ने उसके मुँह की ओर देखा। उत्तर में उसने सिगरेट का फिर एक कश लेकर सिर्फ धुआँ छोड़ दिया। शशि शराब तो पीता था, पर तम्बाकू का धुआँ उससे सहन नहीं होता था। अब उसने ख्वाहमख्वाह एक चुरुट सुलगाकर घर भर में धुआँ भर दिया।

अय्यर ने कहा, "अनन्त दुर्भाग्य-भर में फैली शक्तिशाली राजनीति के विरुद्ध क्रान्ति-प्रयत्न करना सिर्फ व्यर्थ ही नहीं, पागलपन भी है। मैं तो शुरू से ही कहता आ रहा हूँ डॉक्टर, अन्त तक कोई भी नहीं टिकेगा।"

अय्यर क्या समझा, यह तो वही जाने, मुँह से बेशुमार धुआँ निकालता हुआ बोला।

डॉक्टर सहसा उठकर खड़े हो गए, "हम लोगों की आज की सभा यहीं

[illegible] हूँगी है।"

सभी उठकर खड़े हुए। भारती ने [illegible], केवल कुछ [illegible]। वह [illegible] डॉक्टर के पास [illegible] हो गई और [illegible] सुमित्रा [illegible] से बोली, "[illegible] मुझसे [illegible] कहीं [illegible] नहीं जाओगे, बताओ?"

डॉक्टर ने मुँह से कुछ नहीं कहा, केवल अपने [illegible] हाथ से [illegible] कोमल हाथ को [illegible] रखा [illegible] दिये।

२८

दूसरा दिन!

सुबह से ही आकाश में धीरे-धीरे बादल इकट्ठे हो रहे थे। रात को कुछ बूँदें पड़ी थीं और आज दोपहर से ज़ोर की वर्षा और आँधी शुरू हो गई थी। कल भारती ने सुमित्रा को जाने नहीं दिया था। तय हो गया था कि आज नाश्ता-पानी करके वह घर जाएगी। परन्तु ऐसा आँधी-मेह शुरू हुआ कि नदी पार होना तो दूर की बात, बाहर पैर रखना भी कठिन हो गया था। विराम नहीं, विश्राम नहीं।

शाम होते-होते आँधी और मेह भी बढ़ गया, अब तक लौट ही न सका। कब दिन खत्म हुआ और कब शाम बीत गई, कुछ मालूम ही नहीं।

भारती के ऊपर के कमरे की खिड़कियाँ सब बन्द थीं। बत्ती जलाकर सब बैठे गपशप कर रहे थे। सुमित्रा नीचे से ऊपर तक ओढ़कर आराम-कुर्सी पर लेटी हुई है, अपूर्व [illegible] पर तकिया टेके बैठा है।

कर सका, वह युक्तियाँ दे-देकर खण्डन करता हुआ समझा रहा था कि यह विचार अच्छा नहीं है। कारण, संन्यास में अब कुछ मजा नहीं रहा, बल्कि बरीसाल कॉलेज में प्रोफेसरी के लिए अर्जी दी है, वह स्वीकार हो जाए तो उसे स्वीकार कर लेना अधिक अच्छा है।"

अपूर्व इससे दुःखी हुआ पर कुछ बोला नहीं।

भारती को सबकुछ मालूम था, इसलिए उसने इसका उत्तर देते हुए कहा, "जीवन में मौज करते फिरने के सिवा क्या मनुष्य के लिए और कोई बड़ा उद्देश्य हो ही नहीं सकता शशि बाबू? संसार में सभी की दृष्टि एक-सी नहीं होती।"

उसके बात कहने के ढंग से शशि लज्जित हो गया।

भारती ने फिर कहा, "अभी अपूर्व बाबू के मन की अवस्था अच्छी नहीं है। इस समय उनके भविष्य के विषय में आलोचना करना बेकार निष्फल ही नहीं, बल्कि हमें अपनी ।"

"मुझे ध्यान नहीं था भारती !"

शशि के लिए ध्यान नहीं रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

इस बीच में अपूर्व को और एक चोट पहुँची है जिसे भारती के सिवा और कोई नहीं जानता।

सांसारिक दृष्टि से उसका फल और परिणाम मातृ-वियोग से कुछ कम नहीं। जननी की मृत्यु का समाचार पाकर अपूर्व के भाई विनोद बाबू ने दुखी होकर तार भेजा है जिसमें दुख प्रकट करने के सिवा और कुछ नहीं लिखा।

इस बात का ध्यान करके कि माँ गुस्सा और नाराज, अत्यन्त अपमानित होकर ही अन्त में सगाहीन अपरिचित देश बर्मा में आई थी, अपूर्व दुख और क्षोभ से पागल-सा हो रहा था। कलकत्ता पहुँचकर जब उसने माँ के बर्मा चले जाने का समाचार सुना तो दो दिन बिना खाये-पिये और सोये ही बिता दिये थे, और अपने हृदय पर किसी तरह काबू करके अपना था। फिर भी उसे निःसन्देह ऐसा भरोसा था कि सबके छोटा होने के कारण, इतनी बड़ी भयंकर दुर्घटना में, घर से कोई-न-कोई उसे लेने के लिए जरूर आवेगा।

शिवाजी घर पर मौजूद रहता तो क्या होता, नहीं कहा जा सकता, पर वह था नहीं, छुट्टी लेकर देश चला गया था।

इसी कारण पुरोहित यहाँ भी मौजूद है।

आज ही सवेरे अपूर्व ने भारती से कहा, "मैं कलकत्ता नहीं जाऊँगा, जैसे बनेगा वैसे यहीं मैं माँ का श्राद्ध सम्पन्न करूँगा।"

माता के अचानक बर्मा रवाना होने के कारण लड़कों के प्रति उनका पीड़ित मान-अभिमान था, यह बात अपूर्व को कलकत्ते में मालूम हो गई थी, पर उसमें क्रिश्चियन लड़की भारती की कहानी का कितना अंश शामिल था, यह उसे नहीं मालूम हुआ। कठिन रोग से पीड़ित बेहोश माँ कुछ कह न सकी, और विनोद बाबू ने गुस्से में कुछ कहा नहीं।

सुमित्रा सहसा मुँह उघाड़कर उठ बैठी, बोली, "भारती, कोई नीचे का दरवाजा खोलकर घुस रहा है।"

आँधी और मेह के लगातार झर-झर शब्द में और कुछ सुनाई देना मुश्किल था। आशंका से सब चौंक पड़े।

भारती ने क्षण-भर कान खड़े करके ध्यान से सुना, फिर कहा, "ना, कोई नहीं है। अपूर्व बाबू का नौकर नीचे बैठा है।"

परन्तु दूसरे ही क्षण जीने में परिचित पैरों की आवाज सुनकर वह मारे प्रसन्नता के चिल्ला उठी, "अरे, ये तो दादा आ रहे हैं! एक हजार, दस हजार, बीस हजार, एक लाख बार स्वागत!" वह हाथ का फल और हँसिया छोड़कर जीने की ओर दौड़ी गई और बोली, "एक करोड़, दस करोड़, बीस करोड़, हजार-हजार करोड़ गुड ईवनिंग दादा, चले आओ, जल्दी आओ!"

सव्यसाची ने कमरे में आकर अपनी पीठ का बड़ा भारी बकुचा उतारते हुए हँसते-हँसते कहा, "गुड ईवनिंग! गुड ईवनिंग! गुड ईवनिंग!"

उसके दोनों हाथ अपनी ओर खींचते हुए भारती ने कहा, "वह देखो दादा, तुम्हारे लिए खिचड़ी बना रही हूँ। पहले इस ओवरकोट को तो [illegible]लो। उफ्—जूते-ऊते सब भीग गए हैं। ठहरो, पहले मैं इन सबको खोल[illegible]"

वह पहले कोट खोले या झुककर जूते के फीते खोले, कुछ तय नहीं कर

अन्त में उन्हें पकड़कर कुर्सी पर बिठाती हुई बोली, "पहले मैं जूते खोल दूँ।—अच्छा, ऐसे आँधी-मेह में गाड़ी पर क्यों नहीं आए?—अच्छा दादा, सवेरे क्या खाया था? पेट भर गया था? और सुनो, महाराज के होटल में आज मांस बना है, एक कटोरे में ले आऊँ दौड़कर? खाओगे? सच बताओ?"

डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, "अरे! यह आज मुझे पागल बना देगी क्या!"

भारती ने जूते खोल दिये और उठके उनके सिर पर हाथ रखकर कहा, "नो, जो सोची थी वही बात हुई न? ठीक जैसे नहाकर आ रहे हो!" वह अलगनी से झटपट तौलिया उठा लाई।

पल-भर के अन्दर उसने ऐसा लड़कपन दिखलाया कि शशि हँस दिया। बोला, "आपको जैसे भारती ने दस-पाँच साल बाद देखा हो।"

डॉक्टर ने कहा, "उससे भी अधिक।" कहते हुए उन्होंने भारती के हाथ से तौलिया ले लिया और कहा, "इसके लाड़ के मारे मेरा दम निकला जा रहा है।"

"दम निकला जा रहा है? तो बैठे रहो।" कहकर भारती बनावटी अभिमान दिखाती हुई हँसिया लेकर फल काटने बैठ गई।

ऐसे मौके पर और बिना किसी भरोसे के अपने इस बन्धु, सखा और सहोदर से भी अधिक आत्मीय के आगमन से भारती का हृदय प्रेम, श्रद्धा, गर्व और स्वार्थहीन निष्पाप प्रेम से ऐसा भर आया कि वह अपने को सँभाल नहीं सकी। उसके व्यवहार में यदि कुछ अनियमितता हुई हो तो इसमें विस्मय की क्या बात है?

सुमित्रा जो चुपचाप बैठी देख रही थी, अब भी चुप रही। परन्तु अब तक उसकी आँखों के सामने जो घृणा और निगूढ़ ईर्ष्या की दुर्भेद्य यवनिका पड़ी हुई थी वह अकस्मात् हट गई, और फिर उसे जहाँ तक दिखाई दिया इन दोनों नर-नारी के बीच में निर्मल सौहार्द की स्वच्छ धारा के सिवा और कुछ दिखाई नहीं दिया।

क्षण-भर के लिए भी कभी यहाँ कलुष का स्पर्श हुआ होगा, [illegible] कल्पना करते हुए भी उसका सिर झुक गया। छिपाने और [illegible]

भारती में कुछ था ही नहीं, इसीलिए वह सव्यसाची की इतनी अपनी हो गई थी—सुमित्रा इस बात को आज अच्छी तरह समझ गई।

अब तक भारती दादा को लेकर व्यस्त थी। अब उसका ध्यान अपूर्व पर गया। उद्विग्न आशंका से पूरी होकर उसने पूछा, "अच्छा दादा, ऐसी आँधी-मेंह में आप इस मांझी को साथ क्यों लाये हो? कहीं चोरी तो नहीं जा रहे हो? झूठ कहकर धोखा नहीं दे सकते, पहले से कहे देती हूँ, हाँ!"

डॉक्टर ने हँसने की कोशिश की, पर उनके चेहरे पर हँसी आई नहीं, फिर भी उन्होंने हँसी के ढंग पर बात जरा हल्की करते हुए कहा, "जाऊँ नहीं तो क्या रामदास की तरह गिरफ्तार हो जाऊँ?"

शशि ने सिर हिलाते हुए कहा, "बात तो बिल्कुल ठीक है।"

भारती ने क्षोभपूर्ण कहा, "बिल्कुल ठीक है! आप क्या जानते हैं शशि बाबू, जो अपनी राय दे रहे हैं?"

"वाह, जानता कैसे नहीं?"

"कुछ नहीं जानते।"

डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, "लड़ने-भिड़ने से खिचड़ी का आनन्द जाता रहेगा।—अच्छा अपूर्व बाबू, बर्मा के जहाज से गये बिना क्या आप ठीक समय पर नहीं पहुँच सकेंगे?"

अपूर्व ने गम्भीरता के साथ कहा, "माँ का श्राद्ध मैं यहीं करना चाहता हूँ डॉक्टर!"

"यहीं? इसका कारण?"

अपूर्व मौन रहा। भारती ने भी कुछ जवाब नहीं दिया।

डॉक्टर मन-ही-मन समझ गए कि कोई बात हो गई है जो कहने की नहीं है। वे बोले, "अच्छी बात है, ठीक है, तो फिर वहाँ वापस जाने की भी क्या आवश्यकता है? नौकरी आपकी बनी हुई है न?"

अपूर्व ने इसका भी कोई उत्तर नहीं दिया।

शशि ने कहा, "अपूर्व बाबू संन्यास लेंगे।"

डॉक्टर हँस पड़े, "संन्यास? ऐसी क्या बात हो गई?"

उनकी हँसी से अपूर्व अप्रसन्न हो गया। बोला, "संसार में जिसकी रुचि नहीं रही, जीवन जिसका बेस्वाद हो गया है, उसके लिए और चारा

ही क्या है डॉक्टर?"

डॉक्टर ने कहा, "अपूर्व बाबू, ये सब बड़ी आध्यात्मिक बातें हैं। इस विषय में अनधिकार चर्चा करने के लिए मुझे मत लुभाइए। बल्कि इस विषय में शशि बाबू की राय ली जाय तो ठीक है। वे समझते है। स्कूल में परीक्षा-फेल हो जाने पर एक बार साल-भर तक किसी साधु का शिष्यत्व भी कर चुके है।"

शशि ने कहा, "साल-भर नही, डेढ़ साल से ऊपर।"

सुमित्रा और भारती हँसने लगीं।

इसमें अपूर्व का गाम्भीर्य विचलित नहीं हुआ। उसने कहा, "माँ की मृत्यु के लिए मैं अपने को ही अपराधी समझता हूँ डॉक्टर, उस दिन से मैं निरन्तर यही बात सोच रहा हूँ। वास्तव में घर-गृहस्थी की मुझे आवश्यकता नही।"

क्षण-भर उसके मुँह की ओर देखकर मानो उसकी सच्ची वेदना का पता लगा लिया और स्नेह-भरे कोमल स्वर में डॉक्टर ने कहा, "मुझे आदमी को इस दिशा में विचार करने का कभी अवसर नहीं मिला अपूर्व बाबू, न कभी आवश्यकता ही पड़ी, पर सहज बुद्धि से मालूम होता है कि शायद यह गलत होगा। कड़ुआहट के कारण संसार छोड़कर सिर्फ भाग्यहीन जीवन ही बिताया जा सकता है, वैराग्य साधन नहीं किया जा सकता। करुणा और आनन्द के बीच मे चले बिना क्या—लेकिन, मैं तो ठीक जानता नही···।"

अचानक मानो एक नया ज्ञान मिल गया। व्यग्र कण्ठ से बोल उठी, "तुम ठीक जानते हो दादा, तुम्हारे मुंह से कभी गलत बात नही निकलती—और कुछ हो ही नही सकता। यही सत्य है।"

डॉक्टर ने कहा, "पता नही! माँ मर गई। वे क्यों आई थी, क्यों आप यहाँ से जाना नही चाहते—कुछ भी मैं नही जानता और जानने का कुतूहल भी नही है—परन्तु किसी के व्यवहार से अगर कड़ुआहट आपको मिली हो तो क्या सारे जीवन मे केवल वही एक सत्य ही रहेगी, और अमृत अगर कहीं से मिला हो तो जीवन मे कोई मूल्य ही नही रहने देंगे?"

अपूर्व ने कहना चाहा, "घर में भाई आदि बधु-बांधव···।"

डॉक्टर बीच में ही कहने लगे, "संसार में क्या अपूर्व के जैसा विनोद बाबू ही हैं, भारती के जैसा सव्यसाची नहीं है ? उस घर में अगर उनके लिए स्थान न हो तो क्या कलकत्ते का वह छोटा-सा मकान ही जान के विश्वव्यापी पैर के नीचे की पृथ्वी है ? संसार में और कहीं क्या आपके लिए जगह नहीं है ? अपूर्व बाबू, हृदयावेग में यदि चेतना को ही ढक दिया जाय, तो वह आदमी के लिए सबसे बड़ा शत्रु हो जाता है।"

अपूर्व बहुत देर तक चुप रहने के बाद बोला, "परन्तु धर्म-साधन या अपनी आत्मा की मुक्ति चाहने के लिए तो संसार नहीं छोड़ना चाहता डॉक्टर—यदि छोड़ूँगा तो दूसरों के लिए छोड़ूँगा। आप लोगों के लिए अब मुझ पर भरोसा करना कठिन है। न करें तो मैं दोष भी नहीं दे सकता। परन्तु इतना सच है कि जिस अपूर्व को आप लोग जानते हैं, वह अपूर्व अब नहीं रहा।"

डॉक्टर उठकर उसके पास आ गये और उसकी पीठ पर हाथ रखकर बोले, "अपूर्व बाबू ! तुम्हारी यह बात सच हो।"

अपूर्व ने गद्गद स्वर में कहा, "अब से मैं अपना जीवन देश की सेवा—मनुष्य की सेवा—दीन-अनाथों की सेवा में लगा दूंगा।" वह कुछ देर चुप रहा, फिर कहने लगा, "कलकत्ते में मेरा घर है, शहर में ही इतना बड़ा हुआ हूँ, पर शहर के साथ अब मेरा जरा भी सम्बन्ध नहीं रहा। अब से ग्राम-सेवा ही मेरा एकमात्र व्रत होगा। किसी समय में इस कृषिप्रधान भारत के गाँव ही प्राण थे, गाँव ही सबकुछ थे। आज वे ध्वंसोन्मुख हैं। मध्यवित्त भद्र जाति उन्हें छोड़कर शहरों में चली आई है, और शहरों में ही रहकर उन पर दिन-रात शासन करती है—शोषण करती है। इसके सिवा इन लोगों ने गाँवों से और कोई सम्बन्ध या बन्धन रखा ही नहीं। न रखें, पर हमेशा से जो इसके पेट के लिए अन्न और शरीर के लिए वस्त्र देते आ रहे हैं, वे किसान आज निरन्न निरक्षर और उपायहीन होकर मौत की ओर तेजी से बढ़े जा रहे हैं। अब मैं उन्हीं की सेवा में अपना जीवन लगा दूँगा। और भारती ने भी मुझे जी-जान से सहायता पहुँचाने का वचन दिया है। गाँव-ि[illegible] में पाठशालाएँ खोलकर और आवश्यकता आ पड़ने पर हर झोंपड़ी में [illegible] उनके बच्चों को शिक्षित बनाने का भार लेने को भारती तैयार है।

मेरा संन्यास देश के लिए होगा डॉक्टर, अपने लिए नहीं।"

डॉक्टर ने कहा, "अच्छा प्रस्ताव है।"

उनके मुँह से केवल ये दो शब्द निकलेंगे, इसकी आशा किसी को न थी।

भारती ने उदास होकर कहा, "और एक तरह से देखा जाय, तो यह तुम्हारा ही काम है दादा। इस कृषिप्रधान देश में किसान जब तक उन्नति नहीं करते, तब तक शान्ति आदि कुछ हो भी नहीं सकती।"

डॉक्टर ने कहा, "बहुत सही।"

"दादा, तुमने उत्साह भी नहीं दिखाया!"

डॉक्टर ने सिर हिलाकर कहा, "गरीब किसानों का भला करना चाहते हो, करो, मैं तुम लोगों को आशीर्वाद देता हूँ। मगर वह करके ऐसा समझने की आवश्यकता नहीं कि तुम मेरे काम में सहायता कर रहे हो। किसान राजा हो जाएँ, उन्हें धनधान्य, पुत्र-पौत्रादि प्राप्त हों, मगर उनसे मैं सहायता की आशा नहीं करता।"

अपूर्व की ओर देखकर कहा, "किसी का भला करने के लिए दूसरे किसी पर कीचड़ उछालना ही होगा, इसका कोई मतलब नहीं होता अपूर्व बाबू! किसान-मजदूरों के दुःख-दारिद्र्य की जड़ में शिक्षित मध्य वर्ग नहीं है, उसकी जड़ ढूँढने के लिए तुम्हें दूसरी जगह खोदकर देखना होगा।"

अपूर्व संकुचित हो उठा। बोला, "पर सभी क्या ऐसा नहीं कह रहे हैं?"

"जो गलत है, वह तैंतीस करोड़ आदमी मिलकर कहें तो भी गलत ही है। बल्कि, देखा जाय, तो इस शिक्षित भद्र जाति से बढ़कर लांछित, अपमानित और दुर्दशामय समाज भारत में शायद ही कोई हो। तुम उन पर झूठे कलंक का बोझ और लादकर उनकी डगमगाती टूटी नाव को मझधार में क्यों डुबोना चाहते हो? क्या तुम समझते हो कि दूसरे देशों की सभी योजनाएँ और सभी समस्याएँ हमारे देश के लिए लागू हो सकती हैं? बाहर का दुराचार क्षण-क्षण में सर्वनाश लाता चला आ रहा है, तब भीतर तुम अन्तर्विद्रोह की सृष्टि क्यों करना चाहते हो? असन्तोष से देश मुँह तक भर रहा है—स्नेह और श्रद्धा का बन्धन छिन्न-भिन्न क्यों होता जा रहा है, जानते

था ? तुम्हीं दस-पाँच जनों के संग से—शिक्षितों के विरुद्ध अशिक्षितों के युद्ध से। याद है, एक दिन तुम्हें इस काम के लिए मना किया था, याद है ? अपने विरुद्ध अपनी बुराई घोषित करने में एक प्रकार की निर्दोष स्पष्टवादिता का दम्भ है—एक प्रकार की सस्ती प्रसिद्धि भी उससे फैल जाती है, परन्तु यह केवल भूल ही नहीं, झूठ भी है। उन लोगों का हित तुम जो कर सकते हो, करो, पर दूसरों पर कलंक मढ़कर या एक के विरुद्ध दूसरे को उत्तेजित करके मत करो—दुनिया के सामने उन्हें हास्यास्पद करके मत करो। सुदूर भविष्य में सम्भव है वैसा समय आ जाए, पर तत्काल यह सम्भव नहीं, धैर्य रखना होगा।"

सब चुप।

भारती ने धीरे से कहा, "कुछ ध्यान मत करना दादा, मैं बराबर ही देखती आ रही हूँ कि गाँवों के प्रति तुम्हारी सहानुभूति कम है। तुम्हारी दृष्टि केवल शहरों के प्रति ही है। किसानों पर तुम सदय नहीं हो, तुम्हारी दोनों आँखें केवल कारखानों के कुली, मजदूर, कारीगरों की ओर ही देखा करती हैं। इसी से तुमने अपनी अधिकार-समिति इन्हीं के बीच खोली थी और हृदय नाम की कोई बला यदि तुम्हारे अन्दर हो भी, तो उस पर केवल मध्यम श्रेणी और शिक्षित भद्र जाति ही छाई हुई है। उन्हीं पर तुम्हारी आशा है, उन्हें ही तुम अपना समझते हो। तुम्हीं बताओ, यह बात झूठ है ?"

डॉक्टर ने कहा, "झूठ नहीं बहन, बिल्कुल सच है। कितनी बार मैं तुमसे कह चुका हूँ कि अधिकार-समिति किसान-हितकारिणी संस्था नहीं है, यह मेरा स्वाधीनता प्राप्त करने का अस्त्र है। मजदूर और किसान एक नहीं भारती, इससे तुम मुझे कुली, मजदूर, कारीगरों के कारखाने के बैरक में तो पाओगी पर गाँव के किसानों की झोंपड़ियों में मैं ढूँढ़े से नहीं मिल सकता। लेकिन, बातों ही बातों में अपना श्रेष्ठ कर्तव्य मत भूल जाना बहन !" इतना कहकर स्टोव की ओर उसका ध्यान आकर्षित करते हुए बोले, "देशोद्धार दो दिन बाद भी हो जाय तो सह लूँगा, लेकिन तैयार खिचड़ी जल गई तो यह मुझसे नहीं सहा जाएगा।"

भारती चट से दौड़ी गई और बटलोई का ढक्कन उतारकर हँसती हुई बोली, "डरने की कोई बात नहीं दादा, तुम्हारा आज के दिन का खिचड़ी-

कोई मारा नहीं जाएगा।"

"लेकिन देर कितनी है? चूहे बोल रहे हैं पेट में।"

भारती ने कहा, "पन्द्रह-बीस मिनट ठहरो। पर इतनी जल्दी किस बात की है?"

डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, "आज मैं तुमसे विदा जो लेने आया हूँ।"

उनके हँसते हुए चेहरे को देखकर किसी को विश्वास नहीं हुआ। बाहर आँधी-मेह का ठिकाना नहीं था।

क्षण-भर के लिए भारती ने खिड़की खोलकर बाहर का हाल देखकर कहा, "बाप रे बाप! दुनिया आज उलट-पुलट हो जाएगी। यह क्या कोई विदा लेने का वक्त है दादा?" उसे एक बात याद आ गई, बोली, "आज लेकिन तुम्हें उस छोटी कोठरी में सोना पड़ेगा। अपने हाथ से मैं बहुत अच्छी तरह बिछौना बिछा दूँगी। ठीक है न?"

फिर वह अपने हृदय के आनन्द से परिपूर्ण होकर रसोई के काम में लग गई।

ठीक समय पर भोजन तैयार होने पर डॉक्टर ने सिर हिलाते हुए कहा, "ना-ना, यह नहीं होने का। परोसने के बहाने तुम पीछे के लिए रह जाओ, यह नहीं हो सकता। आज हम लोग सब एक साथ खाएँगे।"

भारती ने प्रसन्न होकर कहा, "यही ही होगा दादा, हम चारों जने मौन होकर खाने बैठेंगे।"

डॉक्टर ने कहा, "मौन होकर मैं खा सकता हूँ, लेकिन अपूर्व बाबू मजाक उड़ाकर कहीं हम लोगों के हाजमे में गड़बड़ न कर दें, इतना उनसे कह दो।"

अपूर्व हँस दिया।

भारती के मुँह पर हँसी आ गई, बोली, "इस बात का भय तो हम लोगों को हो सकता है, पर तुम्हारे हाजमे में गड़बड़ी कौन कर सकता है दादा! उस आग में तो पहाड़-पर्वत भी फेंककर डाल दिए जाएँ तो वह जलकर भस्म हो जाएँगे।" कहते-कहते भारती उस दिन के खाने की याद करके मन-ही-मन रोमांचित हो उठी।

क्षण-भर में खाने की इच्छा और हँसी-मजाक से घर की हवा ही बदल

गई। सब लोग चुप मन में सोच रहे थे।

सहसा अपूर्व ने रंग में भंग कर दिया। उसने कहा, "दो दिन पहले अखबार में एक सुसंवाद पढ़ा था। डॉक्टर साहब, अगर वह सच हो, तो आपका क्रान्ति का उद्योग बिल्कुल निरर्थक हो जाएगा। भारत सरकार ने अपने शासन-तन्त्र में आमूल सुधार करने का वचन दिया है।"

इसी वक्त शशि ने अपनी राय जाहिर की, "झूठ है, धोखेबाजी है।"

भारती बनावटी क्रोध से बोल उठी, "ऐसा भी तो हो सकता है शशि बाबू कि धोखेबाजी न हो? जो लोग नेता हैं, जो लगभग आधी शताब्दी से—ना दादा, तुम हँस नहीं सकते। उनके जी-जान से किए गए आन्दोलन का क्या कोई फल ही नहीं होगा? विदेशी शासन होने पर भी आखिर हैं तो आदमी ही—धर्म, विवेक और नैतिक बुद्धि उनमें आ जाए तो कोई असम्भव नहीं।"

शशि ने बिना किसी संकोच के कहा, "असम्भव है। झूठी बातें हैं। धोखेबाजी है।"

अपूर्व ने कहा,"बहुत-से लोग इसी प्रकार सन्देह करते हैं, यह सच है।"

भारती ने कहा,"उनका सन्देह करना झूठा है। भगवान् क्या है नहीं?" दूसरे ही क्षण असीम आग्रह के साथ कहने लगी, "शासन-पद्धति का परिवर्तन और अत्याचारों का सुधार—यह सब सचमुच हो जाए, तो क्रान्ति की योजना और विद्रोह की सृष्टि फिर तो सब बिल्कुल व्यर्थ हो जाएगा दादा!"

शशि ने कहा, "अवश्य।"

अपूर्व ने कहा, "इसमें कोई सन्देह नहीं है।"

भारती ने डॉक्टर के चेहरे की ओर देखकर कहा, "दादा, तब तो तुम इस भयंकर मूर्ति को छोड़कर शान्त मुद्रा धारण करोगे न, बोलो?"

डॉक्टर दीवार की घड़ी की ओर देखकर मन-ही-मन हिसाब लगाकर ही अपने-आप बोले, "अब अधिक देर नहीं है।" फिर भारती को लक्ष्य अचानक अत्यन्त प्रेमभरे स्वर में बोले, "भारती, मैं स्वयं ही नहीं जानता कि मेरी भयंकर मूर्ति है या शान्त मूर्ति। केवल इतना जानता हूँ

कि इस जीवन में मुझमें कोई परिवर्तन नहीं होने का। और तुम्हारे प्रणम्य नेताओं को—डरो मत बहन, आज उनका मजाक उड़ाकर जी बहलाने का न तो मेरे पास वक्त है, न मन की वैसी व्यवस्था—विदेशी शासन का सुधार क्या होता है, जी-जान से किए आन्दोलन के बदले वे देना क्या चाहते हैं, उसमें कितना असली और कितना नकली है—कितना मिल जाने से शशि की समझ से धोखेबाज़ी नहीं होगी और नेतागणों का रोना बन्द हो जाएगा, यह मैं कुछ भी नहीं जानता। विदेशी सरकार के विरुद्ध आँखें तरेरकर जब ये लोग अपनी सशक्त वाणी का प्रचार किया करते हैं: हम लोग अब सोए हुए नहीं हैं, जाग गए हैं, हमारे आत्मसम्मान को बड़ा धक्का लगता है—या तो हमारी बात सुनो, नहीं तो 'वन्दे मातरम्' की शपथ खाकर कहते हैं, तुम लोगों के 'अधीन' हम लोग 'स्वाधीन' होकर ही रहेंगे, देखें किसकी शक्ति है जो हमें रोक सके! तब मेरी कुछ समझ में नहीं आता कि यह कैसी प्रार्थना है और क्या इसका स्वरूप है। यह मेरी बुद्धि के बाहर की बात है। मैं तो सिर्फ इतना ही जानता हूँ कि उनके इस माँगने और पाने में मेरा कोई सम्बन्ध नहीं।"

फिर जरा सोचकर बोला, "सुधारने का अर्थ है मरम्मत—नहीं। आज आदमी के लिए अपराध भार हो उठा है। सहनीय कर देना—यानी जो मशीन बिगड़ना चाहती है, मरम्मत करके उसे चालू कर देने की तरकीब है, शायद इसी को 'शासन सुधार' कहते होंगे। कभी किसी दिन इस प्रकार की धोखा-धड़ी मैंने नहीं चाही—एक दिन भी मैंने अपनी वाणी से नहीं कहा कि हमारे बंदीगृह की चहारदीवारी जरा बड़ी कर दो तो हम धन्य हो जाएँ। भारती, मेरी कामना में—मेरी तपस्या में आत्मवंचना के लिए स्थान नहीं है। इस तपस्या की सिद्धि के लिए केवल दो ही मार्ग हैं—भारत की स्वाधीनता या फिर मृत्यु।"

इसकी बातों में नवीनता न थी, फिर भी मृत्यु का नाम सुनते ही उसकी [illegible] से भारती की आँखों में आँसू भर आए।

उसने कहा, "मगर अकेले तुम क्या करोगे दादा, एक-एक करके सभी तो तुम्हें छोड़कर दूर हटते जा रहे हैं?"

डॉक्टर ने कहा, "यह तो अच्छा ही है, क्योंकि हमारे [illegible]

सह नहीं सकते सब।'"

भारती की जबान पर यह बात आ गई थी कि संसार में सभी कोई धोखेबाजी नहीं करने वाला. तुम्हारा हृदय पत्थर न हो गया होता तो तुम इस बात को समझ जाते। पर आज वह इस बात को मुँह खोलकर कह नहीं सकी।

डॉक्टर भोजन कर चुकने के बाद मुँह हाथ धोकर कुरसी पर बैठ गए। किसी ने भी उनकी ओर देखा नहीं। उनकी उत्कण्ठित दृष्टि उनकी आँखों में धीरे-धीरे विशुद्ध हुई जा रही थी। और उनका एक कान बहुत देर से नीचे के दरवाजे की ओर लगा हुआ है, यह बात भी किसी को मालूम नहीं।

सड़क पर किसी चीज की आवाज सुनाई दी, उस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया, परन्तु डॉक्टर चौंककर उठ खड़े हुए और बोले, "अपूर्व बाबू का नौकर नीचे है। जाग रहा है। अरे ओ हनुमन्त, जरा दरवाजा तो खोल दे।"

भारती सुमित्रा से पूछ रही थी कि किसके लिए कहाँ और कैसे बिस्तर लगेंगे। उसने मुड़कर आश्चर्य से पूछा, "किसके लिए दादा? कौन आ रहे हैं?"

डॉक्टर ने कहा, "हीरासिंह। तब से उसी के आने की राह देख रहा हूँ। क्यों कविजी, कुछ-कुछ काव्य-सा सुनाई दिया था नहीं?" यह कहकर वे हँसने लगे।

भारती ने कहा, "ऐसे आँधी-पानी में अकेले तुम्हारे ही काव्य से हम लोग बेचैन हो रहे हैं, उस पर यह भग्नदूत कहाँ से आ धमका?"

शशि ने कहा, "भारती, भग्नदूत को छोटा मत समझो। उसके बिना मेघनाद वध काव्य की रचना ही नहीं होती।"

"देखूं, ये किस काव्य की रचना करते हैं।" कहकर भारती ने झांककर देखा कि अपूर्व के नौकर के दरवाजा खोल देने पर जिस व्यक्ति ने प्रवेश किया, वह सचमुच ही हीरासिंह है।

क्षण-भर बाद आगन्तुक ने ऊपर आकर सबको अभिवादन किया और डॉक्टर को हाथ जोड़कर प्रणाम किया। पहनावा उसका वही था, सरकारी ... ी, सरकारी साफा और कमर से लटकता हुआ चमड़े का बैग। सब

कुछ भीगकर भारी हो गया था। बड़ी-बड़ी दाढ़ी-मूँछों से पानी टपक रहा था—बाएँ हाथ से सबको निचोड़ता हुआ शायद हल्का होने का प्रयत्न करने लगा और इस अवसर पर अस्फुट स्वर में बोला, "रेडी।"

डॉक्टर उछल पड़े, बोले, "थैंक्यू ! थैंक्यू सरदारजी !—कब ?"

"नाउ।" कहकर वह फिर से सबको अभिवादन करके जाना ही चाहता था कि सब एकसाथ पूछ उठे, "क्या हुआ सरदारजी ? नाउ क्या ?"

सब अच्छी तरह जानते थे कि इस आदमी के गले में छुरा भोंकने से खून भले ही निकले, पर बिना आज्ञा के एक शब्द भी नहीं निकल सकता।

लिहाजा उत्तर के पहले जब उसकी घनी काली दाढ़ी-मूँछों में सिर्फ कुछ दाँत ही चमककर रह गए तो किसी को कुछ आश्चर्य नहीं हुआ। सभी जानते थे कि इस आदमी पर निन्दा-प्रशंसा, मान-अपमान, शत्रु-मित्र का कुछ भी प्रभाव नहीं—देश के काम में सव्यसाची को सरदार मानकर इस आदमी ने अपने जीवन की सारी भलाई-बुराई और समस्त सुख-दुःख को तिलांजलि देकर अपने को कठोर सैनिक-वृत्ति में लगा दिया है। न तो गर्व करता है, समय-असमय का भी उसके लिए कोई हिसाब नहीं—किसी भी कठिन कार्य का भार उस पर सौंपा गया और उस कर्तव्य को पूरा करके वह वहाँ से चल दिया।

सबके कुतूहल को मिटाने के लिए डॉक्टर ने जो कुछ कहा वह इतना था—

हानि और अनिष्ट कितना हुआ है, दूर से तो इस बात का निर्णय करना कठिन है। सम्भवतः काफी हुआ है। मगर कितना ही क्यों न हो, हर काम उन्हें करने ही पड़ेंगे, उनके [illegible] का जो अंश सिंगापुर में छिप गया है उसकी रक्षा करनी पड़ेगी, और जहाँ कहीं भी हो और कुछ [illegible] हो, ब्रजेन्द्र को ढूँढ़ निकालना होगा। [illegible] के दक्षिण के [illegible] के पास एक चीनी जहाज [illegible] डाले खड़ा है—कल सवेरे ही वह छूटने वाला है। उसके किसी [illegible] उनके जाने की व्यवस्था हो गई है। हीरासिंह का नमस्कार कहता है।

सुमित्रा का मुँह पीला पड़ गया। वह जानता है कि [illegible] कभी सिंगापुर

[illegible] है और जो व्यक्ति उसकी गोद में आ रहा है उसकी दृष्टि से [illegible], [illegible] कहीं पर भी वह क्यों न हो, बच नहीं सकता।

फिर [illegible] के अंतिम [illegible] का समय आएगा। उनका क्या [illegible] है इस बात से भी कोई अपरिचित नहीं—सुमित्रा भी जानती है। [illegible] उनका कोई भी नहीं और [illegible] यदि उनसे [illegible] है तो [illegible] उसे [illegible] ही चाहिए, परन्तु सुमित्रा जिस कारण [illegible] हो गई वह कारण [illegible] नहीं है—वह भी आत्म-रक्षा करना जानता है। उसकी [illegible] में केवल [illegible] [illegible] ही नहीं, उससे [illegible], चालाक और [illegible] [illegible] आदमी इस दुनिया में बहुत कम हैं। उसमें सबसे बड़ी [illegible] एक [illegible] हो गई कि [illegible] समय वह यह निश्चित धारणा लेकर चला है कि डॉक्टर [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] हैं। अब यदि किसी प्रकार उसे डॉक्टर का [illegible] लग गया, तो रक्षा करने के जितने भी अस्त्र उसके पास होंगे उन सबका प्रयोग करने में वह [illegible] भी नहीं हिचकेगा।

वास्तव में, जीवन-मरण की समस्या उपस्थित होने पर दूसरे के लिए करने को और क्या शेष रह जाता है।

हीरासिंह के शान्त मृदु दो शब्द 'नाउ' और 'रेडी' सबके कानों में हजार गुने भीषण होकर आघात-प्रतिघात करने लगे।

उस दिन भारती को बात याद आ गई जिस दिन उसके मौलमन के मकान में जन्म-दिवस के उत्सव के परिपूर्ण आनन्द के बीच उसके अतिथि और सर्वोत्तम मित्र रेमरेण्ड लारेंस साहब टेबल पर खाते-खाते हार्ट फेल होकर मर गए थे।

आज भी ठीक वैसे ही हीरासिंह ने मृत्युदूत के समान आकर एक क्षण में सब नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

सहसा शशि फुसकार के साथ एक गहरी साँस लेकर बोल उठा, "सब-कुछ जैसे फीका और खाली हुआ जा रहा है डॉक्टर!"

बात बिलकुल सामान्य और बहुत ही सतही थी, परन्तु सबकी छाती पर उसने सांघातिक प्रहार किया हो।

डॉक्टर हँस दिए।

शशि ने कहा, "हँसिए या चाहे जो भी कीजिए, बात सच्ची है। आप

साथ नहीं रहते तो मालूम होता है सब फीका हो गया—फीका, खोखला, धुंधला। लेकिन मैं आपकी हर एक आज्ञा मानकर चलूँगा।"

"कैसे?"

"जैसे शराब नहीं पीऊँगा, पॉलिटिक्स में नहीं पड़ूँगा, भारती के पास रहूँगा और कविता लिखा करूँगा।"

डॉक्टर ने भारती के चेहरे की तरफ देखा, पर वह दिखाई नहीं दिया। तब फिर हँसी के तौर पर शशि से पूछा, "किसानों की कविता नहीं लिखोगे कवि?"

शशि ने कहा, "ना। उनकी कविता वे स्वयं लिख सकें तो लिखें, मैं नहीं लिख सकता। आपकी उस बात पर मैंने बहुत विचार किया है, और आगे इस उपदेश को कभी नहीं भूलूँगा कि अपने आदर्श के लिए अगर कोई अपना सब कुछ निछावर कर सकता है तो केवल शिक्षित मध्यवर्ग समुदाय ही कर सकता है, अशिक्षित किसान कुछ नहीं कर सकते। मैं उन्हीं मध्यवर्ग का कवि बनूँगा।"

डॉक्टर ने कहा, "हाँ, यही बनना। पर यही अन्तिम बात नहीं है कवि, मानव की गति यहीं पर नहीं रुकेगी। किसानों का कुछ भी किसी रोज आएगा, तब देश के कल्याण का भार उन्हीं के हाथों सौंप देना पड़ेगा।"

शशि ने कहा, "वह कुछ आए तो तब, स्वच्छन्द शान्त चित्त से सब जिम्मेदारी उन्हीं के हाथ सौंपकर हम लोग छुट्टी ले लेंगे। लेकिन हम समस्त [illegible] का [illegible] भार वे नहीं सह सकते।"

डॉक्टर उठकर उसके पास पहुँच गए। उसके कंधे पर हाथ रखकर चुपचाप खड़े रहे—एकदम मौन।

इस बार चुपचाप सिर झुकाए हुआ अपूर्व सुन रहा था। परन्तु शशि के अन्तिम वाक्य उसे बहुत बुरे मालूम हुए। जिन किसानों के हित के लिए डाक्टर अपना जीवन देने का संकल्प किया था, उनके विरुद्ध इन शब्दों को सुनकर वह क्षुब्ध और अस्थिर होकर कह उठा, "[illegible] देखा [illegible] है—ठीक है, [illegible] दे, [illegible] है, [illegible], परन्तु [illegible] का [illegible] और [illegible] है? और [illegible], जो [illegible] है और [illegible]

तक सिर घुमा-घुमाकर मना रही थी, यह बात अंत अनजाने में उसके मुँह से निकल गई, "केवल एक बार डॉक्टर, सिर्फ एक बार तुम मुझ पर भरोसा करके देखो, शायद मैं तुम्हारा ने आ सकती हूँ या नहीं। और फिर स्त्री से बड़ा नहीं होता?"

डॉक्टर खड़े हुए जूते का फीता कस रहे थे। कस चुकने पर सिर उठाकर बोले, "स्त्रियों से बहुत काम निकलते हैं सुमित्रा, इसलिए उनको व्यर्थ नहीं नष्ट करना चाहिए।"

सब कोई समझ गये कि यह ताना व्यर्थ है। अपमान दुःख से सुमित्रा डबडबायी हुई आँखों से दूसरी ओर देखने लगी।

भारती ने कहा, "मुझे अथाह समुद्र में बहाकर तुम चले दिये। दादा, तुम बार-बार कहा करते थे कि केवल मुझ पर ही नहीं —मुझ जैसी लड़कियाँ जहाँ-तहाँ हैं, उन सब पर तुम्हारा बड़ा लोभ है, सभी को तुम बहुत ज्यादा प्यार करते हो, यह क्या ऐसे ही?"

डॉक्टर ने समर्थन करते हुए कहा, "सचमुच ही प्यार करता हूँ भारती, लड़कियों पर मेरा कितना लोभ है, कितना भरोसा है, यह बात अपने मुँह से बताने का मुझे अवसर ही नहीं मिला, मगर यदि तुम बता सको तो मेरी ओर से उन्हें अवश्य बता देना।"

भारती सहसा रो दी, "बता दूँगी कि हम लोगों की केवल बलि कर देना चाहते हो।"

क्षण-भर डॉक्टर ने उसके मुँह की तरफ देखकर कहा, "अच्छा, यही कह देना। भारती, एक भी लड़की यदि इसका अर्थ समझ जाए, तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।" उन्होंने अपना बड़ा बकुचा कंधे पर रख लिया।

उनके पीछे-पीछे सब कोई नीचे उतर आये।

भारती ने अन्तिम प्रयत्न करते हुए कहा, "जिसकी देश की आयोजना नष्ट हो, विदेश की आयोजना से उसको क्या लाभ होगा दादा? जो तेरे अन्तरंग मित्र थे, वे तो सब एक-एक करके चले गए, अब तो बिल्कुल मित्र-हीन हो गये हो—बिल्कुल अकेले रह गये हो।"

डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, "श्रीगणेश भी तो अकेले ही ने किया था भारती!—और विदेश? भगवान् की इतनी कृपा है कि उसने आदमी को